



सिन्धी

श्री तारतम वाणी

# सिन्धी

शब्दार्थ, अर्थ, व भावार्थ

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

[www.spjin.org](http://www.spjin.org)

सर्वाधिकार सुरक्षित (चौपाई छोड़कर)

© २०१०, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण — २०१९

## अनुक्रमणिका

	अनुभूमिका	10
1	आखिर वेरा उथणजी (हक मेहेबूब के जवाब)	23
2	रे पिरीयम हथ तोहिजडे हाल	113
3	रे पिरीयम मंगां सो लाड करे	133
4	रे पिरीयम मंगां सो लाड करे	174
5	सांगाए थिंदम धाम संगजी (श्री देवचन्दजी मिलाप विछोहा)	202
6	धणी मूंहजी रूहजा (रूहन जो फैल हाल)	282
7	वलहा जे आंऊं तोके वलही (झगडे जो प्रकरण)	337

- |    |  |     |
|----|--|-----|
| 8  | रुहअल्ला डिन्यूं निसानियूं<br>(बाब जाहेर थियणजा)       | 453 |
| 9  | चई सुन्दरबाई असां के<br>(मारकंडजो दृष्टांत)            | 509 |
| 10 | सुणो रुहें अर्स जी<br>(आसिकजा गुनाह)                   | 577 |
| 11 | लखे भते न्हारयम (खुदीजी पेहेचान)                       | 617 |
| 12 | ताडो कुंजी ना दर उपटण<br>(हुकमजी पेहेचान)              | 645 |
| 13 | कांध रुह भाईयां सिफत करियां<br>(हक हादी रुहों जी सिफत) | 684 |
| 14 | सुनो रुहें अर्स की<br>(आशिक के गुनाह)                  | 696 |

- |    |   |     |
|----|---|-----|
| 15 | मैं लाखों विध देखिया<br>(मैं खुदी की पहचान) | 715 |
| 16 | ताला द्वार न कुंजी खोलना<br>(हुकम की पहचान) | 729 |

## प्रस्तावना

प्राणाधार श्री सुन्दरसाथ जी! अक्षरातीत श्री राज जी के हृदय में ज्ञान के अनन्त सागर हैं। उनकी एक बूँद श्री महामति जी के धाम-हृदय में आयी, जो सागर का स्वरूप बन गयी। इसलिये कहा गया है कि "नूर सागर सूर मारफत, सब दिलों करसी रोसन" अर्थात् यह तारतम वाणी मारिफत के ज्ञान का सूर्य है। यह ब्रह्मवाणी सबके हृदय में ब्रह्मज्ञान का उजाला करती है।

"हक इलम से होत है, अर्स बका दीदार" का कथन अक्षरशः सत्य है। इस ब्रह्मवाणी की अलौकिक ज्योति सुन्दरसाथ के हृदय में माया का अन्धकार कदापि नहीं रहने देगी। इस तारतम वाणी की थोड़ी सी भी अमृतमयी बूँदों का रसास्वादन जीव के लिये परब्रह्म के साक्षात्कार एवं अखण्ड मुक्ति का द्वार खोल देता है। अतः वैश्विक

स्तर पर इस ब्रह्मवाणी का प्रसार करना हमारा कर्तव्य है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि अनेक भारतीय भाषाओं में अवतरित इस ब्रह्मवाणी की टीका सरल भाषा में प्रस्तुत हो। यद्यपि वर्तमान में अनेक सम्माननीय मनीषियों की टीकायें प्रचलित हैं, किन्तु ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि एक ऐसी भी टीका हो, जो विश्लेषणात्मक हो, सन्दर्भ, भावार्थ, स्पष्टीकरण एवं टिप्पणियों से युक्त हो।

मुझ जैसे अल्पज्ञ एवं अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये यह कदापि सम्भव नहीं था, किन्तु मेरे मन में अचानक ही यह विचार आया कि यदि सन्त कबीर जी और ज्ञानेश्वर जी अपने योगबल से भैंसे से वेद मन्त्रों का उच्चारण करवा सकते हैं, तो मेरे प्राणवल्लभ अक्षरातीत मेरे से वाणी की टीका की सेवा क्यों नहीं करवा सकते?

इसी आशा के साथ मैंने अक्षरातीत श्री जी के चरणों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की।

धाम धनी श्री राज जी एवं सद्गुरु महाराज श्री रामरतन दास जी की मेहर की छाँव तले मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा ने मुझे इस कार्य में दृढ़तापूर्वक जुटे रहने के लिये प्रेरित किया। ब्रह्मवाणी के गुह्य रहस्यों के ज्ञाता श्री अनिल श्रीवास्तव जी का इस टीका में विशेष सहयोग रहा है।

सभी सम्माननीय पूर्व टीकाकारों के प्रति श्रद्धासुमन समर्पित करते हुए मैं यह आशा करता हूँ कि यह टीका आपको रुचिकर लगेगी। सभी सुन्दरसाथ से निवेदन है कि इसमें होने वाली त्रुटियों को सुधारकर मुझे भी सूचित करने की कृपा करें, जिससे मैं भी आपके अनमोल वचनों से लाभ उठा सकूँ एवं अपने को धन्य-धन्य कर सकूँ।



आप सबकी चरण-रज

राजन स्वामी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

जिला सहारनपुर (उ.प्र.)

## सिन्धी

निजनाम श्री जी साहेब जी, अनादि अछरातीत।

सो तो अब जाहेर भए, सब विध वतन सहीत।।

श्री महामति जी के धाम हृदय से प्रवाहित होने वाली सिन्धी ग्रन्थ की यह अमृत धारा परमधाम की आत्माओं को विरह, प्रेम, मूल सम्बन्ध, तथा एकत्व (वहदत) आदि की स्पष्ट रूप से पहचान कराने वाली है। वस्तुतः यह ग्रन्थ परमधाम के चारों ग्रन्थों (खिल्वत, परिकरमा, सागर, तथा श्रृंगार) का उपसंहार है। इन चारों ग्रन्थों को "तारतम का तारतम" कहे जाने की शोभा प्राप्त है, किन्तु यह सिन्धी ग्रन्थ इनका उपसंहार है। यह ग्रन्थ हमें इस बात का चिन्तन करने के लिये विवश कर देता है कि इन चारों ग्रन्थों की अमृत वाणी को हमने कितना आत्मसात्

किया है?

संसार के भक्तजन जहाँ अपने इष्ट (परमात्मा) से अपनी माँग पूरी करने या अपने अपराधों के क्षमादान के लिये अति दीन भाव में करुण पुकार करते हैं, वहीं सिन्धी की वाणी प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि को यह अमर सन्देश दे रही है कि अपने प्राणवल्लभ के समक्ष अपनी माँगों को प्रेम के माधुर्य भरे शब्दों में कैसे प्रस्तुत किया जाता है? वस्तुतः प्रेम के माधुर्य की गहनतम स्थिति का चित्रण इस ग्रन्थ में किया गया है।

इस ग्रन्थ के अवतरण के सम्बन्ध में एक कथानक प्रसिद्ध है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

एक बार किसी राजा के ऊपर पड़ोस के शत्रु राजा ने आक्रमण कर दिया। राजा की निष्क्रियता देखकर महारानी ने स्वयं ही राजा का श्रृंगार किया और अस्त्र—

शस्त्र लेकर सेना सहित शत्रु राजा से युद्ध किया। उसे युद्ध में परास्त करने के पश्चात् उस समय की परम्परा के अनुसार वह राजा की कन्या लेकर आयी। जोश में भरी होने के कारण, इसी प्रकार उसने ११ अन्य राजाओं को भी हराया और उनकी कन्यायें लेकर आयी। राजमहल में इन १२ कन्याओं ने जब विवाह करने के लिये आग्रह किया, तो उस महारानी ने अपने प्रियतम राजा से निवेदन किया कि महाराज! आपको तो विदित है कि मैं भी आपकी महारानी हूँ। इन कन्याओं के साथ पाणिग्रहण (विवाह) तो केवल आप ही कर सकते हैं।

इस कथानक का गुह्य (सूक्ष्म) भाव यह है कि इस जागनी लीला में श्री इन्द्रावती जी ने अक्षरातीत (श्री प्राणनाथ जी) का स्वरूप धारण करके ब्रह्मसृष्टियों को जाग्रत किया है। १२ कन्यायें १२००० ब्रह्मसृष्टियों की

प्रतीक स्वरूपा हैं। परमधाम की आत्माओं को निजधाम का प्रेम और आनन्द मूल स्वरूप श्री राज जी से ही प्राप्त हो सकता है, इसलिये श्री महामति (श्री इन्द्रावती जी) ने धाम धनी से यह प्रार्थना की है कि इन आत्माओं को अंगीकार कर अपने प्रेम और आनन्द के रस में डुबोइए।

यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि यदि मात्र मूल स्वरूप से ही सुन्दरसाथ को परमधाम का प्रेम और आनन्द मिल सकता है, तो इस संसार में श्री महामति जी को अक्षरातीत के स्वरूप में शोभा देने की क्या आवश्यकता थी? क्या महाराजा श्री छत्रशाल जी, श्री लालदास जी, श्री भीमभाई, एवं श्री चिन्तामणि आदि ने उन्हें अक्षरातीत मानकर भूल की थी, एवं क्या इस स्वरूप पर ईमान लाने से कोई लाभ नहीं है? यदि ऐसा ही है तो श्री बीतक साहिब में उन्हें २२६ बार राज, २२ बार हक,

एवं ४ बार अक्षरातीत कहने की आवश्यकता ही क्या थी? ऐसी स्थिति में श्रीमुखवाणी में बारम्बार इस स्वरूप को अक्षरातीत क्यों कहा गया है?

प्रगटे पूरन ब्रह्म सकल में, ब्रह्मसृष्ट सिरदार।

ईस्वरी सृष्टि और जीव की, सब आए करो दीदार॥

किरंतन ५७/१

सुर असुर सबों को ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिनहूं जैसा चीन्ह्या॥

किरन्तन ५९/७

आवसी धनी-धनी रे सब कोई कहते, आगमी करते पुकार।

सो सत बानी सबों की करी, अब आए करो दीदार॥

किरन्तन ५३/७

सुनियो दुनियां आखिरी, भाग बड़े हैं तुम।

जो कबूं कानों ना सुनी, सो करो दीदार खसम॥

सनंध ३३/१

इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार श्याम जी के मन्दिर में दर्शन देने वाले आवेश स्वरूप को हम श्री राज जी का ही स्वरूप मानते हैं, उसी प्रकार श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान आवेश स्वरूप को भी हमें श्री राज जी का ही स्वरूप मानना पड़ेगा। अक्षरातीत पूर्ण होते हैं, इसलिये मूल स्वरूप एवं आवेश स्वरूप में मूलतः कोई भी अन्तर नहीं है।

तुम हीं उतर आए अर्स से, इत तुम हीं कियो मिलाप।

तुम हीं दई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप॥

सिनगार २३/३१

किन्तु यदि आत्म-जाग्रति के सन्दर्भ में देखा जाये, तो किसी भी आत्मा को तभी जाग्रत माना जा सकता है, जब वह अपनी परात्म तथा युगल स्वरूप का साक्षात्कार कर लेती है। आत्म-जाग्रति के पश्चात् ही परमधाम के वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है, जिसके लिये परमधाम के नूरी स्वरूपों (परात्म तथा युगल स्वरूप) का साक्षात्कार अनिवार्य है। श्री मिहिरराज जी के बाह्य स्वरूप के साक्षात्कार मात्र से यह लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता था। यही कारण है कि श्री महामति जी ने सभी की सुरता को मूल स्वरूप से जोड़ने के लिये प्रेरित किया है। किरंतन १११/१० में भी कहा गया है- "बका पर बंदगी, करावसी इमाम।"

यद्यपि श्री मिहिरराज जी के तन में विद्यमान श्री इन्द्रावती जी (श्री महामति जी) के धाम हृदय में ही



युगल स्वरूप विराजमान हैं और सभी सुन्दरसाथ को दर्शन भी देते हैं, किन्तु इस संसार के विधान के अनुसार पञ्चभौतिक तन की एक मर्यादा होती है, जिसके कारण परमधाम में विराजमान श्री राज जी के मूल स्वरूप को दिल में बसाये बिना आत्म-जाग्रति का लक्ष्य कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता।

खिल्वत, परिकरमा, सागर, और श्रृंगार में मूलतः सभी का ध्यान परमधाम की ओर ही केन्द्रित किया गया है। अतः इन चारों ग्रन्थों के उपसंहार के रूप में अवतरित ग्रन्थ "सिन्धी" में भी आत्माओं को परमधाम की ओर ही ले जाया जाना स्वाभाविक है। विरह की अग्नि में जलने वाले गोकुलदास जी जैसे सुन्दरसाथ की प्रार्थना "हमको इस खेल से, सिताब काढ़ो श्री राज" ने भी सिन्धी ग्रन्थ के अवतरण की पृष्ठभूमि तैयार की है। यही कारण है कि

साहित्यिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों से श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ की आत्माओं को युगल स्वरूप के दीदार, प्रेम, एवं आनन्द के रस में डुबोने के लिये धाम धनी के सम्मुख दृढ़तापूर्वक वकालत की है, जिसकी सुगन्धि का अनुभव इस सिन्धी ग्रन्थ में सर्वत्र ही होता है। वि. सं. १७४७ में अवतरित होने वाले सिन्धी ग्रन्थ की वाणी परमधाम की आत्माओं को माधुर्यता के रस-सागर में डुबोने वाली है।

श्री किताब सिन्धी की जो सिन्धी भाखा मिने आखिर फजर को हजूर ने अर्ज करी है, सो स्वाल जवाब लिखे हैं, सो अर्स रूहें हाल सो सुनियो, ज्यों हाल तुमको भी आवे।

यह सिन्धी ग्रन्थ श्री महामति जी के धाम हृदय से अवतरित है। अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने वाली यह तारतम वाणी है, जो फज्र (सवेरा) करने वाली कही गयी है। "धाम से ल्याई तारतम, करी ब्रह्माण्ड में रोसनाई" (किरंतन ९४/२) का कथन इसी सन्दर्भ में है। "जोत दीपक इत क्या करे, ए तो चौदे तबकों तम" (क. हि. १/२३) तथा "सो तीनों पांचों में पसरे, हुई अंधेरी चौदे भवन" (किरंतन २२/२) से यही निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्मवाणी के अवतरण से पहले संसार में अज्ञानता का अन्धकार फैला था। रास, प्रकाश, तथा षट्ऋतु की वाणी जहाँ प्रातःकाल के उजाले की वाणी है, वहीं खिल्वत, परिकरमा, सागर, श्रृंगार, सिन्धी, तथा मारिफत सागर की वाणी दोपहर के सूर्य श्रीजी के उजाले की वाणी है। "चढ़ती चढ़ती रोसनाई" का कथन यही

संकेत करता है। खुलासा ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है—  
 "श्री किताब खुलासा बानी, हकी सूरत फजर की। रुहें  
 अर्स की, दिल दे देखियो॥" यही भावना सिन्धी ग्रन्थ में  
 भी है।

"आखिर" शब्द का भाव उस अनमोल समय से है, जब  
 ब्रह्मवाणी का अवतरण हो रहा था। श्रीमुखवाणी में इस  
 सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर प्रकाश डाला गया है—

सुनियो दुनियां आखिरी, भाग बड़े हैं तुम।

सनंध ३३/१

सोई साहेब आखिर आवसी, किया महंमद सो कौल।

किरंतन ७७/१८

सूरता तीनों ठौर की, इत आई देह धर।

ए तीनों रोसन नासूत में, किया बेवरा इमामे आखिर॥

किरंतन ७९/३

मैं आया हूं अक्वल, आखिर आवेगा खुदाए।

किरंतन १०८/८

एही गिरो खासी कही, जिनमें महंमद पैगंबर।

हकीकत मारफत खोल के, जाहेर करी आखिर॥

किरंतन १२१/१२

आखिर भी रसूल आए के, भिस्त दई सब जहान।

सनंध २५/४४

यों आखिर आए सबन को, प्रगट भई पेहेचान।

तब कहें ए सुध सुनी हती, पर आया नहीं ईमान॥

सनंध ३४/२६

इस ग्रन्थ में श्री महामति जी (श्री इन्द्रावती जी) ने धाम धनी से तरह-तरह के प्रश्न किये हैं कि आप हमें दर्शन

क्यों नहीं देते, प्रेम भरी बातें क्यों नहीं करते, तथा शीघ्र परमधाम क्यों नहीं ले चलते?

इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर श्री राज जी ने परोक्ष (गुप्त) रूप से आशिक के गुनाह (प्रकरण १४), मैं खुदी की पहचान (प्रकरण १५), तथा हुक्म की पहचान (प्रकरण १६) में दे दिया है।

प्रेम ही हमारी परमधाम की रहनी (हाल) है। यदि हम प्रेम के भावों में डूबकर इस सिन्धी ग्रन्थ को आत्मसात् (चिन्तन-मनन) करते हैं, तो स्वाभाविक है कि हम भी उसी राह पर अवश्य चलेंगे जिस पर चलने का निर्देश (हिदायत) सिन्धी सहित सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी में है। "ज्यों हाल तुमको भी आवे" का यही आशय है।

आखिर वेरा उथणजी, आंई रूहें छडे जा रांद।

उथी विच अर्स जे, कोड करे मिडूं कांध॥१॥

**शब्दार्थ-** आखिर-आखिर का, वेरा-वक्त, उथणजी-उठने का, आंई-तुम, रूहें-आत्माओं, छडे-छोड़े, जा-जो, रांद-खेल, उथी-उठकर, विच-बीच, अर्स जे-परमधाम के, कोड-हर्ष, करे-करके, मिडूं-मिले, कांध-प्रियतम से।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे परमधाम की आत्माओं! जाग्रत होने के लिये यह अन्तिम समय है। यदि तुम इस मायावी खेल को छोड़ देती हो, तो परमधाम में उठकर जाग्रत होकर आनन्दपूर्वक अपने प्रियतम से मिलोगी।

**भावार्थ-** "अन्तिम समय" का भाव इस जागनी ब्रह्माण्ड की जागनी लीला से है। इसके पहले ब्रज एवं रास की

लीला हो चुकी है और इसके पश्चात् ब्रह्मलीला से सम्बन्धित अन्य कोई ब्रह्माण्ड नहीं बनना है, जबकि जीवों की लीला से सम्बन्धित असंख्यों ब्रह्माण्ड बनते रहेंगे।

श्री महामति जी के तन से ही यथार्थ रूप में जागनी लीला का प्रारम्भ हुआ है और जिस समय सिन्धी वाणी अवतरित हुई, उस समय ब्रह्ममुनियों के द्वारा छठें दिन की जागनी लीला शुरु नहीं हुई थी। ऐसी स्थिति में प्रत्येक आत्मा के लिये जागनी लीला का समय ब्रह्माण्ड की दृष्टि से है, तन की दृष्टि से नहीं। यद्यपि स्वलीला अद्वैत परमधाम में जाग्रत होने का तात्पर्य मात्र "परात्म" की जाग्रति से है, किन्तु यह एक साथ ही होगी। आत्म-जाग्रति का क्रम आगे-पीछे चल रहा है। जो आत्मा जाग्रत हो जाती है, उसके लिये पिण्ड-ब्रह्माण्ड का



महत्व नहीं रह जाता। "लगी वाली और कछू न देखे, पिण्ड ब्रह्माण्ड वाको है री नार्ही" (किरन्तन ९/४) का कथन यही भाव प्रकट करता है। संसार से परे होकर जब स्वयं को परात्म के भावों में डुबोया जाता है, तभी आत्म-जाग्रति का पथ तैयार होता है, इसलिये यहाँ अलंकारिक रूप से परमधाम में उठने की बात कही गयी है। आत्माओं के लिये लौकिक दृष्टि की उन्नति माया में डूबना है, जबकि आत्मा और परात्म के भावों में एकरूपता हो जाना ही परमधाम में उठना है।

**धणी मूंहजी रूहजा, हांणे चुआं कीयं करे।**

**रूह के डिन्यो परडेहडो, चओ सो दिल धरे॥२॥**

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, मूंहजी-मेरे, रूहजा-आत्मा के, हांणे-अब, चुआं-कहूँ, कीयं-कैसे, करे-करके,

रूह के-आत्मा के, डिन्यो-दिया, परडेहडो-परदेश,  
चओ-कहो, सो-सो, दिल-दिल में, धरे-धरें।

**अर्थ-** मेरी आत्मा के प्राणवल्लभ! अब मैं आपसे क्या कहूँ? आपने मेरी आत्मा को इस मायावी जगत् (विदेश) में भेज दिया है। अब आप हमें जैसा कहें, वैसा ही हम अपने दिल में धारण करें।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इस नश्वर जगत को विदेश (परदेश) कहने का आशय यह है कि हम इसमें थोड़े समय के लिये ही आए हैं और यहाँ हमारा मूल निवास नहीं है।

इस्क डिने तूं, तो रे इस्क न अचे।

घणुएं करियां आंऊं, कूड न उडे रे सचे॥३॥

**शब्दार्थ-** इस्क-प्रेम, डिने-दिया, तूं-आप, तो-

आपके, रे-बिना, न-नहीं, अचे-आता, घणुएं-बहुत, करियां-करूँ, आंऊं-मैं, कूड-झूठ, उडे-उड़ता है, सचे-सत्य।

**अर्थ-** एकमात्र आप ही प्रेम देने वाले हैं। आपके बिना अन्य किसी भी स्रोत से प्रेम (इश्क) नहीं आ सकता। यद्यपि मैंने बहुत प्रयास किया, किन्तु आपके अखण्ड प्रेम (सत्य) के बिना माया का यह अन्धकार समाप्त नहीं हो सकता है।

**भावार्थ-** सत्य को अनादि और अखण्ड कहा जाता है। इस प्रकार प्रेम (इश्क) ही वह अखण्ड तत्व है जो अक्षरातीत का स्वरूप है, एवं हृदय में जिसके प्रवेश किये बिना माया का अन्धकार नष्ट नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में परिक्रमा ग्रन्थ १/२६,५४ का यह कथन बहुत ही महत्वपूर्ण है—

इस्क आगूं न आवे माया, इस्कें पिण्ड ब्रह्माण्ड उड़ाया।  
 इस्कें अर्स वतन बताया, इस्कें सुख पेड़ का पाया॥  
 जब आया प्रेम सोहागी, तब मोह जल लेहेरां भागी।  
 जब उठे प्रेम के तरंग, ले करी स्याम के संग॥

की करियां केडा वंजां, चुआं कीय करे।

न पेराइयां पडूत्तर, न अची सगां गरे॥४॥

**शब्दार्थ-** की-कैसी, करियां-करूँ, केडा-कहाँ,  
 वंजां-जा, चुआं-कहूँ, कीय-कैसे, करे-करके,  
 पेराइयां-पाती हूँ, पडूत्तर-जवाब (प्रत्युत्तर), अची-  
 आ, सगां-सकती हूँ, गरे-घर में या पास।

**अर्थ-** मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ,  
 कहाँ जाऊँ, और अपने दिल की बातें किस प्रकार कहूँ।  
 न तो मैं आपसे उत्तर ही पा रही हूँ और न परमधाम में

आपके पास ही आ पा रही हूँ।

**भावार्थ-** यह प्रसंग इस खेल का है, जिसमें आत्मा न तो प्रियतम से बातें कर पा रही है और न ही अपनी परात्म में जाग्रत होकर यथार्थ रूप से प्रियतम के सम्मुख हो पा रही है।

सजण मूंहजी रूहजा, तांजे डिए रूह सांजाए।

त हिकै आहि अरवाह के, पेरे तरे पुजाए॥५॥

**शब्दार्थ-** सजण-प्रियतम, मूंहजी-मेरी, रूहजा-आत्मा के, तांजे-तुम्हारे, डिए-अवदान से, रूह-आत्मा को, सांजाए-पहचाने, त-तो, हिकै-एक ही, आहि-आहनाला, अरवाह के-आत्मा को, पेरे-चरणों के, तरे-तले, पुजाए-पहुँचाए।

**अर्थ-** मेरी आत्मा के प्राण प्रियतम! यदि आप मुझे

अपनी पहचान दे दें, तो आपके प्रति मेरे विरह की एक आह से ही मेरी आत्मा आपके चरणों में पहुँच जाये।

**भावार्थ-** विरह-प्रेम का मार्ग नवधा भक्ति एवं योग – साधना से भिन्न है। यदि पल भर के लिये भी विरह-प्रेम की गहन अवस्था प्राप्त हो जाये, तो आत्मा हृद-बेहृद को पार करके मूल मिलावा में विराजमान युगल स्वरूप तथा अपनी परात्म का साक्षात्कार कर लेती है। "पंथ होवे कोट कल्प, प्रेम पोहोंचावे मिने पलक" (परिकरमा १/५३) का यह कथन इसी सन्दर्भ में है।

**धणी मूंहजी रूहजा, गिनी वेई विसराई।**

**पेईस ते पेचन में, वडी जार वडाई॥६॥**

**शब्दार्थ-**धणी-प्रियतम, गिनी-ले, वेई-गई, विसराई-भूल या माया, पेईस-पड़ी हूँ, ते-तिन या उन, पेचन

में-फन्दों में, वड़ी-बड़ी, जार-जाली, बड़ाई-बड़ापन।

**अर्थ-** मेरी आत्मा के प्रियतम! इस माया ने हमसे परमधाम को भुलवा दिया है, अर्थात् माया के प्रभाव से हम परमधाम को भुला बैठे हैं। मैं इस संसार में प्रतिष्ठा (यश) की बड़ी-बड़ी जालियों के फन्दों में फँस गई हूँ।

**भावार्थ-** सम्पूर्ण सिन्धी ग्रन्थ में श्री महामति जी की आत्मा सुन्दरसाथ के वकील के रूप में कह रही हैं। इस प्रकार इस चौपाई में प्रतिष्ठा के जाल में फँस जाने का भाव श्री महामति जी के लिये नहीं है, बल्कि उन अग्रगण्य सुन्दरसाथ के लिये है, जो जागनी लीला में पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाते हैं। जिस तन में स्वयं अक्षरातीत ही लीला कर रहे हों, उसे लोकेषणा (संसार की प्रतिष्ठा की इच्छा) के बन्धनों में फँसा हुआ नहीं कहा जा सकता।

**मूं मंगी आं डेखारई, करियां गाल केई।**

**हांणे चोराइए ते चुआं थी, गाल गरी थी पेई॥ ७॥**

**शब्दार्थ-** मूं-मैंने, मंगी-माँगा, आं-आपने, डेखारई-दिखाई, करियां-करूँ, गाल-बात, केई-कौन सी, हांणे-अब, चोराइए-बुलवाते हैं, ते-तो, चुआं थी-बोलती हूँ, गरी-भारी, थी-होकर, पेई-पड़ी।

**अर्थ-** मैंने आपसे जो माया का खेल माँगा था, उसे आपने दिखा दिया है। अब मैं आपसे कौन सी बात करूँ? अब तो आप मुझसे जैसा कहलवाते हैं, वैसा ही मैं कहती हूँ। आपसे माया का खेल माँगने की बात तो हमारे लिये बहुत ही भारी पड़ गयी है।

**भावार्थ-** "भारी पड़ने" का कथन एक प्रकार का मुहावरा है। इस संसार में ब्रह्मसृष्टियाँ माया से बहुत त्रस्त (परेशान, पीड़ित) हो चुकी हैं। इसी भाव को दर्शाने के



लिये इस चौपाई के चौथे चरण में माया के भारी होने की बात कही गयी है।

तरसाइए त तरसण मोंहके, मूं मंझां की न सरयो।

सभ गाल्यूं आंजे हथमें, जाणो तींय करो॥ ८॥

**शब्दार्थ-** तरसाइए-बिलखाते, तरसां-बिलखती हूँ, मोंहके-मुझको, मूं-मुझ, मंझा-बीच से, की-कुछ, न-नहीं, सरयो-सकता है, सभ-सब, गाल्यूं-बातें, आंजे-आपके, हथमें-हाथ में, जाणो-जानिए, तींय-तैसा, करो-कीजिए।

**अर्थ-** अपना दीदार देने के लिये आप मुझे तरसा रहे हैं, तो मैं तरस रही हूँ। मुझसे तो कुछ भी नहीं हो सकता। सारी बातें तो आपके हाथ में हैं। अब आप जैसा चाहें, वैसा ही करें।

**भावार्थ-** श्री राज जी के दीदार के लिये तरसने की बात अन्य सुन्दरसाथ के लिये है, श्री महामति जी के लिये नहीं। श्री महामति जी ने तो हब्शा में अपने प्राण प्रियतम का दीदार कर लिया था। आत्मा के धाम हृदय में एक बार शोभा के बस जाने पर पुनः तरसने का प्रश्न नहीं होता, क्योंकि आत्मा उसे पल-पल निहारती रहती है। "दम न छोड़े मासूक को, जाकी असल हक निसबत" का कथन यही भाव प्रकट करता है। श्रीमुखवाणी में अनेक स्थानों पर श्री इन्द्रावती जी के द्वारा हब्शे में दर्शन करने का प्रसंग है-

धनं धनं सखी मेरे सोई रे दिन, जिन दिन पिया जी सो हुआ रे मिलन।

किरंतन ८४/१

तब हार के धनिए विचारियां, मैं क्यों छोडू अरधांग।

फेर बैठे मांहे आसन कर, महामति हिरदे अपंग॥

किरंतन ९९/११

जब आह सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनों अंग॥

कलस हिंदुस्तानी ८/८

सिकाइए त सिकां, मूं में सिकण न की।

रोहोंदिस तेही हाल में, अई रखंदां जीं॥९॥

**शब्दार्थ-** सिकाइए-तड़पाइये, सिकां-तड़पती हूँ, मूं में-मुझमें, सिकण-तड़पना, की-कछु, रोहोंदिस-रहूँगी, तेही-वैसे, हाल में-दशा में, अई-आप, रखंदां-रखोगे, जीं-जैसे।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम! आप मुझे तड़पाते हैं, तो मैं तड़पती हूँ। मुझमें यहाँ स्वतः तड़पने की प्रवृत्ति नहीं है। आप मुझे जिस भी स्थिति (हालत) में रखेंगे, मैं उसी में

सन्तुष्ट रहूँगी।

**भावार्थ-** तड़पने और कुढ़ने में अन्तर होता है। प्रियतम के सुखों की याद में तड़पना तो हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, किन्तु यदि द्वेष से भरकर किसी को बारम्बार याद किया जाये, तो उसे कुढ़ना कहते हैं, जो किसी ब्रह्मात्मा के लिये सम्भव नहीं है।

हिक सिकां तोहिजे सुखके, जे से संभरे सुख।

से सुख हिन विसारियां, हे जे डिठम दुख॥१०॥

**शब्दार्थ-** हिक-एक, सिकां-तड़पती हूँ, तोहिजे-आपके, सुखके-सुख को, जे से-जिससे, संभरे-याद आवें, से-सो, हिन-इस माया ने, विसारियां-भुला दिया, हे जे-यह जो, डिठम-देखती, दुख-दुःख।

**अर्थ-** मैं हर पल आपके सुखों की याद में तड़पती

रहती हूँ, जिससे आपके सुखों की याद बनी रहे। इस मायावी जगत के दुःखों को देखकर हमने तो आपके अखण्ड सुखों को भुला ही दिया है।

**भावार्थ-** संसार के क्षणिक सुखों में फँसकर परमधाम के अनन्त सुखों को भुला देना तो स्वाभाविक हो सकता है, किन्तु माया के दुःखों को बारम्बार भोगने पर भी परमधाम के सुखों की याद न आना एक बहुत बड़ा अपराध है, जो इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों से हो रहा है। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को सिखापन देने के लिये ही श्री महामति जी के द्वारा परमधाम के सुखों को याद करने की बात कही गयी है।

हिन सुखे संदियूं गालियूं, आईन अलेखे।

हियडो मूं सुंजो थियो, हिए न अचे ते॥११॥

**शब्दार्थ-** हिन-इन, सुखे-सुख, संदियूं-की, गालियूं-बातें, आईन-हैं, अलेखे-बेशुमार, हियडो-हृदय, मूं-मेरा, सुंजो-शून्य, थियो-हो गया, हिए-हृदय में, अचे-आता है, ते-वे।

**अर्थ-** यद्यपि परमधाम के सुख की बातें अनन्त हैं, किन्तु इस खेल में मेरा हृदय सूना हो गया है, जिससे निजधाम के सुख की बातें मेरे हृदय में नहीं आ पाती हैं।

**भावार्थ-** प्रेम से रहित हृदय को ही शुष्क या सूना हृदय कहते हैं। माया के कारण आत्मा अपने प्रियतम के अनन्त प्रेममयी स्वरूप को नहीं देख पा रही है, जिससे उसके हृदय में प्रेम की रसधारा नहीं बह पा रही है, और वह संसार के मोहजाल में ही फँसी हुई है। इससे निकलकर वह धाम के अनन्त सुखों की ओर न तो दृष्टिपात कर पा रही है और न ही ज्ञान द्वारा सुनने पर

उनको पाने की इच्छा कर रही है। ब्रह्मसृष्टियों की इस अवस्था का चित्रण इस चौपाई में किया गया है।

जे सुख तोहिजी अंखिएं, डिंना असांके तो।

से सुख कंने मूं सुयां, सुंजो हियो न झल्ले सो॥१२॥

**शब्दार्थ**— जे-जो, तोहिजी-आपकी, अंखिएं-नेत्रों से, डिंना-दिये, असांके-हमको, तो-आपने, कंने-कानों से, मूं-मैंने, सुयां-सुना, सुंजो-शून्य, हियो-हृदय, झल्ले-पकड़े, सो-वह।

**अर्थ**— मेरे प्राण वल्लभ! आप परमधाम में अपने नेत्रों से हमें जो प्रेम का आनन्द देते रहे हैं, उस आनन्द को इस संसार में मैंने अपने कानों से आपकी तारतम वाणी के माध्यम से सुना तो अवश्य, किन्तु मेरा यह सूना हृदय उसे आत्मसात् नहीं कर सका।

**भावार्थ-** इस चौपाई में उन सुन्दरसाथ की आत्मिक अवस्था का वर्णन किया गया है, जो खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ में परमधाम के प्रेम, आनन्द, एवं शोभा-श्रृंगार का वर्णन तो अवश्य पढ़ते हैं, सुनते हैं, किन्तु आचरण में नहीं ला पाते अर्थात् प्रियतम की शोभा को अपने धाम हृदय में नहीं बसा पाते। इस चौपाई को श्री महामति जी के साथ व्यक्तिगत रूप से कदापि नहीं जोड़ना चाहिए, क्योंकि उनके धाम हृदय में तो स्वयं धाम धनी ही विराजमान हैं और उनके तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण कर रहे हैं। सुन्दरसाथ की ओर से प्रस्तुतीकरण के कारण ही श्री महामति जी ने इस चौपाई को इन भावनाओं में व्यक्त किया है।



जे सुख तोहिजे अर्स में, डिंना तो गालिन।

से सभ वीयम विसरी, सुंजे हियडे न चढिन॥१३॥

**शब्दार्थ-** अर्स में-धाम में है, डिंना-दिये, तो-आपने, गालिन-बातों से, सभ-सम्पूर्ण, वीयम-गये, विसरी-भूल, सुंजे-शून्य, हियडे-हृदय में, चढिन-चढ़ते हैं।

**अर्थ-** परमधाम में आपने अपनी प्रेम भरी अमृतमयी बातों से हमें जो सुख दिया है, वे सभी सुख हमसे इस संसार में भूल गये हैं। हमारे इन सूने हृदय (दिलों) में अब वे आते ही नहीं।

**भावार्थ-** दुःख की घड़ियों में पूर्वकाल के अनुभूत सुख का याद आना स्वाभाविक होता है, किन्तु माया के प्रभाव से ब्रह्मसृष्टियों की स्थिति ऐसी हो गयी है कि धनी के प्रेम भरे वचनों को भी वे भूल गयी हैं। तारतम वाणी में उसकी कुछ झलक मिलने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता

कि क्या सचमुच परमधाम में इतने गहन प्रेम की बातें हो सकती हैं? इस सम्बन्ध में श्रृंगार ग्रन्थ की ये चौपाइयाँ देखने योग्य हैं—

मीठी जुबां मीठे वचन, मीठा हक मीठा रूहों प्यार।  
मीठी रूह पावे मीठे अर्स की, जो मीठा करे विचार॥

सिनगार १६/२७

और भी खूबी कानन की, दिल दरदा देवे भान।  
जाको केहे लें पड़ उत्तर, कोई न सुख इन समान॥

सागर ५/११६

के पडूत्तर मूं केयां, के तो केयां कांध।  
से सुंजे हिये न संभरे, विसरया मय रांद॥१४॥  
शब्दार्थ— के—कौन, मूं—मैंने, केयां—किया, कांध—धनी,

संभरे-याद आता है, विसरया-भूल गये, मय-बीच, रांद-खेल के।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आपने मुझसे कौन-कौन से प्रश्न किए हैं और मैंने उनका क्या-क्या उत्तर दिया है, उसकी याद मेरे इस सूने हृदय में नहीं है। इस माया के खेल में सब कुछ भूल सा गया है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इश्क रब्द के समय होने वाली उस वार्ता (प्रश्नोत्तरी) की ओर संकेत किया गया है, जो माया के प्रभाव से भूल गयी हैं। तारतम वाणी के द्वारा पुनः उसकी स्मृति करायी जा रही है।

हिये चढ़ाइए तूं, त सभ सुख हियो झल्ले।

जे सुख डिए मेहेर करे, त बेयो केर पल्ले॥१५॥

**शब्दार्थ-** हिये-हृदय में, चढ़ाइए-चढ़ाओ, तूं-आप,

डिए-देते हैं, करे-करके, बेयो-दूसरा, केर-कौन, पल्ले-पकड़े।

**अर्थ-** यदि आप मेरे हृदय में परमधाम के उन सुखों को चढ़ा दें (बसा दें, स्मरण करा दें), तो मेरा हृदय उन सुखों को आत्मसात् कर लेगा। यदि आप उन सुखों को अपनी मेहर से देते हैं, तो भला आपको ऐसा करने से कौन रोक सकता है?

**भावार्थ-** इस चौपाई में धाम धनी से प्रेम भरी हँसी से पूर्ण यह व्यंग्यात्मक शिकायत की गयी है कि आप परमधाम के सुखों को देना ही नहीं चाहते हैं, अन्यथा आप तो सर्वशक्तिमान हैं। यदि आप परमधाम के सुखों का अनुभव सुन्दरसाथ को कराना चाहें, तो उसमें बाधा डालने की शक्ति किसमें है?

तो तरसाएं तरसण, तोके पसण नैण।

कोड थिए कनन के, तोहिजा सुणन मिठडा वैण॥१६॥

**शब्दार्थ-** तो-आपके, तरसाएं-विलखाये, तरसण-विलखती हूँ, तोके-आपको, पसण-देखने, नैण-नेत्रों से, कोड-हर्ष, थिए-होता है, कनन के-कानों का, तोहिजा-आपके, सुणन-सुनने, मिठडा-मीठे, वैण-वचन।

**अर्थ-** अपने नेत्रों से आपको जी भरकर देखने के लिये मैं तरस रही हूँ। ऐसा आप ही करवा रहे हैं। आपके प्रेम भरे मीठे वचनों को सुनने से मेरे कानों में अपार आनन्द का अनुभव होता है।

**भावार्थ-** इस प्रकार का कथन मात्र सुन्दरसाथ के लिये है। श्री महामति जी ने तो हृद्भा में अपने प्रियतम का साक्षात्कार कर लिया था-

जब आह भी सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग॥

कलस हिन्दुस्तानी ८/८

धन धन सखी मेरे नेत्र अनियाले, धन धन धनी नेत्र मिलाए रसाले।

धन धन मुख धनी को सुन्दर, धन धन धनी चित चुभायो अन्दर॥

किरंतन ८४/२

जब आत्मा अपने धाम हृदय में एक बार भी प्रियतम की शोभा को बसा लेती है, तो वह शोभा हमेशा के लिये अखण्ड हो जाती है। वह उठते, बैठते, सोते, जागते उसी में डूबी रहती है। हाँ! जीव को अवश्य उसके पुनः दीदार की तड़प हो सकती है, क्योंकि पञ्चभौतिक शरीर की सीमाएं हैं और वह लगातार ब्रह्मानन्द रस का पान नहीं कर सकता। इस चौपाई में सुन्दरसाथ में प्रियतम के दीदार की जो प्यास है, उसका बहुत ही मनोहारी चित्रण

किया गया है।

तो तरसाएं तरसण, हियडो मिडन के।

ए डिनो अचे मासूक जो, इस्क अर्स में जे॥१७॥

**शब्दार्थ-** मिडन-मिलने, के-को, ए-यह इश्क, डिनो-दिया, अचे-आता है, मासूक जो-प्रियतम को, इस्क-प्रेम, अर्स में-परमधाम में।

**अर्थ-** मेरा हृदय आपसे मिलने के लिये तरस रहा है। आप मेरे माशूक हैं और परमधाम में जो आपका प्रेम - इश्क है, वह आपके देने से ही हमें प्राप्त होता है।

**भावार्थ-** मारिफत (परमसत्य) के स्वरूप श्री राज जी ही अनन्त प्रेम (इश्क) के सागर हैं। उन्हीं का प्रेम लहर स्वरूप आत्माओं के अन्दर क्रीड़ा करता है। यहाँ इस तथ्य को बहुत ही रोचक ढंग से दर्शाया गया है कि किस

प्रकार श्री राज जी का प्रेम ही सभी स्वरूपों (तनों) में लीला करता है।

**बिहारे वट ओडडी, मथें डिनो परडेह।**

**डिसां न सुणियां गालडी, की करियां चुआं के केह॥१८॥**

**शब्दार्थ-** बिहारे-बैठाए के, वट-पास में, ओडडी-नजदीक, मथें-परसे, डिनो-दिया, परडेह-परदेश, डिसां-देखती, सुणियां-सुनती, गालडी-बात, की-कैसे, करियां-करूँ, चुआं-कहूँ, के केह-किससे।

**अर्थ-** मेरे प्राण वल्लभ! यद्यपि आपने मूल मिलावा में मुझे अपने चरणों में, अपने पास ही, बिठा रखा है, किन्तु ऊपर से हमें इस मायावी जगत में भेज दिया है। इस समय न तो मैं आपको देख पा रही हूँ, और न आपकी बातों को सुन पा रही हूँ। अब आप ही बताइए कि मैं क्या



करूँ? अपने दिल की बातें किससे कहूँ?

**भावार्थ-** आत्मा परात्म की ही प्रतिबिम्ब स्वरूपा है, इसलिये इस खेल में आत्मा के आने को यहाँ ऊपर से आना कहा गया है। दूसरे शब्दों में ऊपर से आने का भाव दूसरी तरफ अन्यत्र आने से भी है। जब तक आत्मा जाग्रत नहीं होती, तब तक इस संसार में न तो वह अपने प्राणवल्लभ को देख पाती है और न उनकी बातें सुन पाती है। इसी प्रकार परमधाम में भी जब तक वह अपने मूल तन परात्म में जाग्रत नहीं हो जाती, तब तक वहाँ भी न तो धनी को देख सकती है और न बातें कर सकती है।

जे अरवाहें अर्स ज्यूं, से सभ मूं अडां न्हारीन।

आऊं पसां आं अडूं, हे बिठयूं जर हारीन॥१९॥

**शब्दार्थ-** अरवाहें-सखियाँ, अर्स ज्यूं-धाम की हैं,

से-सो, मूं-मेरे, अडां-तरफ, न्हारीन-देखती हैं,  
 आऊं-मैं, पसां-देखती हूँ, आं-आपकी, अडूं-तरफ,  
 हे-ए, बिठयूं-बैठी, जर-आँसू, हारीन-बहाती हैं।

**अर्थ-** परमधाम की ये सभी आत्मायें मेरी ओर देख रही हैं और आँसू बहा रही हैं। इनकी ऐसी स्थिति में मैं आपकी ओर देख रही हूँ।

**भावार्थ-** इस जागनी ब्रह्माण्ड में श्री राज जी ने श्री महामति जी को अपनी सारी शोभा दे रखी है। "नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो" का कथन यही सिद्ध करता है। सुन्दरसाथ ने श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप की छवि देखी और उन्हें अपना प्राण प्रियतम मान लिया तथा उनसे परमधाम का आनन्द पाने के लिये विरह में तड़पने लगे। यही आत्माओं का आँसू बहाना है।

एकमात्र अक्षरातीत का आवेश ही आत्माओं को परमधाम का आनन्द दे सकता है क्योंकि एक आत्मा के रूप में श्री महामति जी की आत्मा अक्षरातीत की भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकती, इसलिये श्री महामति जी की आत्मा यही चाहती है कि धाम धनी सभी के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्हें परमधाम का आनन्द प्रदान करें। इसी को श्री महामति जी के द्वारा श्री राज जी की ओर देखना कहा गया है।

तो लिख्यो फुरमान में, मूं अर्स दिल मोमिन।

से सुणी वेंण फुरमान जा, मूंजो झल्यो दिल रूहन॥२०॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, लिख्यो-लिखा, फुरमान में-सन्देश में, मूं-मेरा, अर्स-धाम, दिल-दिल है, मोमिन-सखियाँ, से-सो, सुणी-सुनके, वेंण-वचन, फुरमान

जा-सन्देश का, मूंजो-मेरा, झल्यो-पकड़ा, दिल-दिल, रूहन-ब्रह्मसृष्टियों ने।

**अर्थ-** आपने धर्मग्रन्थों में यह लिखवाया है कि ब्रह्मसृष्टियों का हृदय ही मेरा धाम है। धर्मग्रन्थों के इन कथनों को सुनकर (देखकर, पढ़कर) आत्माओं ने मेरे ही दिल (हृदय) को पकड़ लिया है।

**भावार्थ-** कुरआन के पारा १ सिपारा २ आयत १८६ में कहा गया है कि ब्रह्मसृष्टियों (मोमिनो) के धाम हृदय में ही प्रियतम परब्रह्म का वास होता है। इसी प्रकार का कथन अथर्ववेद के केन सूक्त तथा सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद के प्रपाठक ८/१, २, ३ में वर्णित है।

त केहो पडूत्तर मूंहके, चुआं कुरो रूहन।

रूहें उमेदूं मूं में, आंके सभ रोसन॥२१॥

**शब्दार्थ-** त-तो, केहो-कौन, पडूत्तर-जवाब, मूंहके-मेरे को, चुआं-कहूँ, कुरो-क्या, रुहन-सखियों को, रुहें-ब्रह्मसृष्टि की, उमेदूं-चाहनायें, मूं में-मुझमें हैं, आंके-आपको, सभ-सम्पूर्ण, रोसन-जाहिर हैं।

**अर्थ-** हे मेरे धाम धनी! अब आप मुझे क्या उत्तर देते हैं? मैं इन आत्माओं से क्या कहूँ? ब्रह्मसृष्टियों की सारी आशायें मुझमें ही केन्द्रित हैं। आपको इन सारी बातों की जानकारी है।

**भावार्थ-** "कही तुम साक्षात् अक्षरातीत हो, हम चीन्हा तुम्हें बनाए", तथा "धनी बिना तुम्हें और देखे, सो नहीं मिसल मातबर", एवं "मोमिन सेवें कर मरद" आदि बीतक साहिब के कथनों से यह सिद्ध होता है कि सभी सुन्दरसाथ ने श्री महामति जी को अक्षरातीत (श्री राज जी, श्री प्राणनाथ जी) के रूप में ही माना और उनसे

परमधाम के सुखों की इच्छा की। श्रीमुखवाणी के कथनों से भी यही स्पष्ट होता है।

तुम ही उतर आए अर्स से, इत तुम ही कियो मिलाप।

तुम ही दर्ई सुध अर्स की, ज्यों अर्स में हो आप॥

सिनगार २३/३१

नर नारी बूढ़ा बालक, जिन इलम लिया मेरा बूझ।

तिन साहेब कर पूजिया, अर्स का एही गूझ॥

किरंतन १०९/२१

उनकी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही श्री महामति जी की आत्मा मूल स्वरूप से निवेदन कर रही है।

हाणे केहडो हाल मूंहजो, रूहें केहडो हाल।

न डेखारे न डिठम, बेओ तो रे नूरजमाल॥२२॥

**शब्दार्थ-** हाणे-अब, केहडो-कौन, हाल-हाल है, मूंहजो-मेरा, रुहें-सखियों का, केहडो-कौन, हाल-हाल है, न-नहीं, डेखारे-दिखाते हैं, न-नहीं, डिठम-देखती हूँ, बेओ-दूसरा, तो रे-आपके बिना, नूरजमाल-धाम धनी।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! अब आप ही देखिये कि इस खेल में मेरी तथा अन्य आत्माओं की कैसी स्थिति है? आपने अपने अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्रियतम के रूप में न तो हमें दिखाया है और न ही हमने देखा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में श्री राज जी के प्रति प्रेम की एकनिष्ठा दर्शायी गयी है। ब्रह्मसृष्टियों का जब श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई प्रियतम है ही नहीं, तो अपने मन की व्यथा और किससे कहें?

तो डिंनी सोहेली करे, न तां वाट घणूं विखम।

हेआं हल्लो सभ सुखन में, रूहें घुरें एह खसम॥२३॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, डिंनी-दिया, सोहेली-सेहेज, करे-करके, न तां-नहीं तो, वाट-रास्ता प्रेम का, घणूं-बहुत, विखम-कठिन है, हेआं-यहाँ से, हल्लो-चलें, सुखन में-सुखानन्द में, रूहें-ब्रह्मसृष्टि, घुरें-माँगती हैं, एह-यह, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** हे धाम धनी! यद्यपि प्रेम की राह बहुत ही कठिन है, किन्तु आपने बहुत ही सरलता से हमें यह मार्ग दिया है। आपसे सभी ब्रह्मसृष्टियाँ यही माँगती हैं कि अब हम इस संसार को छोड़कर उस परमधाम में चलें, जहाँ पूर्ण अनन्त आनन्द है।

**भावार्थ-** तारतम ज्ञान के बिना इस सृष्टि में आज दिन तक किसी को भी यह पता नहीं चल पाया कि वह अपने



प्रेम का पात्र किसे बनाये और किस प्रकार उसे रिझाये (प्रेम करे)? सूर, मीरा, और रसखान का प्रेम अक्षरातीत से न होकर कहीं और भटक गया। इसी प्रकार बड़े-बड़े योगी एवं ज्ञानी-महात्मा भी स्वर्ग, वैकुण्ठ, निराकार, तथा बेहद के पीछे भागते रहे हैं। अक्षरातीत के प्रति अनन्य प्रेम का मार्ग इस सृष्टि में तारतम ज्ञान के द्वारा ही सम्भव हो पाया है।

तो पाण डेखारे डिठम, बेओ कोए न रखे हंद।

सेहेरग से डेखारे ओडडो, कित करणो पेओ न पंध॥२४॥

**शब्दार्थ-** पाण-आप ही, डेखारे-दिखाया सो, डिठम-देखा, बेओ-दूसरा, कोए-कोई भी, रखे-रखा, हंद-ठिकाना, सेहेरग से-ज्ञान द्वारा, डेखारे-दिखाया, ओडडो-नजदीक, कित-कहीं, करणो-करने, पेओ-

पड़ा, पंध-रास्ता।

**अर्थ-** आपने हमें स्वयं को दिखाया है, अर्थात् अपनी पहचान दी है। अब आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा ठिकाना (आधार) हमें दिखाई नहीं देता। आपने स्वयं को प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट बताया है। यही कारण है कि हमें अन्य कहीं भी दूर नहीं जाना पड़ा।

**भावार्थ-** आत्मा के एकमात्र प्रियतम अक्षरातीत ही है। उनका स्थान अन्य कोई भी नहीं ले सकता। परमधाम के मूल सम्बन्ध से धाम धनी आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान होते हैं, जिन्हें प्राणनली से भी अधिक निकट कहकर व्यक्त किया जाता है। आत्मा के दिल के अतिरिक्त प्रियतम को किसी अन्य स्थान (मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि) में नहीं पाया जा सकता। श्री

गुम्मट जी मन्दिर में भी धाम धनी श्री महामति जी के धाम हृदय में ही विराजमान हैं।

तो चुआंयो चुआं थी, मूंजी या उमत।

असीं इंदासी कोठियां, कोठीने जे भत॥२५॥

**शब्दार्थ-** तो-आपके, चुआंयो-कहलाने से, चुआं थी-कहती हूँ, मूंजी-मेरी, या-अर्थात्, उमत-साथ की, असीं-हम, इंदासी-आयेंगी, कोठियां-बुलाने से, कोठीने-बुलाओ, जे-जिस, भत-तरह से।

**अर्थ-** हे धनी! आपके कहलाने से ही मैं अपनी या अन्य ब्रह्मसृष्टियों की बातें कहती हूँ। आप जिस तरह से भी हमें बुलायेंगे, हम सभी उसी तरह से आ जायेंगी।

**भावार्थ-** इस चौपाई से यह बात पूर्णतया स्पष्ट है कि सम्पूर्ण सिन्धी ग्रन्थ में कहीं महामति जी (इन्द्रावती जी)

के द्वारा स्वयं की ओर से कहा गया है, तो कहीं सुन्दरसाथ की ओर से वकील के रूप में कहा गया है। कहीं-कहीं पर प्रत्यक्ष रूप में सम्बोधन तो स्वयं के लिये है, किन्तु परोक्ष (गुप्त) रूप में अन्य ब्रह्मसृष्टियों के लिए कहा गया है, जैसे- "हिक मंगां दीदार तोहिजो" अर्थात् मैं आपका दर्शन चाहती हूँ। श्री इन्द्रावती जी को तो हब्शा में दीदार हो चुका है, किन्तु ऐसा वह धनी से सुन्दरसाथ को दीदार देने के लिये कह रही हैं।

**रुहें असीं निद्रमें, न तां घणां लाड घुरन।**

**अंई जाणोथा सभ की, जे हाल आए रुहन॥२६॥**

**शब्दार्थ-** रुहें-ब्रह्मसृष्टि या सखी, असीं-हम, निद्रमें-निद्रा में हैं, न तां-नहीं तो, घणां-बहुत, लाड-प्यार, घुरन-माँगे, अंई-तुम, जाणोथा-जानते हैं, सभ की-

सम्पूर्ण, जे-जो, हाल-हालत, आए-है, रुहन-ब्रह्मसृष्टि की।

**अर्थ-** हम सभी आत्मायें माया की नींद (फरामोशी) में हैं, अन्यथा आपसे बहुत अधिक प्यार माँगती। इस खेल में सभी ब्रह्मसृष्टियों की जो स्थिति (हालत) है, उसे आप बहुत अच्छी तरह से (यथार्थ रूप से) जानते हैं।

**भावार्थ-** प्रेम का वास्तविक स्वरूप जाग्रत अवस्था में ही दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि प्रेम त्रिगुणातीत है। माया से पृथक होते ही आत्मा के अन्दर प्रियतम के प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रहती।

चायो आंजों चुआंथी, मूं हंद न्हाए कुछण।

संग वीयम विसरी, छडिम ते घुरण॥२७॥

**शब्दार्थ-** चायो-कहलाया, आंजों-आपका, चुआंथी-

कहती हूँ, मूं-मेरा, हंद-ठिकाना, न्हाए-नहीं है ,  
कुछण-बोलने का, संग-सम्बन्ध, वीयम-गई, विसरी-  
भूल तिससे, छडिम-छोड़ती हूँ, ते-इसलिये, घुरण-  
माँगना।

**अर्थ-** आपके कहलाने से ही मैं यह सब कह रही हूँ,  
नहीं तो मेरे पास कहने के लिये कुछ भी नहीं है। अब तो  
मैं आपसे अपने मूल सम्बन्ध को भूल गयी हूँ, इसलिये  
मैंने माँगना ही छोड़ दिया है।

**भावार्थ-** प्रियतम से अपने मूल सम्बन्ध की पहचान  
होने पर ही अपने अधिकार का भान (आभास) होता है,  
और माँगने की इच्छा होती है। संशयात्मक स्थिति में पूर्ण  
समर्पण एवं प्रेम नहीं होता, जिससे माँगने में दास भावना  
प्रबल हो जाती है। ऐसी स्थिति में अँगना के प्रेमपूर्वक  
अधिकार से माँग पाना सम्भव नहीं होता। इस चौपाई में

यही बात दर्शायी गयी है।

**घुरण अचे दिल में, पण द्रजां तोहिजे द्राए।**

**लाड करे त घुरां, जे पसां संग सांजाए॥२८॥**

**शब्दार्थ-** अचे-आता है, पण-परन्तु, द्रजां-डरती हूँ, तोहिजे-आपके, द्राए-डराने से, लाड-प्यार, करे-करके, घुरां-माँगू, पसां-देखो, संग-सम्बन्ध की, सांजाए-पहचान।

**अर्थ-** यद्यपि मेरे दिल में आपसे माँगने की इच्छा तो होती है, किन्तु आपके डर से भय लगता है। यदि मुझे आपसे अपने मूल सम्बन्ध की पहचान हो जाये, तो मैं आपसे प्रेमपूर्वक माँग सकती हूँ।

**भावार्थ-** पूर्ण पहचान के बिना पूर्ण समर्पण (दिल देना) नहीं होता। पूर्ण समर्पण की नींव पर ही प्रेम का स्वर्णिम

महल खड़ा होता है। इस प्रकार बिना पूर्ण समर्पण एवं प्रेम के अधिकारपूर्वक माँग पाना सम्भव नहीं होता। ऐसी अवस्था में माँगने में भय या संकोच का अनुभव होना स्वाभाविक ही है।

**रूहें चोंण सभे मूंहके, हाणे आंउं चुआं के केह।**

**न पसां न सुणियां संडेहडो, डिंने पेरे हेठ परडेह॥२९॥**

**शब्दार्थ-** चोंण-कहती हैं, सभे-सम्पूर्ण, मूंहके-मुझे, हाणे-अब, आं-मैं, चुआं-कहूँ, के केह-किनको, पसां-देखती हूँ, सुणियां-सुनती हूँ, संडेहडो-सन्देश, डिंने-दिया, पेरे-चरणों के, हेठ-तले, परडेह-परदेश।

**अर्थ-** ये सभी आत्मायें प्रेम पाने के लिये मुझसे कह रही हैं। मेरे सामने यह प्रश्न है कि उनकी इस बात को मैं आपके अतिरिक्त किससे कहूँ? इस मायावी जगत् में न



तो मैं आपको देख पा रही हूँ और न आपके प्रेम भरे सन्देशों को सुन पा रही हूँ। आपने मुझे अपने चरणों में बिठाकर भी विदेश दे दिया है, अर्थात् माया में भेज दिया है।

**भावार्थ-** श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप को विराजमान हुआ देखकर सब सुन्दरसाथ ने उन्हें अक्षरातीत का ही स्वरूप माना और उनसे परमधाम के प्रेम की आकांक्षा की। श्री महामति जी को अक्षरातीत की शोभा तो मात्र जागनी लीला के लिये ही दी गई है। परमधाम के अखण्ड प्रेम को सामूहिक रूप से मूल स्वरूप ही दे सकते हैं। इसी बात को दर्शाते हुए श्री महामति जी ने श्री राज जी से प्रार्थना की है कि आप सभी सुन्दरसाथ को प्रेम और आनन्द से भरपूर तृप्त कीजिए।

श्री इन्दावती जी की परात्म न तो अपने प्राणेश्वर को देख पा रही है और न उनकी बातें ही सुन पा रही है। इस जागनी लीला में उनकी आत्मा अवश्य अपने धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप को देख रही है तथा उनकी बातें भी सुन रही है। श्री बीतक साहिब में इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया गया है—

सम्बत सत्रह सै उनइसे, देस पर आया कुतुबखान।

उत इल्हाम् हुआ, थी ब्रह्मसृष्टि की पहिचान॥ १८/६५

पीछे ते जबरईलें, दिया जब इल्हाम।

ए पैगाम जो भेजिया, पर होवेगा नहीं काम॥ ३५/२५

प्रियतम को इस संसार में न देख पाने और उनकी बातों को न सुन पाने का कथन भावुकता में कहा गया है, जिसका आशय है— इन पंचभौतिक नेत्रों से न देख पाना और बाह्य कानों से न सुन पाना। यह बात आगे की

चौपाई में व्यक्त की गई है।

**सचो सोणे जीं थेयो, भाइयां सोणो थेयो सचो।**

**लाड कोड के से करियां, अंखिएं जां न अचो॥३०॥**

**शब्दार्थ-** सचो-सच्चा धाम, सोणे-सुपने, जीं-जैसे, थेयो-भया, भाइयां-जानो, सोणो-सपना(संसार), कोड-हर्ष, के से-किनसे, करियां-करों, अंखिएं-दृष्टि में, जां-जहाँ तक, अचो-आओ।

**अर्थ-** अखण्ड परमधाम हमें अब सपने के समान लगने लगा है, जिससे यह झूठा संसार ही इस समय सच्चा प्रतीत हो रहा है। जब तक आप मेरी आँखों के सामने नहीं आ जाते, तब तक मैं किससे प्रेम करूँ?

**भावार्थ-** माया के प्रभाव से ब्रह्मसृष्टियों को अपने ही परमधाम के अस्तित्व पर संशय होने लगता है। इसे ही

स्वप्न के समान प्रतीत होना कहते हैं, जिसमें परमधाम की बातें स्वप्न के समान मिथ्या प्रतीत होती हैं। माया के कारण ही इस संसार के मिथ्या सम्बन्ध एवं सुख अखण्ड प्रतीत होते हैं, जिन्हें इस चौपाई में "सच्चा" कहकर दर्शाया गया है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरा मूल सम्बन्ध तो आपसे है। इसलिये जब तक आपका दीदार न हो तब तक मैं प्रेम किससे करूँ? आपके अतिरिक्त अन्य किसी से प्रेम करने का प्रश्न ही नहीं है।

की करियां गालडी, जां न पसां पांहिजे नैण।

जे सुणाइए त सुणां, मिठडा तोहिजा वैण॥३१॥

शब्दार्थ— की-कैसे, करियां-करूँ, गालडी-बातें, पांहिजे-अपने, नैण-आँखों से, सुणाइए-सुनाइये,

सुणां-सुनूँ, मिठडा-मधुर, तोहिजा-आपके, वैण-वचन।

**अर्थ-** जब तक मैं आपको अपने नयनों से देख नहीं लेती, तब तक मैं आपसे कैसे बात करूँ? अब आप ही अपने अमृत भरे मीठे वचनों को सुनायें, तो मैं अवश्य सुनूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में विरह एवं समर्पण के मनोरम भावों का वर्णन किया गया है। प्रियतम के प्रत्यक्ष हुए बिना बातें करने का आनन्द नहीं मिल सकता। यह विरह की टीस (पीड़ा) ही कह रही है कि प्रियतम! आप मेरे सामने आओ और अपनी प्रेम भरी बातें सुनाओ। वस्तुतः इस चौपाई में सभी सुन्दरसाथ को इस राह पर चलाने के लिये निर्देश दिया गया है।

सुख तोहिजा सिपरी, अचे न लेखे में।

पार न अचे अपारजो, कडी न गणियां के॥३२॥

**शब्दार्थ-** तोहिजा-आपका, सिपरी-हे प्रियतम, अचे-आता है, लेखे-शुमार के, में-बीच में, पार-शुमार, अचे-आता है, अपार-बेशुमार का, जो-जिसको, कडी-कभी, गणियां-हिसाब किया, के-किसी ने।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आपके सुख तो अनन्त हैं, जिनका वर्णन (लेखन) नहीं हो सकता। आपके अनन्त सुखों की कोई सीमा नहीं है। यही कारण है कि आज तक किसी ने भी इस सुख का हिसाब (माप) नहीं किया (गिना नहीं) है।

गुझांदर रूहन जो, सभे तूं जाणो।

कुरो चुआं विच वडी थेई, मूं पांहिजेडी न पांणे॥३३॥

**शब्दार्थ-** गुझांदर-छिपा दिल, रुहन-सखियों, सभे-सम्पूर्ण, तूं-आप, जांणे-जानते हैं, कुरो-क्या, चुआं-कहूँ, विच-बीच में, वडी-बड़ी, थेई-होकर, मूं-मैं, पांहिजेडी-आप जैसी, पांणे-आप।

**अर्थ-** आत्माओं के हृदय की छिपी हुई सभी बातों को आप यथार्थ रूप से जानते हैं। मैं इन सखियों के बीच इतनी बड़ी शोभा लेकर क्या कहूँ? मैं स्वयं को आप जैसा नहीं पाती, अर्थात् मैं आपका स्थान नहीं ले पाती।

**भावार्थ-** इस चौपाई में श्री महामति जी की आत्मा ने अपने भावों को व्यक्त किया है कि मेरे धाम धनी ! इस खेल में अवश्य मैंने आपका नाम (श्री राज, प्राणनाथ), शोभा (अक्षरातीत), और श्रृंगार लिया है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि अन्य आत्माओं की तरह मैं भी एक आत्मा हूँ, भले ही सभी सुन्दरसाथ मुझे आपका

स्वरूप समझते हैं। मेरी यह सम्पूर्ण शोभा आपसे ही है और हम सभी आत्माओं के केन्द्र में एकमात्र आप ही हैं।

**जा कांध न करे पांहिंजो, उभी बियनके चोए।**

**डे सोहाग बियनके, पांण अंगण ऊभी रोए॥३४॥**

**शब्दार्थ-** जा-जहाँ तक, कांध-प्रियतम को, करे-बनावें, पांहिंजो-अपना, उभी-खड़ी होकर, बियनके-दूसरों को, चोए-कहे, डे-देवें, सोहाग-सुख, बियन-दूसरी, के-को, पांण-आप, अंगण-आँगन में, ऊभी-खड़ी, रोए-रोवे।

**अर्थ-** मेरी स्थिति तो उस आँगना (पत्नी) की तरह है, जो स्वयं तो अपने पति को प्रेम से वश में नहीं कर पाती, किन्तु दूसरों को समझाती रहती है कि पति को कैसे रिझाना चाहिए? यद्यपि वह आँगन में खड़ी होकर



प्रियतम के सुख के लिये आँसू बहाती रहती है, किन्तु दूसरों को धनी का सुख पाने का उपदेश देती रहती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई को पढ़कर सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि श्री महामति जी को न तो प्रियतम का प्रेम मिला और न वे धाम धनी को अपने प्रेम से रिझा सकी, किन्तु यथार्थ कुछ अलग ही है। श्री महामति जी ने तो अपने प्राणवल्लभ को इस प्रकार रिझाया कि उन्हें अपने वश में कर लिया और दूसरी आत्माओं को चुनौती भी दी कि जिस प्रकार मैंने अपने धाम धनी को वश में कर लिया है, उस तरह कोई भी नहीं कर सकता।

मैं सभी को प्रियतम को वश में करने वाला वशीकरण मन्त्र भी सिखा सकती हूँ, किन्तु इसका लाभ मेरी तरह कोई भी नहीं ले सकता। मैंने तो श्री राज जी को अपने प्रेम रूपी पिंजरे में तोता बनाकर रखा है। इसकी साक्षी

श्रीमुखवाणी की ये पंक्तियां ही दे रही हैं—

सेवा कंठमाला घालूं तेह सनंधनी, पोपट करूं नीलडे पांख।

प्रेमतणां पांजरा मांहें घाली, हूं थाऊं साख ने द्राख॥

इन्द्रावती ने एकांते हाथ आव्या, हवे जो जो अमारो बल।

ते वसीकरण करूं रे तमने, जेणें अलगां न थाओ नेहेचल॥

षट्क्रतु ८/३१,३५

वस्तुतः इस चौपाई में स्वयं के प्रति कथन करके उन अग्रगण्य सुन्दरसाथ को शिक्षा दी गयी है, जिनके सिर पर जागनी का उत्तरदायित्व होता है। ऐसे सुदरसाथ दूसरों की जाग्रति के लिये तो विरह और प्रेम के सम्बन्ध में लम्बे-चौड़े व्याख्यान देते हैं, किन्तु स्वयं वे विरह-प्रेम से कोसों दूर रहते हैं। ऐसे अग्रगण्य सुदरसाथ को समाज में तो शोभा मिल जाती है, किन्तु उनका हृदय प्रियतम के प्रेम के बिना सूना ही रहता है। आगे की

चौपाई में भी यही प्रसंग है।

बेओ जमारो वडाई में, बेठी खोए उमर।

डे वडाइयूं बियनके, पाण न खुल्यो दर॥३५॥

**शब्दार्थ-** बेओ-गई, जमारो-उमर, वडाई-बुजुर्गी, बेठी-बैठकर, खोए-गँवाकर, उमर-आयु, डे-देवे, बियन-दूसरी, खुल्यो-खुला, दर-दरवाजा।

**अर्थ-** इसी शोभा को सम्भालने में मेरी सारी उम्र बीत गयी। दूसरों को समझाकर मैंने शोभा तो ली, किन्तु स्वयं के लिये प्रेम और आनन्द का दरवाजा नहीं खोला।

**भावार्थ-** इस चौपाई में परोक्ष रूप से यह शिक्षा दी गयी है कि धनी की वाणी को जन-जन तक पहुँचाना तो आत्माओं के लिये अवश्य ही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है, किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक है-"अपने प्राणप्रियतम को

अपने धाम हृदय में बसा लेना।"

थेई धणी सें सुरखरू, सोई सोहागिण होए।

सा मर गिंने पाणसे, जे आडो पट न कोए॥३६॥

**शब्दार्थ-** थेई-होवे, धणी-प्रीतम, सें-सों, सुरखरू-सनमुख, सोई-वही, सोहागिण-सुहागिन, होए-होवे, सा-सो, मर-भले, गिंने-लेवें, पाणसे-आपको, जे-जिनको, आडो-बीच में, पट-परदा, न-नहीं है, कोए-कोई।

**अर्थ-** जो स्त्री अपने प्रियतम के सम्मुख रहती है, वही सुहागिन कहलाने का अधिकार रखती है। यद्यपि वह अपने सिर पर सखियों में प्रमुखता (बड़ापन) की शोभा ले सकती है, क्योंकि उसके और धनी के बीच में किसी भी प्रकार का पर्दा नहीं रह जाता है।

**भावार्थ-** प्रियतम के सम्मुख रहने का तात्पर्य है- माया से अलग होकर सर्वदा ही प्रियतम की शोभा को अपने धाम हृदय में बसाये रखना। इस अवस्था को प्राप्त होने वाली आत्मा को प्रियतम परब्रह्म की सान्निध्यता से जो शोभा मिलती है, उसमें उस आत्मा के ऊपर कोई भी दोष नहीं लग पाता, क्योंकि यह शोभा धाम धनी की ओर से दी जाती है। प्रिया-प्रियतम जब एक हो जाते हैं, तो किसी भी प्रकार का पर्दा रहता ही नहीं। धाम धनी के प्रेम से दूर रहकर केवल शुष्क ज्ञान द्वारा शोभा की आकांक्षा करने में निश्चित रूप से दोष लगता है।

आंऊं पांहिजी परमें, की की पाणके भाइयां।

वडी थीयन विचमें, छेडो छडाइयां॥३७॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, पांहिजी-अपने, परमें-तरह में

(विषय में), की की-कुछ कुछ, पाणके-आपको, भाइयां-जानती हूँ, वडी-बड़ी, थीयन-होने को, विचमें-बीच में, छेडो-पल्ला, छडाइयां-छुड़ाती हूँ।

**अर्थ-** मैं अपने विषय में तथा आपके विषय में कुछ - कुछ जानती हूँ। यही कारण है कि मैं सखियों के बीच बड़ी कहलाने की शोभा से बचती रही हूँ।

**भावार्थ-** धाम धनी की मेहर के बिना धनी को तथा स्वयं को यथार्थ रूप से जान पाना सम्भव नहीं है। जब श्री देवचन्द्र जी के अन्दर श्री राज जी विराजमान होकर लीला कर रहे थे, उस समय सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी विलख-विलख कर सुन्दरसाथ से पत्र लिखवाते थे, ताकि उन्हें जागनी की शोभा मिले। ऐसा इसलिये हो रहा था, क्योंकि उनकी आत्मा अभी पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हो सकी थी और उन्हें अपने निज स्वरूप की पूर्ण

पहचान नहीं थी।

इन पड़उत्तर वास्ते, बाईजीएं किए उपाए।

विलख विलख वचन लिखे, सो ले ले रूहें पोहोंचाए॥

सनंध ४१/२१

आवेस जाको मैं देखे पूरे, जोगमाया की नींद होए।

पर जो सुख दीसे जागनी, हम बिना न जाने कोए॥

कलस हिन्दुस्तानी २३/४६

इसके विपरीत श्री इन्द्रावती जी की आत्मा ने जब अपने स्वरूप को पहचाना, तो सारी शोभा को ठुकरा देना चाहा। अन्ततः वे धाम धनी के आदेश (हुक्म) से ही जागनी कार्य के लिये तैयार हो सकी—

मैं तो अपनो दे रही, पर तुमहीं राख्यो जिउ।

बल दे आप खड़ी करी, कछु कारज अपने पिऊ॥

सनंध १०/९

गाल्यूं मूंजे दिलज्यूं, सभ तूंहीं सुजाणे।

हे सभेई तोहिज्यूं, तो करायूं पांणे॥३८॥

**शब्दार्थ-** गाल्यूं-बातें, मूंजे-मेरे, दिलज्यूं-दिल की, सभ-सम्पूर्ण, तूंहीं-आप ही, सुजाणे-जानते हो, हे-यह, सभेई-सम्पूर्ण, तोहिज्यूं-आपको, तो-आपने, करायूं-कराया, पांणे-आप ही।

**अर्थ-** मेरे प्राणप्रियतम! मेरे दिल की सभी बातों को आप ही जानते हैं। यह सारी लीला आपने ही की है और आप ही कराते हैं।

**भावार्थ-** आत्म-जाग्रति की अवस्था में आत्मा के धाम हृदय में प्रेम का सिंहासन सजा होता है और उस पर युगल स्वरूप विराजमान होते हैं। इस अवस्था में शरीर,



संसार, एवं जीव की "मैं" समाप्त हो जाती है तथा इस झूठे जगत् में किसी भी प्रकार की शोभा लेने की आकांक्षा नहीं रह जाती। आत्मा प्रेम के सागर में आकण्ठ डूबकर यही कहती है— मेरे प्राणेश्वर! सब कुछ करने वाले तो आप हो। मेरा तो कोई अस्तित्व ही नहीं है, जो आपसे किसी शोभा को पाने की कामना करूँ। मेरी "मैं" तो आपके अखण्ड प्रेम में विलीन हो चुकी है।

**मथे आंऊं त गिंना, जे की मूंमें होए।**

**आंऊं गुझ जाणा पाण विच जो, बेओ न जाणे कोए॥३९॥**

**शब्दार्थ—** मथे—ऊपर, आंऊं—मैं, त—तब, गिंना—लेऊँ, जे—जो, की—कुछ, मूंमें—मुझमें, होए—होवे, आंऊं—मैं, गुझ—छिपा, जाणा—जानती हूँ, पाण—आपके, विच जो—बीच को, बेओ—दूसरा, न—नहीं, जाणे—जानते हैं, कोए—

कोई।

**अर्थ-** यदि मेरे अन्दर किसी प्रकार का अहम् भाव होता, तो मैं इसका उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) अपने ऊपर ले लेती। मेरे और आपके बीच में मूल सम्बन्ध और अखण्ड प्रेम की जो गुह्य बातें हैं, उसे मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी आत्मा नहीं जानती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी के कथन का आशय यह है कि हे धाम धनी! हब्शा में विरह एवं प्रेम के मेरे जो पल गुजरे हैं, उन्हें केवल मैं ही जानती हूँ। आप मुझसे किस प्रकार एकाकार हुए हैं, यह भी केवल मुझे ही पता है। इस प्रकार मुझे मिलने वाली सम्पूर्ण शोभा आपके द्वारा स्वतः दी गई है। मैंने अपने विरह-प्रेम या शोभा का कोई भी अहम् नहीं पाला है, बल्कि मेरी "मैं" तो आपके प्रेम में पूर्णतया विलीन हो गयी है।

मूँके वडी वधारिए, डिंने सभनी में सोहाग।

की डिठम की डिसंदिस, जेडो कंने भाग॥४०॥

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझे, वडी-बड़ा, वधारिए-बनाया, डिंने-दिया, सभनी-सबों के, में-बीच में, सोहाग-सुहाग, की-कुछ, डिठम-देखा, की-कुछ, डिसंदिस-देखूँगी, जेडो-जैसे, कंने-करेंगे, भाग-नसीब में।

**अर्थ-** आपने मुझे सभी सखियों के बीच में बड़ी शोभा देकर प्रमुख (सरदार) बना दिया। मेरे भाग्य में जो कुछ भी है, उसे ही मैंने अब तक देखा है और भविष्य में भी उसे ही (जो कुछ है) देखूँगी।

**भावार्थ-** यहाँ भाग्यवाद का तात्पर्य कालमाया वाला कर्मफल का भाग्यवाद नहीं है, बल्कि मूल स्वरूप ने श्री इन्द्रावती जी सहित सभी आत्माओं के साथ क्या-क्या लीला होनी है, वह अपने दिल में पहले ही ले लिया है,

जो उनके हुक्म (आदेश) से वैसा ही घटित होता जा रहा है। इसे ही आत्माओं का भाग्य कहकर दर्शाया गया है।

**त केहो जवाब रुहनके, विच करियां की आंऊं।**

**न की सुणाइए गुझ में, न पांइदडे धांऊं॥४१॥**

**शब्दार्थ-** त-तो, केहो-कौन, जवाब-उत्तर, रुहन-सखियों, के-को, विच-बीच में, करियां-करूँ, कीअ-कैसे, आंऊं-मैं, न-नहीं, की-कुछ, सुणाइए-सुनाते हैं, गुझ में-छिपकर, न-नहीं, पांइदडे-करते, धांऊं-पुकार।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! अब आप ही बताइये कि मैं ब्रह्मसृष्टियों के बीच क्या उत्तर दूँ और क्या करूँ? न तो मैं आपकी गुह्य बातों को सुन पा रही हूँ और न आप मेरी

पुकार का उत्तर दे रहे हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप अखण्ड रूप से विराजमान हैं तथा श्री इन्द्रावती जी की आत्मा धनी से हमेशा ही बातचीत करती है और दीदार भी करती हैं, किन्तु उसकी अनुभूति जीव को हमेशा नहीं हो पाती। इस प्राकृतिक जगत की मर्यादाओं के अनुसार जीव को पल-पल दर्शन तथा बातचीत के अनुभव का अधिकार नहीं है। विरह की यही वेदना श्री मिहिरराज जी के जीव से प्रकट हो रही है, जिसे श्री महामति जी के कथन में जोड़ दिया गया है।

दूसरे शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी ने श्री राज जी से उलाहना के भावों में कहा है कि मैं इन ब्रह्मसृष्टियों को क्या उत्तर दूँ, जो मुझे अक्षरातीत मानकर मुझसे प्रेम पाना चाहती हैं। आप

स्वयं इस संसार में इनकी मनोकामना पूर्ण क्यों नहीं करते?

तो मूँके ई बुझाइयो, जे तूं हेकली थिए।

त तोसे करियां गालडी, दीदार पण डिए॥४२॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, मूँके-मुझे, ई-इस तरह, बुझाइयो-समझाया, जे-जो (इन्द्रावती), तूं-तुम, हेकली-अकेली, थिए-हो, त-तो, तोसे-तुमसे, करियां-करूँ, गालडी-बातें और, दीदार-दर्शन, पण-भी, डिए-देऊँ।

**अर्थ-** इस सम्बन्ध में आपका कथन है कि हे इन्द्रावती! यदि तू अकेली हो जा, तो मैं तुमसे प्रेम भरी बातें करूँ और दीदार भी दूँ।

**भावार्थ-** "सब साथ करूँ मैं आपसा, तो मैं जागी

प्रमान" (कलस हिंदुस्तानी २३/४५) के कथनानुसार श्री महामति जी की आत्मा सब सुन्दरसाथ को परमधाम के प्रेम और आनन्द में डुबोना चाहती है, किन्तु इस खेल की मर्यादा के अनुसार यह सम्भव नहीं है। इसी सन्दर्भ में धाम धनी कहते हैं कि हे इन्द्रावती! मैंने तुम्हारे धाम हृदय में विराजमान होकर तुम्हें जो शोभा दी है, वह अन्य किसी को नहीं मिलने वाली है।

यद्यपि प्रत्येक आत्मा को २५ पक्षों सहित युगल स्वरूप के दीदार एवं परमसत्य (मारिफत) की अवस्था में पहुँचने का अधिकार है, किन्तु जागनी का जो सुख श्री महामति जी को मिला है, वह सुख अन्य किसी भी आत्मा को नहीं मिलने वाला है।

आंऊं हेकली की थियां, बी लगाई तो।

तो रे आए को कित्तिई, जे हिनके पल्ले सो॥४३॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, हेकली-अकेली, की-कैसे, थियां-होऊँ, बी-दूसरी (साथ), लगाई-लगाया, तो-आपने, तो रे-आपके बिना, आए-है, को-कौन, कित्तिई-कहीं, जे-जो, हिनके-इनके, पल्ले सो-पकड़े सोई।

**अर्थ-** हे धाम धनी! मैं आपके पास अकेली कैसे आऊँ? आपने मेरे पीछे इन अन्य आत्माओं को भी तो लगा रखा है। आपके अतिरिक्त कहीं पर भी और कौन है, जो इनका पल्ला पकड़ सके?

**भावार्थ-** इस चौपाई में परमधाम की सभी आत्माओं को प्रेम और आनन्द के रस से सिंचित करने के लिये श्री महामति जी के द्वारा श्री राज जी से दृढ़तापूर्वक आग्रह



किया गया है। उनका स्पष्ट कथन है कि मैं अकेले ही आपके प्रेम और आनन्द को नहीं लेना चाहती। आगे की चौपाइयों में भी यही प्रसंग है।

**से बस न्हाए मूंहजे, जे की करिए से तूं।**

**जे की जाणो से करयो, मूं में रही न मूं॥४४॥**

**शब्दार्थ-** से-सो, बस-वश, न्हाए-नहीं है, मूंहजे-मेरे, जे-जो, की-कुछ, करिए-करते हैं, से-सो, तूं-आप, जे-जैसे, की-कछु, जाणो-जानो, से-सोई, करयो-करो, मूं में-मुझमें, रही-रहा, न-नहीं, मूं-मैं पना।

**अर्थ-** इसलिये हे मेरे प्राणवल्लभ! मेरे पास अकेले आने की शक्ति नहीं है। सब कुछ करने वाले आप ही हैं, इसलिये आपकी जो भी इच्छा हो, वही कीजिए। मेरे

अन्दर किसी भी प्रकार की "मैं" नहीं है।

**भावार्थ**— "सर्वस्व समर्पण" ही प्रेम की नींव है। इसके बिना अखण्ड प्रेम का महल खड़ा नहीं हो सकता। श्री महामति जी की आत्मा समर्पण के शिखर पर पहुँचकर प्रेम के रस में सराबोर हो जाती है और यह दृढ़ आग्रह कर रही हैं कि भला मैं अकेले ही आनन्द कैसे ले सकती हूँ? आपको इन अँगनाओं को भी अवश्य ही अपने आनन्द में डुबोना होगा। "आपकी जो इच्छा हो, वही कीजिए" का कथन समर्पण की पराकाष्ठा को दर्शा रहा है।

थी न सगां हेकली, बी तो लगाई।

छूटे न तोहिजी तोह रे, मूंजी फिरे न फिराई॥४५॥

**शब्दार्थ**— थी—हूँ, न—नहीं, सगां—सकती, हेकली—

अकेली, बी-दूसरी (माया), तो-आपने, लगाई-लगाई, छूटे-छूटती, न-नहीं है, तोहिजी-आपकी, तोह रे-आपके बिना, मूंजी-मेरी, फिरे-फिरती है, न-नहीं, फिराई-फिराने से।

**अर्थ-** वैसे मैं अकेली भी नहीं हूँ, क्योंकि आपने मेरे पीछे माया लगा रखी है। आपकी यह माया आपके बिना नहीं छूट सकती। मेरे छुड़ाने (अलग करने) से नहीं छूटती है।

**भावार्थ-**

माया गयी पोताने घेर, हवे आतम तूं जाग्यानी केर।  
तो मायानो थयो नास, जो धणिए कीधो प्रकास॥

रास २/१

के कथनानुसार आत्मा के जाग्रत होने पर माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है। श्री इन्द्रावती जी की आत्म-

जाग्रति में किसी भी प्रकार का संशय नहीं किया जा सकता। इसी रास ग्रन्थ में उन्होंने अपनी आत्म-जाग्रति और धनी के द्वारा माया को फटकारकर दूर करने के सम्बन्ध में कहा है—

मायाना मुख माहें थी, जुगते काढ़ी जोर।

दर्ई तजारक अति घणी, माया कीधी पाधरी दोर॥

रास १/१८

सिन्धी ग्रन्थ का अवतरण श्रृंगार ग्रन्थ के पश्चात् हुआ है। उस समय तक सभी सुन्दरसाथ ने श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप की पहचान कर ली थी। ऐसे समय में इस चौपाई के बाह्य शाब्दिक अर्थ से ऐसा आशय निकालना कि "श्री महामति जी को भी माया नहीं छोड़ती है", उचित नहीं है। वस्तुतः यह संकेत उन आत्माओं के लिये है, जो माया में फँसी होने

के कारण धनी के प्रेम से वंचित हो रही हैं। उन्हें जाग्रत करने के लिये ही श्री महामति जी के द्वारा धाम धनी से आग्रह किया जा रहा है कि आप इन्हें माया से अलग करके अपने प्रेम एवं आनन्द का रसपान करायें।

**गोता खेंदे वेई उमर, पट सूके रे पाणी।**

**जे तो डिंनी हेत करे, सा टरे न सत्राणी॥४६॥**

**शब्दार्थ-** गोता-डुबकी, खेंदे-खाते, वेई-गई, उमर-आयु, पट-जमीन, सूके-सूख गई, रे-बिना, पाणी-पानी के, जे-जो, तो-आपने, डिंनी-दिया, हेत-प्यार, करे-करके, सा-वह माया, टरे-हटती, न-नहीं, सत्राणी-दुश्मन।

**अर्थ-** यद्यपि यह भवसागर बिना पानी का है, इसकी जमीन सूखी हुई है। इस भवसागर में गोते खाते-खाते

मेरी उम्र बीत गई है। जिस दुःखदायिनी माया को आपने हमें बहुत लाड-प्यार से दिया (दिखाया) है, वह किसी भी प्रकार से हटती नहीं है।

**भावार्थ-** यह संसार स्वप्नवत् है। आत्म-जाग्रति के पश्चात्, ज्ञान दृष्टि से देखने पर जब इसका अस्तित्व ही नहीं है, तो इसके जाल में फँसने का प्रश्न भी नहीं है। किन्तु जब तक आत्म-चक्षुओं के सामने माया का पर्दा पड़ा रहता है, तब तक यह शरीर और संसार ही नजर आते हैं। परिणाम स्वरूप, जो जीव संसार रूपी भवसागर में जन्म-मरण के चक्र में भटकते रहते हैं (गोते खाते रहते हैं), उन पर विराजमान होने वाली आत्मा भी संसार में भटकती रहती है। इसी को भवसागर में गोता खाना कहते हैं। इस सम्बन्ध में कलस हिन्दुस्तानी १/३६ का कथन है- "आत्म तो अंधेर में, सो बुध

बिना बल न होए।" तारतम ज्ञान के प्रकाश एवं प्रियतम के प्रेम द्वारा जब उसकी आत्मा जाग्रत हो जाती है, तो वह संसार के अस्तित्व को ही नकार देती है तथा हृद-बेहृद से परे परमधाम में विचरण करने लगती है।

इस चौपाई में श्री महामति जी ने परोक्ष (पर्दे) में उन सुन्दरसाथ के लिये संकेत किया है, जो धनी के प्रेम से रहित होने के कारण संसार-सागर में भटक रहे हैं और आत्म-जाग्रति का सुख नहीं ले पा रहे हैं। उनकी सारी उम्र लौकिक कार्यों में ही बीती जा रही है। इस चौपाई में श्री महामति जी को ही भवसागर में गोते खाने वाला कहना सूर्य को अन्धेरा दिखायी देने के कथन जैसा है।

हे जा पेयम फांई जोर जी, से जा लाहिया जोर करे।  
झल्ले पेर पिरनजा, पण मूंजी टारी की न टरे॥४७॥

**शब्दार्थ-** पेयम-पड़ी है, फांई-फाँसी, जोर जी-जोर की, लाहिया-उतारती हूँ, जोर-ताकत, करे-करके, झल्ले-पकड़कर, पेर-चरण, पिरनजा-प्रीतम के, मूंजी-मेरी, टारी-हटाई, की-किसी तरह से, टरे-हटती है।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम! माया की यह फाँसी बहुत ही जोर की है। उसे मैं आपके चरण कमलों को पकड़कर उतारती हूँ, किन्तु मुझसे किसी भी प्रकार से यह फाँसी का फन्दा हटता नहीं है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में कथनी (कौल) के पश्चात् करनी (फैल) का वर्णन किया गया है। किन्तु जब तक परमधाम के प्रेम वाली रहनी (हाल) नहीं आती, तब तक माया के दूर होने एवं आत्मा के जाग्रत होने का प्रश्न नहीं होता। इस सम्बन्ध में श्रीमुखवाणी के श्रृंगार ग्रन्थ २५/६७, ६९ का कथन है-



कौल फैल आए हाल आइया, तब मौत आई तोहे।  
 तब रूह की नासिका को, आवेगी खुसबोए॥  
 ए सहूर करो तुम मोमिनो, जब फैल से आया हाल।  
 तब रूह फरामोसी ना रहे, बोए हाल में नूरजमाल॥

**धणी मूंहजी रूहजा, मूं से हित गालाए।**

**पिरी पसण जीं थिए, से तूही डिए उपाए॥४८॥**

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, मूंहजी-मेरी, रूहजा-आत्मा के, मूं से-मुझसे, हित-यहाँ, गालाए-बातें करो, पिरी-प्रियतम के, पसण-देखने को, जीं-जिस तरह, थिए-दोए, से-सो, तूही-आप ही, डिए-देते हो, उपाए-उपाय।

**अर्थ-** मेरी आत्मा के प्राणवल्लभ! आप इसी संसार में मुझसे प्रेम भरी बातें कीजिए। किस तरह से मैं आपको

देख सकूँ, उसका उपाय भी बताइये।

**भावार्थ-** प्रियतम का दीदार ही प्रत्येक सुन्दरसाथ का अनिवार्य लक्ष्य होना चाहिए। यही सिखापन इस चौपाई में परोक्ष रूप से सुन्दरसाथ को दी गई है। श्री महामति जी ने तो हृद्देश में ही प्रियतम का जी भरकर दीदार कर लिया था।

हे डात्यूं सभ तोहिज्यूं, इस्क जोस अकल।

मूरा बुझाइए मूंहके, आखिर लग असल॥४९॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, डात्यूं-देने से, सभ-सम्पूर्ण, तोहिज्यूं-आपका, इस्क-प्रेम, अकल-बुद्धि, मूरा-मूल से, बुझाइए-समझाया, मूंहके-मुझको, आखिर-खेल का अन्त, लग-तक, असल-परमधाम से।

**अर्थ-** परमधाम का प्रेम, जोश, और जाग्रत बुद्धि सब

आपके देने से ही आती है। परमधाम से लेकर इस खेल के अन्त तक क्या होने वाला है, यह आपने पहले ही मुझे बता दिया है।

**भावार्थ-** धाम धनी ने सदगुरु श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान होकर तथा हब्शा में प्रत्यक्ष दर्शन देकर परमधाम से लेकर खेल के अन्त तक की सारी बातें बता दी थीं। श्री बीतक साहिब तथा श्रीमुखवाणी में यह सन्दर्भ इस प्रकार है-

साकुण्डल सकुमार ढूँढन की, एकान्त होय सुनाई बात।  
मूल सरूप उनके हंसत है, ओ खेल में है अपनी जात॥

बीतक १३/५१

कहयो ताको इंद्रावती नाम, ब्रह्म सृष्ट मिने घर धाम।  
मों पर धनी हुए प्रसन्न, सौँपे धाम के मूल वचन॥

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/९८

आद के द्वार ना खुले आज दिन, ऐसा हुआ ना कोई खोले हम बिन।  
सो कुंजी दर्ई मेरे हाथ, तूं खोल कारन अपने साथ॥

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/९९

आंऊं अव्वल न आखिर, सभनी हंदे तूं।

ए मुराई भली भत्तें, ए तो डेखारई मूं॥५०॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, अव्वल-पहले से, न-नहीं, आखिर-आखिर तक, सभनी-सम्पूर्ण, हंदे-ठिकाने, तूं-आप हो, ए-यह, मुराई-मूल से हो, भली-अच्छी, भत्तें-तरह से, ए-यह खेल, तो-आपने, डेखारई-दिखाया, मूं-मुझको।

**अर्थ-** आदि से लेकर अन्त तक मेरा अस्तित्व नहीं रहा है। हर जगह केवल आप ही आप हैं। मैं इस बात को अच्छी तरह से समझ गयी हूँ कि यह माया हमें आपने ही

दिखायी है।

**भावार्थ-** "आदि से अन्त तक " का तात्पर्य है – परमधाम से लेकर इस खेल में ब्रज, रास, एवं जागनी लीला तक। यद्यपि प्रेम में दो (आशिक-माशूक या प्रियतम-प्रियतमा) का होना आवश्यक है, किन्तु यहाँ स्वयं के अस्तित्व को मिटाने का भाव यह है कि अपने प्राण-प्रियतम से ही मेरा अस्तित्व है। मैं उनकी अभिन्न स्वरूपा हूँ। मेरा उनसे किसी भी प्रकार का अलग अस्तित्व नहीं है। अपने प्रेमास्पद को सर्वोपरि मानना ही प्रेम की प्राथमिकता है। वस्तुतः श्री राज जी का हृदय (दिल) ही तो सभी सखियों के रूप में लीला कर रहा है। पुनः उनके स्वरूप को अलग कैसे कहा जा सकता है?

अर्ज पांहिजी रुहनजी, सभ तूं ही कराइए।

बाहेर मंझ अंतर, सभ तूं ही आइए॥५१॥

**शब्दार्थ-** अर्ज-विनती, पांहिजी-अपनी या, रुहनजी-ब्रह्मसृष्टि की, सभ-सम्पूर्ण, तूं ही-आप ही, कराइए-कराते हो, बाहेर-देह में, मंझ-दिल में, अंतर-आत्मा में, आइए-हो।

**अर्थ-** हे धनी! मेरी ओर से या अन्य ब्रह्मसृष्टियों की ओर से जो प्रार्थना की जाती है, वह भी आप ही करवाते हैं। बाहर, भीतर, या उससे अलग सब जगह आप ही आप हैं।

**भावार्थ-** समर्पण के शिखर पर पहुँच जाने पर केवल यही ध्वनि मुखरित होती है कि मेरे प्राणवल्लभ! सब कुछ करने वाले केवल आप ही हैं। मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। धाम धनी परमधाम के लीला रूप दृश्यमान पदार्थों के

बाहर तो हैं ही, उनके अन्दर भी वही हैं। यहाँ तक कि परमधाम से अलग इस खेल के ब्रज, रास, एवं जागनी ब्रह्माण्ड में भी आत्माओं के साथ पल-पल वे ही विराजमान हैं। बाहर, भीतर, और अन्तर का यही आशय है।

**जीं कढ़े तूं हियां, जी पुजाईने घर।**

**हल्ले न जरे जेतरी, बी केहजी फिकर॥५२॥**

**शब्दार्थ-** जीं-जैसे, कढ़े-निकालो, तूं-आप, हियां-यहाँ से, पुजाईने-पहुँचा के, घर-धाम में, हल्ले-चलती, न-नहीं, जरे-जरा सा, जेतरी-जितना, बी-दूसरा, केहजी-किसी का भी, फिकर-विचार।

**अर्थ-** हे धाम धनी! चाहे, जैसे भी हो सके, आप मुझे इस संसार से निकालिये और किसी प्रकार भी घर ले

चलिये। जब मेरा यहाँ कुछ भी वश नहीं चल पा रहा है, तो मैं दूसरों की चिन्ता कैसे करूँ?

**भावार्थ-** विरह की गहन पीड़ा आत्म-केन्द्रित होती है। इसी भाव में यह चौपाई कही गयी है। यहाँ परोक्ष रूप से यह शिक्षा दी गयी है कि यदि प्रत्येक सुन्दरसाथ दूसरों को उपदेश देकर जगाने की चिन्ता न करके स्वयं को प्रियतम के विरह में डुबो ले, तो यह माया का पर्दा हट जायेगा और खेल भी समाप्त हो जायेगा। सम्पूर्ण सिन्धी ग्रन्थ की वाणी तो सुन्दरसाथ के लिये ही कही गयी है। इस चौपाई के चौथे चरण में दूसरों की चिन्ता न करने का कथन विरह की वेदना के भावों में है। यहाँ शब्दों का बाह्य अर्थ ग्रहण करना उचित नहीं है।



तूं करिए तूं कराइए, तूं पुजाइए पांण।

जा मथे गिंने तिर जेतरी, सा जोए वडी अजाण॥५३॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, करिए-करते हो, कराइए-कराते हो, पुजाइए-पहुँचाओ, पांण-आप, जा-जो, मथे-ऊपर, गिंने-लेवे, तिर-जरा मात्र, सा-वह, जोए-स्त्री, वडी-बहुत, अजाण-नासमझ है।

**अर्थ-** सब कुछ आप ही करते हैं और आप ही कराते हैं। आप ही अपने पास पहुँचवाते हैं (पहचान कराते हैं)। इन बातों को जो तिल मात्र भी अपने ऊपर लेती है, निश्चित रूप से वह स्त्री बहुत ही नासमझ कही जाती है।

**भावार्थ-** सागर के बिना लहरों, चन्द्रमा के बिना चाँदनी, और सूर्य के बिना किरणों का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि लहरें, चाँदनी, और किरणें स्वयं को सागर, चन्द्रमा, और सूर्य से अलग मानने लगेँ तथा स्वयं को

लीला का कर्ता-धर्ता मानने लगें, तो इससे बड़ी नादानी और कुछ भी नहीं हो सकती। अक्षरातीत की अंगरूपा अँगनायें उन्हीं की स्वरूपा हैं। उनके स्वरूप में स्वयं श्री राज जी ही लीला करते हैं।

**सिकण सडण जीरे मरण, से सभ हथ धणी।**

**तो चंगी पेरे डेखारियो, त मूं न्हारयो नैण खणी॥५४॥**

**शब्दार्थ-** सिकण-कुढ़ना, सडण-बुलाना, जीरे-जीना, मरण-मना, से-सो, सभ-सम्पूर्ण, हथ-हाथ, धणी-प्रियतम के है, तो-आपने, चंगी-अच्छी, पेरे-तरह से, डेखारियो-दिखाया, त-तो, मूं-मैंने, न्हारयो-देखा, नैण-आँख, खणी-खोलकर।

**अर्थ-** हे धनी! तड़पना, ललचाना, जीना, और मरना आदि सभी कुछ आपके हाथों में है। आपने मुझे यह

पहचान बहुत ही अच्छी तरह से दे दी है, इसलिये अब मैं अपने नेत्रों को खोलकर आपको देख रही हूँ।

**भावार्थ-** चाहे धनी के लिये विरह में तड़पना हो या माया के लिये ललचाना हो, सब कुछ धाम धनी के हुक्म के अधीन है। इस शरीर का जीवन और मृत्यु भी उन्हीं के हुक्म से बँधा हुआ है। जब आत्मा को श्री राज जी की इस लीला की पहचान हो जाती है, तो वह उनके प्रेम में डूबकर अपने आत्मिक नेत्रों को खोल लेती है तथा जी भरकर उनका दीदार करती है। समर्पण और प्रेम के बिना कभी भी आत्म-जाग्रति नहीं हो सकती।

हाणे गाल्यूं मूंजे हालज्यूं, कंदिस आंसे आंऊं।

बेओ केर सुणीदो तो रे, जे करियां वडियूं धांऊं॥५५॥

**शब्दार्थ-** हाणे-अब, गाल्यूं-बातें, मूंजे-मेरे, हाल-

दशा, ज्युं-की, कंदिस-करूंगी, आंसे-आपसे, आंऊं-  
में (इन्द्रावती), बेओ-दूसरा, केर-कौन, सुणीदो-  
सुनेगा, तो रे-आपके बिना, करियां-करूँ, वडियूं-बहुत  
ही, धांऊं-पुकार।

**अर्थ-** इस खेल में मेरी जो हालत (अवस्था) है,  
उसकी बात मैं परमधाम में आकर ही आपसे करूंगी।  
यदि मैं अपनी स्थिति को जोर-जोर से पुकारकर कहती  
भी हूँ, तो यहाँ आपके अतिरिक्त और कौन सुनने वाला  
है?

**भावार्थ-** आत्माओं के एकमात्र प्रियतम अक्षरातीत हैं  
और उन्होंने ही यह माया का खेल दिखाया है।  
ब्रह्मसृष्टियों की विरह-व्यथा को उनके अतिरिक्त और  
कोई दूर करने में समर्थ भी नहीं है। यही कारण है कि श्री  
महामति जी ने इस चौपाई में स्पष्ट रूप से कहा है कि

इस संसार में हमारी करुण पुकार को सुनने वाला आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। मैं इस संसार में कहूँ भी तो कितना? इस संसार की मर्यादाओं के अनुसार मैं अधिक कह भी नहीं सकती। जब मैं परमधाम में आऊँगी (परात्म में जाग्रत होऊँगी), तो सारी बातों को यथा रूप से कहूँगी।

तो न डेखारयो मूर थी, कोए हंद बेओ।

मूंजी रूहके नूरजमाल रे, हंद जरो न कित रह्यो॥५६॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, न-नहीं, डेखारयो-दिखाया, मूर थी-मूल से ही, कोए-कोई, हंद-ठिकाना, बेओ-दूसरा, मूंजी-मेरी, रूहके-आत्मा के, नूरजमाल-धाम धनी के, रे-बिना, हंद-ठिकाना, जरो-जरा मात्र, न-नहीं, कित-कहीं भी, रह्यो-रहा।

**अर्थ-** मेरी आत्मा के प्राण प्रियतम! इसलिये, आपने मूल से ही हमें अपने अतिरिक्त अन्य कोई ठिकाना (आश्रय) नहीं दिखाया है। स्पष्ट है कि आपके चरणों के अतिरिक्त अन्य कहीं भी हमारा स्थान (ठिकाना) नहीं है।

**भावार्थ-** स्वलीला अद्वैत परमधाम में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। उन्ही के हृदय (दिल) का स्वरूप ही श्यामा जी, सखियाँ, महालक्ष्मी, अक्षर ब्रह्म, तथा २५ पक्षों के रूप में लीला कर रहा है। परमधाम से इस खेल में आते समय ही धाम धनी ने "अलस्तो बिरब्ब कुम्म" (क्या मैं तुम्हारा प्रियतम नहीं हूँ?) कहकर निजधाम के एकनिष्ठ प्रेम के प्रति सावचेत कर दिया था। तारतम वाणी के प्रकाश में आने पर आत्मायें अपने प्राण प्रियतम अक्षरातीत को छोड़कर

अन्य किसी (हृद-बेहृद के लीला रूप पुरुष) को अंगीकार नहीं कर सकतीं।

**महामत चोए मेहेबूबजी, जे उपटिए द्वार।**

**रूहें गिनी अचां पाणसे, जीं अची करियां करार॥५७॥**

**शब्दार्थ-** महामत-महामति, चोए-कहती हैं, मेहेबूबजी- धनी जी, जे-जो, उपटिए-खोलो, द्वार-दरवाजा, रूहें-सखियाँ, गिनी-लेकर, अचां-आऊँ, पाणसे- आप सहित, जीं-जिससे, अची-आकर के, करियां-करूँ, करार-आराम।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे मेरे धाम धनी! यदि आप परमधाम का दरवाजा खोल दें, तो मैं अपने साथ सभी आत्माओं को लेकर आपके पास आ जाऊँ और आपके पास आकर आनन्द का रसपान

करूँ?

**भावार्थ-** माया (फरामोशी) का पर्दा ही आत्माओं को परमधाम में प्रवेश करने नहीं दे रहा है। यह पर्दा हटते ही निजधाम में प्रवेश का द्वार खुल जायेगा तथा ब्रह्मसृष्टियाँ अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगी। किन्तु माया के इस पर्दे को हटाने में श्री राज जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी सक्षम नहीं है। इसलिए इस चौपाई में श्री महामति जी ने प्रार्थना की है कि हे धाम धनी! हमें परमधाम का आनन्द देने के लिए इस माया के खेल को समाप्त कीजिए, ताकि हम सभी आपके धाम में आकर पूर्ववत् अखण्ड आनन्द का रसपान कर सकें।

**प्रकरण ॥१॥ चौपाई ॥५७॥**



इस प्रकरण में परमधाम की लीलाओं का वर्णन करते हुए अपने हृदय की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है।

रे पिरीयम, हथ तोहिजडे हाल।

आए डी वेरां उथणजी, हांणे पसां नूरजमाल॥१॥

**शब्दार्थ-** रे-हे, पिरीयम-प्रियतम, हथ-हाथ, तोहिजडे-आपके, हाल-दशा, आए डी-आया, वेरां-समय, उथण-उठने, जी-का, हांणे-अब, पसां-देखो, नूरजमाल-धनी को।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे मेरे धाम धनी! आपके ही हाथों में हमारी सारी स्थिति (हाल) है। अब जाग्रत होने (उठने) का समय आ गया है। अब मैं जाग्रत होकर आपको देखूँगी।

**भावार्थ-** खिल्वत १/४५ में यह बात दर्शायी गयी है

कि अब तक जो कुछ भी हुआ है, हो रहा है, या भविष्य में होगा, वह सब कुछ धाम धनी की इच्छा से ही हो रहा है।

हुआ है सब हुकमें, होत है हुकम।

होसी सब कछू हुकमें, कछू ना बिना हुकम खसम॥

इस प्रकार हमारी सम्पूर्ण स्थिति श्री राज जी के हाथों में है। जब हमारा कुछ व्यक्तिगत है ही नहीं, तो "मैं" के पर्दे के छोड़कर समर्पण की पराकाष्ठा पर हम क्यों न पहुँचें? इस कसौटी पर खरा उतरने के पश्चात् ही प्रियतम के दीदार एवं आत्म-जाग्रति का लक्ष्य प्राप्त होता है।

अरवाहें जा हिन अर्स जी, की छडे खिलवत हक।

जा डेखारिए रूहके, ते में जरो न सक॥२॥

**शब्दार्थ-** अरवाहें-ब्रह्मसृष्टि, जा-जो, हिन-इस, अर्स

जी-धाम की हैं, की-कैसे, छडे-छोड़, खिलवत-मूल मिलावा, हक-परमात्मा, डेखारिए-दिखाते हैं, रूहके-आत्माओं को, ते में-तिसमें, जरो-किंचित् मात्र भी, न-नहीं, सक-सन्देह।

**अर्थ-** परमधाम की जो आत्मायें हैं, वे अपने प्राणवल्लभ और मूल मिलावा को भला कैसे छोड़ सकती हैं? किन्तु आपने अपनी अँगनाओं को, माया का जो यह खेल दिखाया है, उसमें भी किसी प्रकार का नाम मात्र भी संशय नहीं है।

**भावार्थ-** परमधाम की सखियों के मूल तन मूल मिलावा में ही विद्यमान हैं, इसलिये उन्हें मूल मिलावा एवं धाम धनी से कभी भी अलग न होने वाला कहा गया है।

हिन अर्सजे बाग में, आयूं मुदयूं मींह।

हिन वेरां असां के, जुदयूं रख्यूं कीह॥३॥

**शब्दार्थ-** हिन-इन, अर्स-परमधाम, जे-के, बाग में-बगीचों में, आयूं-आई, मुदयूं-ऋतु, मींह-बरसात को, वेरां-बखत में, असां के-हमको, जुदयूं-न्यारा, रख्यूं-रखा, कीह-कैसे।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! इस समय परमधाम के बागों में वर्षा ऋतु का दृश्य है। ऐसे मनोहर समय में भी आपने हमें कैसे अपने से अलग कर दिया है?

**भावार्थ-** परमधाम में सखियों की इच्छानुसार ही ऋतुओं की लीला होती है। मनोहर ऋतु में विरह की असह्य पीड़ा की अनुभव होना अवश्यम्भावी है। विरह की लीला मात्र कालमाया एवं योगमाया में ही होती है, परमधाम में नहीं, क्योंकि वहाँ स्वलीला अद्वैत है।

वडे अर्सजे मोहोल में, मिडावा रूहन।

आयासी मोहोल बाग जे, मथडा मींह झबन॥४॥

**शब्दार्थ-** वडे-बुजरक, अर्स-परमधाम, जे-के, मोहोल में-महल में, मिडावा-मिलाप, रूहन-ब्रह्मसृष्टियों का, आयासी-आकाशी, मोहोल-महल, बाग जे-बगीचों में, मथडा-ऊपर, मींह-पानी, झबन-बरसता है।

**अर्थ-** परमधाम के विशाल रंगमहल में हम अँगनाओं का निवास है। उस रंगमहल की दसवीं आकाशी के बागों में ऊपर से नूरी वर्षा होती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "मिलावा" शब्द से तात्पर्य रहने से है। रंगमहल की नवीं भूमिका के ऊपर आकाशी आई है, जिसके चारों ओर बाग-बगीचों की अलौकिक शोभा हो रही है। इस भाग में होनी वाली नूरी वर्षा का दृश्य अत्यन्त मनोहारी होता है।

अर्स बाग जे मोहोल में, झरोखे झांखन।

तो डिंने असां जे दिल में, हे सुख याद अचन॥५॥

**शब्दार्थ-** अर्स-परमधाम के, बाग-बगीचे, जे-के, मोहोल में-रंगमहल में, झरोखे-झरोखों से, झांखन-देखने का है, तो-आपके, डिंने-दिये, असां जे-हमारे, हे-यह, अचन-आता है।

**अर्थ-** परमधाम में रंगमहल के झरोखों से बागों का अलौकिक दृश्य देखा जाता है। आपने परमधाम में हमें इस सुख को दिया है, जिसकी याद अब हमारे दिल में आ रही है।

**भावार्थ-** परमधाम में परात्म के दिल ने जिस सुख का रसपान किया है, इस खेल में आत्मा के जाग्रत होने पर उस सुख की याद आती है, क्योंकि जाग्रत अवस्था में आत्मा के दिल एवं परात्म के दिल में किसी भी प्रकार

का भेद नहीं रह जाता है। इसे सागर ग्रन्थ में ११/४४ के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछू अन्तराए॥

**चढ़ी नी आयूं सेरडियूं, कपरियूं गजन।**

**ए सुख दिए रूहन के, वन में विज्यूं खेवन॥६॥**

**शब्दार्थ—** चढ़ी नी—चढ़ करके, आयूं—आई है, सेरडियूं—बदलियाँ, कपरियूं—आसमान, गजन—गर्जना करता है, ए—यह, सुख—सुख, दिए—दिए, रूहन—आत्माओं, के—को, वन में—बागों में, विज्यूं—बिजली, खेवन—चमकती है।

**अर्थ—** आकाश में बादल घिर (चढ़) आए हैं और गरज रहे हैं। वनों में बिजली (विद्युत) चमक रही है। आप हमें

परमधाम में इस प्रकार का सुख देते रहे हैं।

**भावार्थ-** प्रायः शोभा, सौन्दर्य, एवं लीला का वर्णन वर्तमान काल में किया जाता है। परमधाम में हमेशा ही इस प्रकार का अलौकिक दृश्य उपस्थित रहता है, जिसकी अनुभूति विरह के क्षणों में जाग्रत आत्माओं को होती रहती है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ज्ञान दृष्टि से परिपक्व होकर विरह में तड़पने तथा परमधाम, युगल स्वरूप, एवं अपनी परात्म की अनुभूति के पश्चात् ही परमधाम के सुखों की याद आती है। शुष्क हृदय से केवल ब्रह्मवाणी को पढ़ लेने मात्र से इस अवस्था को नहीं पाया जा सकता।

चढ़ी झरोखे न्हारजे, मींह वसे मथें वन।

वींटी वरियूं वडरियूं, हिन वेरां बाग सोहन॥७॥



**शब्दार्थ-** चढ़ी-चढ़के, झरोखे-झरोखे से, न्हारजे-देखिए, मींह-वर्षा, वसे-बरसती है, मथें-ऊपर, वन-बागों के, वींटी-घेर, वरियूं-लिया है, वडरियूं-बदलियों ने, हिन-इस, वेरां-बखत में, बाग-बगीचे, सोहन-शोभा दे रहे हैं।

**अर्थ-** रंगमहल के झरोखों में चढ़कर देखने पर वनों में पानी बरसते हुए दिखता है। उस समय चारों ओर बादल घिरे होते हैं। ऐसे समय में बागों की शोभा अद्वितीय होती है।

**द्रष्टव्य-** वृक्षों, फूलों, तथा लताओं के समूह का लघु रूप "बाग" कहलाता है, जबकि बृहद् रूप "वन" कहलाता है।

अर्स अग्यां चांदनी, चई चोतरन।

हिन मुदयूं मींह संदियूं, दोड़े चढ़ें ठेकन॥८॥

**शब्दार्थ-** अर्स-धाम के, अग्यां-आगे, चांदनी-चाँदनी चौक है, चई-चार, चोतरन-चबूतरे हैं, हिन-इन, मुदयूं-ऋतु, मींह-बरसात, संदियूं-की, दोड़े-दौड़ती है, चढ़ें-चढ़ती है, ठेकन-ठेक देती है।

**अर्थ-** परमधाम में रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में चार चबूतरे आए हैं। इस वर्षा ऋतु में हम सखियाँ उन चबूतरों पर दौड़ती हैं, चढ़ती हैं, तथा कूदती हैं।

**भावार्थ-** रंगमहल के आगे चाँदनी चौक में दो चबूतरे आए हैं, जिन पर लाल और हरे रंग (आम तथा अशोक) के वृक्ष आये हैं। दो चबूतरे मुख्य द्वार के दोनों ओर रंगमहल की दीवार से लगते हुए आये हैं। इन पर हीरा, माणिक, पुखराज, पाच, तथा नीलम के थम्भ आये हैं।

अग्यां अर्स बागमें, करे कोइलडी टहुंकार।

ढेली मोर कणकियां, जमुना जोए किनार॥९॥

**शब्दार्थ-** अग्यां-आगे, अर्स-धाम के, बाग-बगीचा, करे-करती है, कोइलडी-कोयल, टहुंकार-उच्चारण, ढेली-लिलोर, मोर-मोर, कणकियां-किकोल करते हैं, जमुना-जमुना जी, जोए-के, किनार-तट पर।

**अर्थ-** रंगमहल के आगे बागों में कोयलें अति मधुर स्वरों में कूकती (बोलती) रहती हैं। यमुना जी के किनारे मोर तथा मोरनियाँ किलोल (क्रीड़ा) करती हैं।

**भावार्थ-** रंगमहल के आगे यमुना जी की किनार पर सात घाट में सात वनों (बागों) की शोभा आयी है, जिनमें क्रीड़ा करने वाली कोयलों, मोरों एवं मोरनियों की अति मनमोहिनी लीला का इस चौपाई में वर्णन किया गया है।

मथेनी वसे मींहडो, वानर मोर कुडन।

कई नी जातूं जानवर, कई जातूं पसुअन॥१०॥

**शब्दार्थ-** मथें-ऊपर, नी-से, वसे-बरसती हैं, मींहडो-बरसात, वानर-बन्दर, मोर-मोर, कुडन-हर्षित होते हैं, जातूं-जात के, पसुअन-पशु।

**अर्थ-** इन वनों में ऊपर बरसात होती है और नीचे बन्दर तथा मोर आदि अनेक प्रकार के जानवर और पशु-पक्षी आनन्द मनाते हैं।

**भावार्थ-** बन्दर पशु है, जबकि मोर पक्षी है। जिसमें केवल जीव हो और बुद्धि का अति अल्प प्रयोग करे, वह जानवर कहलाता है। जानवर शब्द फारसी भाषा का है, जबकि पशु शब्द संस्कृत और हिन्दी का है।

पसु पंखी हिन अर्सजा, ते की चुआं चित्राम।

मिठी मोहें मीठी जिकर, ए डिए रूहें आराम॥११॥

**शब्दार्थ-** पसु-चलने वाले पशु, पंखी-उड़ने वाले पक्षी, हिन-इन, जा-के, ते-तिनकी, की-कैसे, चुआं-कहूँ, चित्राम-चित्रकारी, मिठी-मधुर, मोहें-मुख, मीठी-मधुर, जिकर-शब्द या बातें, ए-यह, डिए-देते हैं, रूहें-सखियों को, आराम-सुख।

**अर्थ-** मैं परमधाम के इन पशु-पक्षियों की रंग-बिरंगी अलौकिक शोभा का वर्णन कैसे करूँ? ये अपने मधुर मुख से मीठी-मीठी बातें करके सखियों को आनन्दित करते हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि "चित्राम" शब्द का अर्थ चित्र होता है, किन्तु यहाँ पशु-पक्षियों के सुन्दर स्वरूप को ही चित्र कहा गया है, जो वनों में क्रीड़ा करते हैं, क्योंकि इस

चौपाई के पहले चरण में "हिन" शब्द का प्रयोग है, जिसका तात्पर्य है "इन", जो पशु-पक्षियों के लिये संकेतित है। यहाँ चित्र शब्द का भाव दीवारों पर बने हुए चित्रों से नहीं लेना चाहिए।

**वाओ अचे बागनमें, डालरियूं उलरन।**

**रूहें रांद करींदियूं, मथें चढ़यूं लुड़न॥१२॥**

**शब्दार्थ-** वाओ-पवन, अचे-आती है, बागन-बगीचों के, में-बीच में, डालरियूं-डालें, उलरन-उछलती हैं, रूहें-सखियाँ, रांद-खेल, करींदियूं-करती हैं, मथें-ऊपर, चढ़यूं-चढ़ के, लुड़न-झूलती हैं।

**अर्थ-** इन बागों में शीतल, मन्द, और सुगन्धित हवा के बहने से वृक्षों की डालियाँ झूमती रहती हैं। सखियाँ इन वृक्षों पर चढ़कर तरह-तरह के खेल करती हैं और

डालियों से लटककर झूला झूलती हैं।

जानवर जे हिन बाग जा, डारी डारी त्रपन।

मिठडी चूंजे मीठी वाणियां, हे रांदिका रूहन॥१३॥

**शब्दार्थ-** जानवर-जानवर, जे-जो, हिन-इन, बाग-बगीचों, जा-के, डारी-डालों, त्रपन-कूदते हैं, मिठडी-मीठी, चूंजे-चोंचें, मिठी-मधुर, वाणियां-उच्चारण करते हैं, हे-यही, रांदिका-खिलौने, रूहन-सखियों के हैं।

**अर्थ-** इन बागों में जो जानवर रहते हैं, वे एक डाली से दूसरी डाली पर कूदते रहते हैं और अपने मीठे मुख से अति मधुर वाणी बोलते हैं। ये सखियों के खिलौने हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रयुक्त जानवर शब्द के अन्तर्गत छोटे-बड़े पशु-पक्षी सभी आ जायेंगे।

हिन मुंदयूं मींह संदियूं, रूहें रांद करीन।

दोड़े कूडे मींहमें, पांहिजे साथ पिरीन॥१४॥

**शब्दार्थ-** हिन-इन, मुंदयूं-ऋतु, मींह-पानी में, संदियूं-की, रूहें-सखियाँ, रांद-खेल, करीन-करती हैं, दोड़े-दौड़ती हैं, कूडे-कूदती हैं, मींह-बरसात के, में-बीच में, पांहिजे-अपने, साथ-संग, पिरीन-प्रीतम के।

**अर्थ-** इस वर्षा ऋतु में सखियाँ तरह-तरह के खेल करती हैं। वे अपने प्रियतम के साथ वर्षा (पानी) में दौड़ लगाती हैं और कूदती हैं।

**भावार्थ-** यहाँ "मींह" का भाव उस प्रसंग से है, जब पानी की वर्षा हो रही होती है।



सुखडा जे हिन अर्सजा, आईन सभे कमाल।

रुहें बड़ीरुह विचमें, धणी सो नूरजमाल॥१५॥

**शब्दार्थ-** सुखडा-आनन्द, जे-जो, हिन-इन, अर्स-धाम, जा-का, आईन-है, सभे-सम्पूर्ण, कमाल-श्रेष्ठ, रुहें-सखियों में, बड़ी-बुजरक, रुह-श्री श्यामा जी हैं, विच-बीच, धणी-प्रियतम।

**अर्थ-** परमधाम के ये जो सुख हैं, सभी सर्वश्रेष्ठ हैं, अर्थात् इनके समान कहीं भी अन्य कोई सुख नहीं है। सखियों और श्यामा जी के बीच प्रियतम अक्षरातीत सुशोभित होते हैं।

सेहेरयूं कपरियूं नूर ज्यूं, मिठडा नूर गजन।

वसेथ्यूं नूर वडरियूं, वीजडियूं नूर खेवन॥१६॥

**शब्दार्थ-** सेहेरयूं-बदलियाँ, कपरियूं-आसमान में,

ज्युं-की है, मिठडा-मधुर, गजन-गर्जना होती है,  
वसेथ्युं-बरसती है, वडरियुं-बदलियाँ, वीजडियुं-  
बिजली, खेवन-चमकती है।

**अर्थ-** आकाश में नूर के ही बादल छाये रहते हैं। उसी  
नूर की मीठी गर्जना भी होती है। नूरी बादलों से नूर की  
ही वर्षा होती है और नूरी बिजली भी चमकती है।

**भावार्थ-** परमधाम की लीला को लौकिक दृष्टि से  
कदापि नहीं देखना चाहिए। श्री राज जी का नूर ही सभी  
दृश्यों में लीला करता है।

मिठडो वाओ नूर जो, अचे नूर खुसबोए।

हे सुख अर्स बाग में, की चुआं किनारे जोए॥१७॥

**शब्दार्थ-** वाओ-हवा, नूर जो-नूर की, अचे-आती है,  
खुसबोए-सुगन्धि, की-कैसे, चुआं-कहूँ, जोए-यमुना

जी का।

**अर्थ-** निजधाम में नूर की अत्यन्त मधुर हवा बहा करती है, जिससे नूर की ही सुगन्धि आती है। परमधाम में यमुना जी की किनारे पर स्थित सात घाटों के वनों के अनन्त सुखों का मैं कैसे वर्णन करूँ?

**महामत चोए मेहेबूबजी, तो पसाएं पसन।**

**अंखियूं नी आसा एतियूं, मूंजी रूहजी या रूहन॥१८॥**

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, मेहेबूबजी-हे धनी, तो-आपके, पसाएं-दिखने से, पसन-देखूँ, अंखियूं नी-नेत्रों की, आसा-चाहना, एतियूं-इतनी है, मूंजी-मेरी, रूहजी-आत्मा की, या-अर्थात्, रूहन-सखियों की।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे धाम धनी! मेरी तथा अन्य आत्माओं के नेत्रों की मात्र यही इच्छा है कि

अब तो आप ही स्वयं को दिखायें, तो हम देख सकेंगी।

**भावार्थ-** एकमात्र मूल स्वरूप ही जाग्रत हैं और उन्हीं के दिल की इच्छा से सारी लीला चल रही है। यही कारण है कि सर्वस्व समर्पण एवं "मैं" के त्याग के पश्चात् ही दीदार की आशा की जा सकती है। "जब तुम आप दिखाओगे, तब देखूंगी नैन भर जी" का ही आशय इस चौपाई में दर्शाया गया है।

प्रकरण ॥२॥ चौपाई ॥७५॥

इस प्रकरण में धनी के प्रति अपने प्रेममयी भावों की मधुर अभिव्यक्ति की गयी है।

रे पिरियम, मंगां सो लाड करे।

एहेडी किजकां मुदसे, खिलंदडी लगां गरे॥१॥

**शब्दार्थ**— रे—हे, पिरियम—प्रीतम, मंगां—माँगती हूँ, सो—सो मिलाप, लाड़—प्यार, करे—करके, एहेड़ी—ऐसी, किजकां—करो, मुदसे—मुझसे, खिलंदडी—हँसकर, लगां—लगों, गरे—कँठ से।

**अर्थ**— हे मेरे प्राणवल्लभ! आपसे मिलकर अति प्यार पूर्वक मैं यही माँगती हूँ कि आप मेरे ऊपर ऐसी मेहर कर दीजिए कि मैं हँसती हुई आपके गले लग जाऊँ।

**भावार्थ**— ब्रह्मवाणी के ज्ञान रूपी अमृत से जब प्रियतम के धाम, स्वरूप, और लीला का बोध हो जाता है और

हृदय विरह में तड़पने लगता है, तो इसे ज्ञान की दृष्टि से मिलाप करना कहते हैं। वास्तविक मिलाप (मिलन) प्रेम द्वारा प्रत्यक्ष दीदार (दर्शन) है, जिसके लिये इस चौपाई में गले मिलने के भाव से दर्शाया गया है। इस अवस्था में आत्मा अपने प्राणवल्लभ से वैसे ही एकरूप हो जाती है, जैसे लौकिक दृष्टि से गले मिलने वाले स्वयं को भूल जाते हैं।

ब्रह्मवाणी के चिन्तन-मनन का सर्वप्रथम लाभ जीव को होता है। आत्मा माया में फँसी होने के कारण परमधाम का ज्ञान पाकर भी जीव से अधिक नहीं जान पाती। जब आत्मा के सम्बन्ध से जीव के हृदय में विरह-प्रेम की धारा प्रवाहित होती है, तो आत्मा प्रेम द्वारा अपने प्राणवल्लभ का साक्षात्कार करती है। इसके पश्चात् वह अखण्ड रूप से अपने धनी का दीदार करती रहती है

और उसका कुछ रस जीव को भी मिलता रहता है। इसके पूर्व विरह की अवस्था में आत्मा को अपने प्रियतम के धाम, स्वरूप, और लीला का कुछ-कुछ आभास सा होता है, जिसे इस चौपाई में मिलाप करना कहा गया है। कलस हिंदुस्तानी ११/१ का यह कथन भी इसी सन्दर्भ में है- "जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहां निदान।"

**तो मूँके चेओ तूं मूंहजी, हेडी करे निसबत।**

**धणी मूंहजे धामजा, आंऊं हांणे को हिन भत॥२॥**

**शब्दार्थ-** तूं-आपने, मूँके-मुझे, चयो-कहा, तूं-तुम (इन्द्रावती), मूंहजी-मेरी हो, हेडी-ऐसी, करे-करके, धणी-प्रीतम, मूंहजे-मेरे, धामजा-परमधाम के, आंऊं-मैं, हांणे-अब, को-क्यों, हिन-इस, भत-तरह हैं।

**अर्थ-** हे मेरे धाम के धनी! आपने मुझसे कहा कि

इन्द्रावती! तू मेरी अर्धांगिनी है। किन्तु आपसे मेरा ऐसा सम्बन्ध होने पर भी मेरी हालत (स्थिति) इस प्रकार की क्यों है?

**भावार्थ-** इस चौपाई में जिज्ञासा रूप में यह बात दर्शायी गयी है कि अक्षरातीत की अङ्गरूपा आत्मायें इस नश्वर जगत में स्वयं को, धाम धनी को, तथा परमधाम को क्यों भूल गयी हैं। इसका समाधान आगे की चौपाइयों में होगा।

एहेडो संग करे मूंहसे, अची डिनिंए सांजाए।

इलम डिनिंए बेसक जो, त आंऊं को बेठिस हीं पाए॥३॥

**शब्दार्थ-** एहेडो-ऐसा, संग-सम्बन्ध, करे-करके, मूंहसे-मुझसे, अची-आ करके, डिनिंए-देते हो, सांजाए-पहचान, डिने-दिया, बेसक-निःसन्देह, जो-



का, बेठिस-बैठी रही, ही-यहाँ, पाए-डारके (अपने आप)।

**अर्थ-** मुझसे इस प्रकार का सम्बन्ध करके आपने अपनी पहचान दी है। आपने ब्रह्मवाणी के रूप में जो अपना संशयरहित ज्ञान दिया है, उसे प्राप्त करके भी मैं व्यर्थ में क्यों बैठी रहूँ?

**भावार्थ-** ज्ञान का उद्देश्य लक्ष्य (प्रियतम) को दर्शाना होता है, जबकि प्रेम की सार्थकता लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिये होती है। इस चौपाई में यह बात स्पष्ट की गयी है कि ब्रह्मवाणी का ज्ञान मिलने के पश्चात् आत्म-जाग्रति के लिये धनी के प्रेम-मार्ग का पथिक हो जाना अनिवार्य है।

**इलम डिने पांहिजो, जेमें सक न कांए।**

**डिनिंए संग साहेबी, हित जाणजे की न सांजाए॥४॥**

**शब्दार्थ-** पांहिजो-अपना, जेमें-जिसमें, कांए-कुछ भी, हित-यहाँ, जाणजे-जानती हूँ, की-कुछ भी, सांजाए-पहचान।

**अर्थ-** आपने मुझे अपना जाग्रत ज्ञान दिया है, जिसमें किसी प्रकार का कोई संशय नहीं है। इसके साथ ही आपने मुझे ऐसी शोभा (साहिबी) भी दी है, जिसकी पहचान इस संसार में किसी को भी नहीं है।

**भावार्थ-** धाम धनी ने श्री महामति जी के तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण कराकर अपनी सारी शोभा दे दी। "नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो" (किरंतन ६२/१५) का कथन यही तथ्य दर्शाता है। यहाँ तक भी यह बात आ जाती है कि श्री राज जी ने अपने से भी बड़ी शोभा श्री महामति जी को दे रखी है, क्योंकि मूल मिलावा में वे जिबरील और इस्त्राफील को

प्रवेश नहीं करा सकते। मेअराज के प्रसंग को छोड़कर अक्षर ब्रह्म भी मूल मिलावा में नहीं जाते, बल्कि चाँदनी चौक से ही प्रणाम करते हैं। इसके विपरीत श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप सहित अक्षर ब्रह्म, जिबरील, और इस्राफील भी विराजमान हैं।

इतनी बड़ी शोभा होते हुए भी श्री जी के वास्तविक स्वरूप को संसार नहीं जान पाया। हरिद्वार में ज्ञान-दृष्टि से जान जाने पर भी कोई उनकी शरण में नहीं आया। दिल्ली में सत्रह महीने रहने पर भी काज़ियों और अन्य अधिकारियों सहित औरंगज़ेब उनकी पहचान नहीं कर सका। इसी प्रकार उदयपुर के राणा, रामनगर के राजा आदि मन्दभाग्य रहे, जिन्होंने श्री प्राणनाथ जी के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना। सबसे अधिक दुर्भाग्य उन सुन्दरसाथ का है, जो वर्तमान समय में भी

उन्हें सन्त और शिष्य की श्रेणी में रखते हैं। सम्भवतः  
श्रीमुखवाणी के ये कथन उन्हीं के लिये संकेत करते हैं—  
साथ मलीने सांभलो, जागी करो विचार।

जेणें अजवालूं आ करयूं, परखो पुरुख ए पार॥

आपण हजी नथी ओलख्या, जुओ विचारी मन।

विविध पेरे समझावियां, अने कही निध तारतम॥

रास १/४७, ४७

यो कई छलमूल कहूं मैं केते, मेरे टोने ही को आकार।

ए माया अमल उतारे महामत, ताको रंचक न रहे खुमार॥

किरंतन २०/११

जे आंऊं चाहियां दिलमें, से को न करयो आंई हित।

कोठ्यो को न सुखनसे, जीं थिए न उसीडो हित॥५॥

**शब्दार्थ-** चाहियां-चाहती हूँ, को-क्यों, करयो-करते हैं, हित-यहाँ ही, कोठ्यो-बुलाते, सुखनसे-आनन्द से, जीं-जिससे, थिए-होवें, उसीडो-उदासी, हित-यहाँ।

**अर्थ-** मेरे हृदय में जो भी चाहना है, उसे आप इस संसार में ही पूरी क्यों नहीं कर देते ? आप हमें आनन्दपूर्वक परमधाम क्यों नहीं बुला लेते, जिससे इस जगत् में हमें उदासी का सामना न करना पड़े?

**मूँके केयज सुरखरू, से लखे भाइयां भाल।**

**रुहें कोठे अचां आं अडूं, जीं खिल्ली करियां गाल॥६॥**

**शब्दार्थ-** केयज-किया, सुरखरू-समान, लखे-लाखों, भाइयां-जानूँ, भाल-लाखों, रुहें-ब्रह्मसृष्टियों को, कोठे-बुलाकर, आं-आपके, अडू-तरफ, जीं-

जिससे, खिल्ली-हँसकर, करियां-करूँ, गाल-बातें।

**अर्थ-** आपने मुझे माया के दोषों से रहित कर दिया है। इसके लिये मैं आपके लाखों एहसान मानती हूँ। अब मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि सभी सखियों को साथ लेकर आपके पास आ जाऊँ और हँसते हुए आपसे प्रेमपूर्वक बातें करूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में श्री महामति जी ने परोक्ष रूप में यही भाव व्यक्त किया है कि आत्म-जाग्रति के लिये प्रत्येक सुन्दरसाथ को प्रियतम की शोभा में डूब जाना चाहिये तथा इस माया से परे होकर अपनी परात्म के श्रृंगार से धाम धनी से प्रेमपूर्वक बातें करनी चाहिए।

डिठम सुख सोणेमें, हिक आंझो तोहिजो आए।

मूंसे संग केइए हिन भूंअ में, जे डिए हित सांजाए॥७॥

**शब्दार्थ-** डिठम-देख, सोणेमें-स्वप्न में, हिक-एक, आंझो-भरोसा, तोहिजो-आपका ही, आए-है, मूंसे-मुझसों, केइए-किया, हिन-इस, भूंअ में-पृथ्वी पर, जे-जो, डिए-दी है तो, हित-यहाँ, सांजाए-पहचान।

**अर्थ-** इस स्वप्नमयी संसार में मैंने आपके सुखों का अनुभव किया है। अब तो एकमात्र आपका ही सहारा (भरोसा) है। जब इस संसार में आपने मुझे अपनी पहचान दी है, तो इस जगत् में ही आकर मुझसे सम्बन्ध बनाइये अर्थात् दर्शन दीजिए।

तूं धणी तूं कांध तूं, मूंजो तूं खसम।

ही मंगांथी लाडमें, जाणी मूर रसम॥८॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, धणी-मालिक है, तूं-आप ही, कांध-प्रीतम हैं, भूंजो-मेरे, तूं-आप ही, खसम-पति

हैं, ही-यह, मंगांथीं-माँगती हूँ, लाड़में-प्यार कर, जाणी-जान के, मूर-मूल की, रसम-रीति।

**अर्थ-** आप ही मेरे स्वामी हैं, आप ही मेरे प्रियतम हैं, और आप ही मेरे पति भी हैं। परमधाम की मूल रीति के अनुसार मैं आपसे प्यार माँगती हूँ।

**भावार्थ-** यद्यपि धनी, प्रियतम, और पति एकार्थवाची शब्द हैं, किन्तु इनके भावों में सूक्ष्म सा अन्तर होता है। स्वामित्व का भाव होने से वे धनी हैं। प्रेम का स्वरूप होने से प्रियतम हैं, तथा पालन (संरक्षण) करने वाला होने से पति हैं। परमधाम में मात्र प्रेम लेने और प्रेम देने की ही रीति है। श्रीमुखवाणी में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

सुख देऊं सुख लेऊं, सुखें जगाऊ साथ।

कलस हिंदुस्तानी २३/६८



मासूक तुमारी अंगना, तुम अंगना के मासूक।

श्रृंगार २/४५

कुछाइए त कुछांथी, माठ कराइए तूं।

को न पसांथी कितई, मत्थे अभ तरे थी भूं॥९॥

**शब्दार्थ-** कुछाइए-बुलाते, त-तो, कुछां-बोलती, थी-हूँ, माठ-चुप भी, कराइए-कराते हो, तूं-आप, को-कोई, न-नहीं, पसांथी-देखती हूँ, कितई-कहीं भी, मथें-ऊपर, अभ-आसमान, तरें-नीचे, थी-है, भूं-पृथ्वी।

**अर्थ-** जब आप मुझसे बुलवाते हैं तो मैं बोलती हूँ और जब आप मुझे चुप कराते हैं तो चुप हो जाती हूँ। अन्यथा, इस संसार में धरती से लेकर आकाश तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जो मेरे ऊपर इस प्रकार

अधिकार कर ले।

हे सभ तो सिखाइयूं, आंऊं मुराई अजाण।

जे कंने जे केइए, से सभ तूं हीं पाण॥१०॥

**शब्दार्थ-** ए-यह, सभ-सम्पूर्ण, तो-आपने, सिखाइयूं-सिखाया, आंऊं-मैं, मुराई-भूल से ही, अजाण-नासमझ हो, जे-जो, कंने-करोगे, जे-जो, केइए-किया है, से-सो, सभ-सम्पूर्ण, तूंहीं-आपने, पांण-आप ही।

**अर्थ-** समर्पण की यह भावना भी आपने ही मुझे सिखायी है, नहीं तो मैं तो शुरु से ही अनजान (अनभिज्ञ) थी। अब तक जो कुछ भी हुआ है, सब कुछ आपने ही किया है और सर्वदा ही करते रहेंगे।

घणुए भाइयां न कुछां, पण कुछाइए थो तूं।

इस्क रे कुछण की रहे, न डिंनी सबूरी मूं॥११॥

**शब्दार्थ-** घणुए-बहुत ही, भाइयां-जानती हूँ, न-नहीं, कुछां-बोलूँ, पण-परन्तु, कुछाइए-बुलवाते, थो-हो, तूं-आप ही, इसक-प्रेम के, रे-बिना, कुछण-बोलना, की-क्या, रहे-रहता है, न-नहीं, डिंनी-दर्ई, सबूरी-शान्ति, मूं-मुझको।

**अर्थ-** यद्यपि मैं बहुत सोचती हूँ कि कुछ भी न बोलूँ, किन्तु आप ही बुलवाते हैं। बिना प्रेम (इश्क) के कुछ भी बोलना सम्भव नहीं होता। यह समझ आपने हमें नहीं दी।

**भावार्थ-** इश्क द्वारा ही प्रियतम के दिल में बैठकर उनकी गुह्य बातों को जाना जाता है। "पिया के दिल की सब जाने, पिया जी को दिल पेहेचाने" (परिकरमा १/४७) का कथन यही भाव प्रकट करता है। इस

चौपाई में श्री महामति जी ने परोक्ष रूप में सुन्दरसाथ को यह सिखापन दिया है कि जब तक प्रेम में डूबकर मारिफत (परम सत्य) की अवस्था प्राप्त नहीं होती, तब तक धनी की गुह्य बातों के सन्दर्भ में अधिक नहीं बोलना चाहिए, क्योंकि यह सामान्य बुद्धि का विषय नहीं है।

**पिरी मथें बेही करे, डेखारयाई हे ख्याल।**

**खिल्लण खसम रुहन मथां, पसी असांजा हाल॥१२॥**

**शब्दार्थ—** पिरी—प्रीतम, मथें—ऊपर, बेही—बैठ, करे—कर, डेखारयाई—दिखाते हो, हे—यह, ख्याल—खेल (माया), खिल्लण—हँस सके, खसम—प्रीतम, रुहन—ब्रह्मसृष्टियों के, मथां—ऊपर, पसी—देखकर, असांजा—हमारा, हाल—हाल।

**अर्थ—** हे धाम धनी! आप परमधाम में बैठे—बैठे अपनी

अँगनाओं को यह स्वप्न का खेल दिखा रहे हैं, ताकि हमारी स्थिति (हालत) को देखकर हमारे ऊपर खूब हँसी कर सकें।

**असीं हथ हुकम जे, तो केयूं फरामोस।**

**जीं नचाए तीं नचियूं, की करियूं रे होस॥१३॥**

**शब्दार्थ-** असीं-हम, हथ-हाथ, हुकम-आज्ञा में हैं, जे-जो, तो-आपने, केयूं-किये हैं, फरामोशी-फरामोसी, जीं-जिस तरह, नचाए-नचाते हैं, तीं-उसी तरह से, नचियूं-नाचती हूँ, की-क्या, करियूं-करूँ, रे-बिना, होस-खबर।

**अर्थ-** आपने हमें माया की नींद में इस प्रकार डाल दिया है कि हम सभी आत्मायें आपके आदेश (हुकम) से बँध गयी हैं। अब तो आप हमें जिस प्रकार नचाते हैं,

उसी प्रकार नाचने के लिए हम विवश हैं। भला जाग्रत न होने से हम कर भी क्या सकती हैं।

**भावार्थ-** "कठपुतली की तरह होना" या "इशारे पर नाचना" एक मुहावरा है, जिसका अभिप्राय होता है— पूर्णतया वशीभूत होकर रहना। इस मायावी जगत में ब्रह्मसृष्टियों का कुछ भी बस नहीं चल पा रहा है, क्योंकि धाम धनी अपने दिल में जो कुछ भी लेते हैं, वही परात्म के दिल में आता है तथा उसी के अनुसार आत्मा इस जगत में कार्य करती है। "तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुकम करत" का कथन यही भाव व्यक्त करता है। धनी के "नचाने पर नाचने" का यही आशय है।

हुकम करयो था जेतरो, तीं फिरे असल अकल।

अकल फिराए सोणे के, तीं फिरे असांजा दिल॥१४॥

**शब्दार्थ-** हुकम-आज्ञा, करयो-करते, था-हो, जेतरो-जितनी, तीं-तैसे, फिरे-फिरती है, असल-मूल से, अकल-बुद्धि, अकल-बुद्धि, फिराए-फिराकर, सोणेके-सुपने की, तीं-तैसे ही, फिरे-फिरता है, असांजा-हमारा, दिल-दिल।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम! आप जैसा आदेश (हुकम) करते हैं, वैसा ही हमारी मूल बुद्धि कार्य करती है। उसी के अनुकूल स्वप्न के ब्रह्माण्ड में भी हमारी बुद्धि हो जाती है और दिल भी वैसे ही बदल जाता है।

**भावार्थ-** किरंतन ८२/१३ में कहा गया है-

परआत्म के अन्तस्करन, जेती बीतत बात।

तेते इन आत्म के, करत अंग साख्यात्।।

धनी के हुकम से परात्म के दिल की बुद्धि (मूल बुद्धि) में जो भाव आयेगा, वही आत्मा के दिल की बुद्धि एवं

जीव की बुद्धि में आयेगा। स्पष्ट है कि जीव का दिल (मन, चित्त) वही कार्य करेगा और द्रष्टा स्वरूपा आत्मा का दिल उस कार्य से स्वयं को जोड़ लेगा। उसे यही प्रतीत होगा कि यह कार्य मैंने ही किया है। लौकिक कार्यों, चिन्तन-मनन, विरह आदि में जीव का दिल कार्य करेगा, जबकि प्रेम एवं धनी के दिल में डूबने का कार्य आत्मा का दिल करेगा।

**पिरी पाण हित अची करे, बेसक डिंने इलम।**

**अर्स बका हिक हकजो, बेओ जरो न रे हुकम॥१५॥**

**शब्दार्थ—** पिरी-प्रीतमजी, पाण-आप, हित-यहाँ, अची-था, करे-करके, बेसक-निःसन्देह, डिंने-दिया, इलम-ज्ञान, अर्स-धाम, बका-अखण्ड, हिक-एक, हक जो-अक्षरातीत के सिवा, बेओ-दूसरा, जरो-



किंचित्, न-नहीं है, रे-बिना, हुकम-आज्ञा के।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आपने इस संसार में आकर हमें संशयरहित (तारतम) ज्ञान दिया, जिससे हमें यह बोध हो गया कि परमधाम, आप, तथा आपके हुकम (आदेश) के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

लख गुणा डिए सिर पर, सो वराके ई गाल।

असीं फरामोस तो हथमें, कौल फैल जे हाल॥१६॥

**शब्दार्थ-** लख-लाखों, गुणा-दोष, डिए-दिए, सिर-सिर के, पर-ऊपर, सो-सौ, वराके-दावपेंचों की, ई-एक ही, गाल-बात है, असीं-हम सखियों की, फरामोस-नींद, तो-आपके, हथमें-हाथ में है, कौल-कहनी, फैल-चलनी, जे-जो भी, हाल-रहनी।

**अर्थ-** यदि आप हमारे ऊपर लाखों दोष भी लगायें, तो

भी सौ बातों का एक ही उत्तर है कि हमारी नींद (फरामोशी) आपके ही हाथों में है। हमारी कथनी, करनी, और रहनी का निमन्त्रण भी आपके ही हाथों में है।

**तेहेकीक केयो तो इलमें, तो धारा न कोई बेसक।**

**अर्स रूहें असीं कदमों, कित जरो न तो रे हक॥१७॥**

**शब्दार्थ-** तेहेकीक-निश्चय, केओ-कराया, तो-आपके, धारा-बिना, न-नहीं है, कोई-कोई भी, बेसक-बेशक, अर्स-धाम की, रूहें-सखियाँ सहित, असीं-हम, कदमों-आपके चरणों में हैं, कित-कहीं भी, जरो-तिल मात्र, न-नहीं हैं, तोरे-आपके बिना, हक-सत्य।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आपकी तारतम वाणी ने हमें इस

बात का निश्चय करा दिया है कि निश्चित रूप से आपके बिना कुछ भी नहीं है। हम आत्मायें तो उस परमधाम में आपके चरणों में बैठी हैं, जहाँ आपके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

**भावार्थ-** मारिफत (परम सत्य) की दृष्टि से देखा जाये तो सम्पूर्ण परमधाम श्री राज जी के हृदय (दिल) का ही स्वरूप हैं। उनसे भिन्न वहाँ अन्य किसी वस्तु की कल्पना नहीं की जा सकती। लीला (हकीकत) रूप में अवश्य असंख्य रूप दृष्टिगोचर होते हैं। बेहद का ब्रह्माण्ड भी श्री राज जी के सत् अंग अक्षर ब्रह्म का लीला धाम है, जिसे अक्षरातीत से मूलतः अलग करके नहीं देखा जा सकता। अक्षर ब्रह्म के मन स्वरूप (अव्याकृत) के स्वाप्टिक रूप ही आदिनारायण है, जिनके संकल्प से यह हृद का स्वप्नमयी ब्रह्माण्ड है। इसका तो कोई

यथार्थतः अस्तित्व ही नहीं है। इस प्रकार अक्षरातीत से अलग किसी भी पदार्थ का अखण्ड अस्तित्व नहीं माना जा सकता। इस चौपाई में यह बात कही गयी है।

**गुणा डिठम कई पांहिजा, से लाथा तोहिजे इलम।**

**कोए पाक न्हाए हिन दुनीमें, से असांके केयां खसम॥१८॥**

**शब्दार्थ-** गुणा-दोष, डिठम-देखे, पांहिजा-अपना, से-सो, लाथ-उतारती हूँ, तोहिजे-आपके, इलम-ज्ञान से, कोए-कोई भी, पाक-पवित्र।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! इस मायावी संसार में मैंने अपने बहुत से दोषों को देखा, जिन्हें मैंने आपके तारतम ज्ञान से समाप्त कर दिया। इस स्वप्नवत् संसार में वस्तुतः कोई भी पवित्र नहीं है, किन्तु आपने हमें पवित्र कर दिया।

**भावार्थ-** श्रृंगार २४/४१ में कहा गया है कि "और जित आया हक इलम, अर्स दिल कह्या सोए।" जब धाम हृदय में ही युगल स्वरूप विराजमान हो गये, तो वहाँ पाप या अपवित्रता नाम की वस्तु कहाँ रही। इस अवस्था से पहले भले ही कोई कितना बड़ा योगी, तपस्वी, और विद्वान क्यों न हो, पूर्णतया पवित्र होने का दावा नहीं कर सकता। निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने वाले योगेश्वर ऋषि-मुनि एवं देवता भी धाम -हृदय वाले इन ब्रह्ममुनियों के समक्ष कोई अस्तित्व नहीं रखते।

आसमान जिमी जे विचमें, के चेयो न बका जो हरफ।

एहेडो कोए न थेयो, जे तो बका डेखारे तरफ॥१९॥

**शब्दार्थ-** आसमान-आकाश, जिमी जे-पृथ्वी के, विचमें-बीच में, के-किसी ने, चेयो-कहा, न-नहीं है,

बका जो-अखण्ड का, हरफ-शब्द, एहेडो-ऐसा, कोए-कोई भी, न-नहीं, थेयो-हुआ, जे-जो, तो-आपके, बका-अखण्ड की, डेखारे-दिखाये, तरफ-दिशा।

**अर्थ-** धरती और आकाश के बीच में ऐसा कोई भी नहीं हुआ, जिसने आपके अखण्ड परमधाम की दिशा भी बतायी हो। किसी ने अब तक परमधाम के सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं कहा है।

**भावार्थ-** धरती और आकाश का तात्पर्य कालमाया के ब्रह्माण्ड के सभी लोक-लोकान्तरों से है। एक भी अक्षर न कहने का भाव आलंकारिक है। इसका आशय है-पूर्णतया मौन रहना। बिना तारतम ज्ञान के बेहद से परे उस शब्दातीत परमधाम के बारे में कैसे कहा जा सकता था। किसी ने वैकुण्ठ-निराकार को परमधाम माना था, तो किसी ने बेहद मण्डल में स्थित अव्याकृत, सबलिक,

या केवल को ही परमधाम मान लिया।

**दुनियां हिन आलम में, कायम न डिठो के।**

**से सभ पाण पुकारियां, हिन चौडे तबके में॥२०॥**

**शब्दार्थ-** दुनियां-संसार में, हिन-इन, आलम-जहान के, में-बीच में, कायम-अखण्ड को, न-नहीं, डिठो-देखा, के-किसी ने, से-सो, सभ-सम्पूर्ण, पाण-आपने, पुकारियां-पुकार किया, हिन-इन, चौडे-चौदह, तबके-लोक, में-में।

**अर्थ-** इस संसार में आज दिन तक किसी ने भी अखण्ड परमधाम को नहीं देखा। इसलिये चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड के सभी लोग स्वयं ही पुकारकर इस बात को कह रहे हैं।

से कायम सभे थेयां, कूडा मोहोरा जे।

वडी वडाइयूं डिंनिए, असां हथ कराए॥२१॥

**शब्दार्थ-** से-सो, कायम-अखण्ड, सभे-सम्पूर्ण, थेयां-हुए, कूडा-झूठे, मोहोरा-अगुवा, जे-जितने हैं, वडी-बहुत, वडाइयूं-महत्व, डिंनिए-देकर, असां-हमारे, हथ-हाथ से, कराए-कराया।

**अर्थ-** आपके तारतम ज्ञान से अब ये सभी झूठे (नश्वर) देवी-देवता अखण्ड हो गये। मेरे हाथों से अखण्ड मुक्ति दिलवाकर आपने मुझे बहुत बड़ी शोभा दी है।

**भावार्थ-** इस मायावी खेल के अग्रगण्य ब्रह्मा आदि देव तथा ऋषि-मुनि भी महाप्रलय में लीन हो जाने वाले हैं, इसलिये इन्हें झूठा कहा गया है।



कई खेल डेखारे रांद में, इलम डिंने बेसक।

भिस्त डियारी असां हथां, दुनियां चौडे तबक॥२२॥

**शब्दार्थ**— कई—कई तरह के, डेखारे—दिखाए, रांद में—खेल में (माया के बीच), डिंने—देकर, बेसक—निःसन्देह, भिस्त—मुक्ति, डियारी—दिलाई, असां—हमारे, हथां—हाथों से, दुनियां—संसार, चौडे—चौदह, तबक—लोक को।

**अर्थ**— हे धाम धनी! इस मायावी जगत में आपने हमें तरह-तरह का खेल दिखाया है और संशय रहित करने वाली तारतम वाणी भी दी है। चौदह लोकों के इस ब्रह्माण्ड को हमारे हाथों से अखण्ड मुक्ति भी दिलायी है।

डिंनिए वड्यूं वडाइयूं, हांणे जे डिए दीदार।

मिठा वैण सुणाइए वलहा, त सुख पसूं संसार॥२३॥

**शब्दार्थ-** डिंनिए-दर्ई, वड्यू-बड़ी, वडाइयूं-बड़ाई, हांणे-अब, डिए-देओ, दीदार-दर्शन, वैण-वचन, सुणाइए-सुनाओ, वलहा-प्यारे धनी, पसूं-देखूं, संसार-संसार के।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम! आपने हमें इस संसार में बहुत बड़ी शोभा दी है। अब मुझे अपना मधुर दर्शन (शर्बत-ए-दीदार) दीजिए और अपने अमृत से अधिक मीठे वचनों को सुनाइये, जिससे मैं इस संसार में ही सुख का अनुभव कर सकूँ।

**भावार्थ-** यह सारा संसार नश्वर एवं दुःखमय है। इसमें यदि प्रियतम परब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन (आत्मिक दृष्टि से) हो जाये तथा उनकी प्रेम भरी बातें सुनने को मिल जायें, तो इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है। इस अवस्था में तो सुख का सागर ही हृदय-धाम में हिलोरे मारने

लगता है और दुःखमय संसार का जरा भी भान नहीं होता। संसार में सुख लेने का यही अभिप्राय है।

हे पण भूल असांहिजी, जे हिनमें मंगूं सुख।

बिओ डिसण वडो कुफर, गिनी इलम बेसक॥२४॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, पण-भी, भूल-भूल, असांहिजी-हमारी है, हिनमें-इस माया में, मंगूं-माँगती हूँ, बिओ-दूसरा, डिसण-देखती हूँ, वडो-भारी, कुफर-दोष, गिनी-लेकर, बेसक-निःसन्देह का।

**अर्थ-** यह भी मेरी भूल है जो मायावी जगत् में सुख माँगती हूँ। सभी संशयों को दूर करने वाली तारतम वाणी का ज्ञान प्राप्त करके भी मायावी संसार में सुखों की इच्छा करना दूसरी भूल है।

**भावार्थ-** धनी की पहचान से पूर्व मायावी संसार में सुख की इच्छा करना तो भूल है ही, क्योंकि लौकिक सुख हमारे और धनी के बीच पर्दा बन जाता है। तारतम्य ज्ञान से धनी के स्वरूप की पहचान हो जाने के पश्चात् उनसे दर्शन देने और वार्ता का सुख माँगना भी इसलिये दूसरी भूल है, क्योंकि प्रेम के पवित्र धरातल पर "माँग" शब्द का अस्तित्व ही नहीं है। प्रेम सर्वस्व लुटाना चाहता है। अपने प्रेमास्पद के लिये सर्वस्व लुटा देने के बाद स्वयं के लिये सुख माँगना प्रेम की निर्मल चादर पर धब्बा लगाना है। यद्यपि दीदार और मीठी बातों का सुख भी प्रेममयी लीला का ही अंग है, किन्तु स्वयं को मिटा देने वाले आशिक के दिल में इसकी कामना भी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वह तो स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।

खेल त जरो न्हाए की, ए इलमें खोली नजर।

हित बेही मंगूं सुख अर्सजा, धणी मिडन कोठे घर॥२५॥

**शब्दार्थ**— खेल—संसार, जरो—जरा मात्र, न्हाए—नहीं है, की—कुछ भी, इलमें—ज्ञान ने, खोली—खोल दिया, हित—यहाँ, बेही—बैठकर, अर्सजा—परमधाम के, धणी—प्रियतम, मिडन—मिलने को, कोठे—बुलाते, घर—धाम में।

**अर्थ**— तारतम वाणी ने मेरे ज्ञान-चक्षुओं को खोल दिया है, जिससे यह निश्चय हो गया है कि यह संसार तो जरा मात्र (कण मात्र) भी नहीं है। मैं इस अस्तित्व – विहीन संसार में बैठकर प्रियतम का अखण्ड सुख माँगती हूँ, जबकि धाम धनी मुझे मिलने के लिये परमधाम में बुला रहे हैं।

ढील मंगूं घर हल्लणजी, बिओ खेल में मंगां सुख।

हिनमें अचे थो कुफर, आंऊं छडी न सगां रूख॥२६॥

**शब्दार्थ**— ढील—देरी, घर—घर में, हल्लणजी—चलने की, हिनमें—इस दुनिया में, अचे थो—आता है, आंऊं—मैं, छडी—छोड़, सगां—सकती हूँ, रूख—दुख को (माया को)।

**अर्थ**— एक तो परमधाम चलने में मैं देरी चाहती हूँ तथा दूसरा खेल में धाम के सुख माँगती हूँ। मैं इस संसार में माया को नहीं छोड़ सकी, यह भी एक दोष ही है।

**भावार्थ**— इस चौपाई में स्वयं के प्रति कथन करके श्री महामति जी ने सुन्दरसाथ को यह सीख दी है कि तारतम वाणी से संशय रहित होने के पश्चात् माया को अपने ऊपर हावी (भारी) नहीं होने देना चाहिए, अन्यथा अपने पवित्र प्रेम पर कलंक लगता है। धनी के विरह—प्रेम

में डूबी हुई आत्माओं के लिये तो "रतन जड़ित जो मन्दिर, सो उठ उठ खाने धाए" (कलस हिंदुस्तानी ५/८) की स्थिति होती है।

**हिकडी गाल थेई हिन न्हाए में, असां न्हाए भारी थेयो।**

**त सुख मंगूं हित अर्सजा, जे न्हाए के पसूं था बेओ॥२७॥**

**शब्दार्थ-** हिकडी-एक, गाल-बात, थेई-हुई, हिन-इन, न्हाए-झूठ संसार, असां-हमको, भारी-बड़ा, थेओ-हुआ, त-तब, हित-यहाँ, अर्सजा-परमधाम का, जे-जो, न्हाए-इस खेलके, पसूं-देखती, था-हूँ, बेओ-दूसरा।

**अर्थ-** इस संसार में एक ऐसी विचित्र बात हो गयी है कि यह नश्वर जगत् मेरे ऊपर भारी पड़ गया है। यही कारण है कि मैं इस मायावी जगत् में परमधाम के सुखों

की माँग करती हूँ। मैं भूलवश इस नश्वर संसार को दूसरा समझ बैठी हूँ।

**भावार्थ-** श्री महामति जी की दृष्टि में परम प्रेम की अवस्था में प्रियतम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दिखना चाहिए। किन्तु यदि हमें यह संसार बहुत प्यारा लगता है और हम इसके मोहवश परमधाम के सुखों को यहीं चाहते हैं, तो यह निश्चित है कि हमारे प्रेम में कहीं न कहीं कमी है। इस चौपाई का आशय यह कदापि नहीं मानना चाहिए कि इसमें ब्रह्मसृष्टियों को शरीर छोड़ने के लिये प्रेरित किया गया है। "ए दोऊ तन तले कदम के, आतम परआतम", ब्रह्मात्माओं के तन तो उतने समय तक संसार में अवश्य रहेंगे जितने समय तक धाम धनी चाहेंगे, लेकिन अपनी ओर से शरीर और संसार के प्रति मोह पालकर धनी के प्रति प्रेम को पीछे कर देना अपराध



(कुफ्र) है। इस चौपाई का मूल आशय यह है कि किसी भी प्रकार के सुख की आकांक्षा न रखते हुए हमें केवल प्रियतम से प्रेम करना चाहिए। उस प्रेम के बदले कोई भी इच्छा करना प्रेम के ऊपर दाग लगाना है।

**आंजी मंगाई मंगा थी, या कुफर या भूल।**

**हे डोरी आंजे हथ में, असां दिल अकल॥२८॥**

**शब्दार्थ-** आंजी-आपके ही, मंगाई-मँगाने से, मंगा थी-माँगती हूँ, या-यह, कुफर-दोष हो, हे-यह, डोरी-डोरी (तार), हथ में-हाथ में, असां-हमारा, अकल-बुद्धि की।

**अर्थ-** आप ही मँगवाते हैं तो मैं माँगती हूँ। आप इसे मेरा दोष कहिए या भूल कहिए। मेरे हृदय और बुद्धि की डोर तो आपके ही हाथों में है।

**द्रष्टव्य-** सामान्यतः अन्तःकरण (दिल, हृदय) के अन्तर्गत ही बुद्धि होती है, किन्तु इस चौपाई में दिल का तात्पर्य मन और चित्त से है।

जे की डिसण बोलण, से तो रे सब बंधन।

हक इलम चोए पधरो, जे विचार करे मोमिन॥२९॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, की-कुछ, डिसण-देखती हूँ, बोलण-बोलती हूँ, से-सो, तो रे-आपके बिना, सब-सब, चोए-कहता है, पधरो-प्रत्यक्ष, विचार-समझ, करे-करें, मोमिन-सखियाँ।

**अर्थ-** मैं जो कुछ भी सुख देखती हूँ या बोलती हूँ, वह सब आपके बिना बन्धन रूप है। प्रियतम का इस प्रकार का स्पष्ट कथन है, जिसका विचार आत्मायें ही करती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई का आशय यह है कि यदि हृदय-

कमल में प्रियतम की छवि नहीं बसी, तो इस नश्वर जगत् में सुखों को देखना (रसपान करना) और केवल ज्ञान की बातें करना भी बन्धन ही है।

**धणी मूंहजे धामजा, असां न्हाए चोंणजी गाल।**

**असांजा आंजे हथ में, कौल फैल जे हाल॥३०॥**

**शब्दार्थ-** मूंहजे-मेरे, धामजा-धाम के, असां-हमको, न्हाए-नहीं है, चोंणजी-कहने की, असांजा-हम, आंजे-आपके, हथ में-हाथ में।

**अर्थ-** हे मेरे धाम के धनी! अब हमारे पास आपसे कहने के लिये कोई भी बात नहीं है। हमारी कथनी, करनी, और रहनी सभी कुछ आपके हाथों में है।

महामत चोए मेहेबूब जी, करयो जे अचे दिल।

जी जाणो तीं करयो, असां जी अकल॥३१॥

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, मेहेबूब जी-हे धनी जी, करयो-करो, अचे-आवे, दिल-दिल में, जी-जिस तरह, जाणो-जानो, तीं-वैसा, असां जी-हमारी, अकल-बुद्धि।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरे प्राणवल्लभ ! आपके दिल में जो भी आये (अच्छा लगे), वही कीजिए। हमारी बुद्धि को आप जैसा चाहें, वैसा ही कीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में बुद्धि का आशय जीव और आत्मा दोनों की बुद्धि से है। जीव की बुद्धि स्वाभाविक रूप से माया में लिप्त होती है। माया के ब्रह्माण्ड में आत्मा की बुद्धि भी जीव भाव में ही विवेचना करने लगती है। तारतम वाणी के प्रकाश और धनी की मेहर से दोनों की

बुद्धि परमधाम की विवेचना में लग जाती है। यहाँ यही बात व्यक्त की गयी है।

प्रकरण ॥३॥ चौपाई ॥१०६॥

इस प्रकरण का प्रसंग पूर्व प्रकरण जैसा ही है।

रे पिरीयम, मंगां सो लाड करे।

हेडी किजकां मुदसे, खिलंदडी लगां गरे॥१॥

**शब्दार्थ-** रे-हे, पिरीयम-प्रियतम, सो-वही(मिलाप), करे-करके, हेडी-ऐसी, किजकां-करो, मुदसे-मुझ से, खिलंदडी-हँसकर, लगां-लगो, गरे-कण्ठ से।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे मेरे प्रियतम! मैं आपसे मिलकर प्रेमपूर्वक यह माँग करती हूँ कि आप मेरे ऊपर ऐसी मेहर कीजिए कि मैं हँसती हुई आपके गले लग जाऊँ।

जगाइए इलम से, विच सोणे विहारे।

निद्रडी आई जा हुकमें, जागां कीय करे॥२॥

**शब्दार्थ-** विच-बीच में, सोणे-स्वप्न के, विहारे-बैठाकर, निद्रडी-नींद, जा-जो, हुकमें-हुक्म से, जागां-जाग्रत होवें, कीय-कैसे, करे-करके।

**अर्थ-** आप हमें इस मायावी जगत में लाकर अपने तारतम ज्ञान से जगा रहे हैं। जो नींद आपके ही हुक्म से आयी है, उससे कैसे जाग्रत हुआ जा सकता है।

**हे अंगडा सभ सोणेजा, असल कूडा जे।**

**जोर करियां घणी परे, त की न पुजे तो के॥३॥**

**शब्दार्थ-** हे-यह, अंगडा-शरीर, सभ-सम्पूर्ण, जा-का, असल-मूल से ही, कूडा-झूठा है, जोर-ताकत, करियां-करती हूँ, घणी-बहुत, परे-तरह से, त-तो भी, की-किसी तरह, न-नहीं, पुजे-पहुँचता है, तो के-आपको।

**अर्थ-** मेरे सभी अंग स्वप्न के हैं और मूल से ही झूठे हैं। यद्यपि मैं जाग्रत होने के लिये पूरी शक्ति लगाती हूँ, फिर भी मैं आप तक नहीं पहुँच पाती (देख पाती)।

**भावार्थ-** अव्याकृत के स्वप्न में मोह सागर की उत्पत्ति हुई, जिसमें आदिनारायण का स्वरूप प्रकट हुआ। आदिनारायण के ही स्वप्न में सभी ब्रह्माण्ड एवं चर-अचर प्राणी उत्पन्न हुए। इस प्रकार इस संसार के शरीरों के सभी अंग मूल से ही नश्वर हैं।

इलमें न रखी कां सक, मूंजो हल्ले न सोणें में।

संगडो डेखारे बेसक, आंऊं लाड करियां के से॥४॥

**शब्दार्थ-** इलमें-ज्ञान ने, न-नहीं, रखी-रखी है, कां-कुछ भी, सक-संशय, मूंजो-मेरा, हल्ले-चलता है, सोणें में-स्वप्न में, संगडो-सम्बन्ध, डेखारे-दिखाया,



करियां-करूँ, के से-किससे।

**अर्थ-** आपकी तारतम वाणी से अब किसी भी प्रकार का संशय नहीं रह गया है, किन्तु इस स्वप्नमयी संसार में मेरा कुछ भी वश नहीं चलता है। निश्चित रूप से आपने मुझे मूल सम्बन्ध की पहचान करा दी है। अब आपके अतिरिक्त और कौन है, जिससे मैं प्रेम करूँ।

हे पसां सभ सोंणे में, आंऊं विच जिमी आसमान।

से न्हाए चौडे तबके, मूंजो संगडो तूं सुभान॥५॥

**शब्दार्थ-** जिमी-पृथ्वी, से-सो, न्हाए-नहीं है, चौडे-चौदह, तबके-लोक में, मूंजो-मेरा, तूं-आप, सुभान-प्रियतम।

**अर्थ-** हे प्रियतम! मेरा आपसे अखण्ड सम्बन्ध है। किन्तु जब मैं धरती और आकाश के बीच इस स्वप्नमयी

संसार में देखती हूँ, तो चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में आपको कहीं भी नहीं देख पाती हूँ।

**द्रष्टव्य-** यह कथन परोक्ष रूप से सुन्दरसाथ के लिये कहा गया है। श्री महामति जी ने तो हब्शा में युगल स्वरूप का दीदार कर ही लिया था।

मूं धणी मूं हितई, ओडो डेखारे इलम।

हथ घुरींदे न लहां, न डिसां नेंगे खसम॥६॥

**शब्दार्थ-** मूं-मेरे, धणी-प्रियतम ने, हितई-यहाँ ही, ओडो-नजदीक, डेखारे-दिखाया, हथ-हाथ से, घुरींदे-माँगती हूँ, लहां-पाती हूँ, डिसां-देखती हूँ, नेंगे-नेत्रों से, खसम-प्रियतम को।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! आपके तारतम ज्ञान ने यह दर्शा दिया है कि आप मेरे बहुत ही निकट (शाहरग से भी

अधिक) हैं, किन्तु यह महान आश्चर्य की बात है कि न तो मैं आपको अपने हाथों से छू पा रही हूँ और न आँखों से देख पा रही हूँ।

**भावार्थ-** अक्षरातीत का स्वरूप स्थूल और त्रिगुणात्मक नहीं है, जिसे हाथों से छुआ और आँखों से देखा जा सके। परमधाम में उनका स्वरूप नूरमयी है, इसलिये नूरमयी स्वरूप वाली ब्रह्मसृष्टियाँ उन्हें छूती भी हैं तथा जी भरकर दीदार भी करती हैं। इस मायावी जगत में वे आत्मा के धाम हृदय में विराजमान होते हैं, जिन्हें मात्र आत्म-चक्षुओं से ही देखा जा सकता है, किन्तु सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी द्वारा जो आवेश लीला होती थी, उसमें अक्षरातीत को इन पञ्चभौतिक नेत्रों से भी देखा जाता था।

हे इलम एहेडो आइयो, जेहेडो आइए तूं।

इलम सोणें में को करे, मूं में रही न मूं॥७॥

**शब्दार्थ-** एहेडो-ऐसा, आइयो-है, जेहेडो-जैसे, आइए-हो, को-क्या, करे-करें, मूं में-मेरे बीच में, मूं-मैं पना।

**अर्थ-** जिस तरह आप जाग्रत हैं, उसी प्रकार आपका यह तारतम ज्ञान भी जाग्रत है। जब मेरे अन्दर "मैं" है ही नहीं, तो आपका यह तारतम ज्ञान भी इस स्वप्नमयी संसार में क्या करे।

**भावार्थ-** सामान्य अवस्था में कोई भी लौकिक "मैं" का परित्याग नहीं कर पाता और परात्म की "मैं" के आए बिना कोई भी आत्मा जाग्रत नहीं हो सकती। इस प्रकार, इस चौपाई में जिस "मैं" का प्रसंग है, वह परात्म की "मैं" है, जिसके न होने से आत्मा जागनी के चरम लक्ष्य

को नहीं प्राप्त कर पा रही है। परोक्ष में (पर्दे में, संकेत में), यहाँ सुन्दरसाथ को यह सिखापन दी गयी है कि वे जाग्रत होने के लिये तारतम वाणी से संसार की मैं छोड़ें और परात्म की मैं (हक की मैं) को आत्मसात् करें, अन्यथा तारतम ज्ञान भी उनकी आत्मा को पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं कर पायेगा।

**रांद सभेई निद्रजी, जीरया मरया वजन।**

**सोंणे अंगडा असांहिजा, तोके की न पुजन॥८॥**

**शब्दार्थ-** रांद-खेल, सभेई-सम्पूर्ण, निद्रजी-नींद का, जीरया-जीना, मरया-मरना, वजन-जाना, अंगडा-शरीर, असांहिजा-हमारा, तोके-आपको, की-किसी तरह से, पुजन-पहुँचता है।

**अर्थ-** यह सारा खेल नींद (माया) का है। इसमें जीने-

मरने का चक्र चलता रहता है। हमारे तन भी स्वप्न के हैं, जो आप तक साक्षात् नहीं पहुँच सकते।

**भावार्थ-** आत्मा की दृष्टि ही परात्म का श्रृंगार सजकर परमधाम में पहुँचती है। पञ्चभूतात्मक तन के वहाँ जाने का प्रश्न ही नहीं है।

हे सोणो तोहिजे हथ में, तो हथ निद्र इलम।

तोहिजा सुख सोणे या जागंदे, सभ हथ तोहिजे हुकम॥९॥

**शब्दार्थ-** सोणो-स्वप्न, तोहिजे-आपके, हथ में-हाथ में है, तो-आपके, निद्र-नींद (अज्ञान), तोहिजा-आपका, सोणे-सुपने में, जागंदे-जाग्रति में, सभ-सम्पूर्ण, हथ-हाथ में, हुकम-आज्ञा में है।

**अर्थ-** स्वप्न का यह ब्रह्माण्ड आपके ही अधीन (हाथ में) है। हमारे ऊपर छायी हुई माया की नींद या तारतम

ज्ञान का प्रकाश भी आपके हुक्म के अधीन है, अर्थात् यह आपकी ही इच्छा पर निर्भर है कि हम आत्मायें तारतम ज्ञान के उजाले में आपको देखें या माया (अज्ञानता) की नींद में सोती रहें। आपके परमधाम का सुख हमें स्वप्नावस्था में प्राप्त हो या आत्म-जाग्रति की अवस्था में, सब कुछ आपके ही आदेश (इच्छा, हुक्म) से बँधा हुआ है।

**हेडी गाल अची लगी, जाणे थो सभ तू।**

**तो पांणे पांण डेखारयो हिकडो, आंऊं त पसां तो अडूँ॥१०॥**

**शब्दार्थ—** हेडी-ऐसी, अची-आकर, लगी-लगी है, जाणे थो-जानते हैं, तू-आप, तो-आपने, पांणे-आप ही, पांण-आपको, डेखारयो-दिखाया, हिकडो-एक ही, आंऊं-मैं, त-तब, अडूँ-तरफ।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप तो सब कुछ जानते हैं। आपके हुक्म की कारीगरी की बात मुझे लग गयी है, अर्थात् मैंने इसे अच्छी तरह से समझ लिया है। आपने स्वयं ही मुझे केवल अपनी पहचान करायी है, इसलिये अब मैं एकमात्र आपकी ही ओर प्रेम एवं आशा की नजरों से निहार (देख) रही हूँ।

**की घुरां आंऊं के कणां, ओडो न अचे तूं।**

**बिओ को न पसां थी कितई, आंऊं विच आसमाने भूं॥११॥**

**शब्दार्थ-** की-कैसे, घुरां-माँगूं, के कणां-किसके पास, ओडो-नजदीक, अचे-आते हैं, बिओ-दूसरा, को-कोई, पसां थी-देखती हूँ, कितई-कहीं, आसमाने-आसमान, भूं-पृथ्वी के।

**अर्थ-** आप मेरे पास आ तो रहे नहीं। अब आप ही



बताइए कि मैं आपसे कैसे माँगूँ? किससे माँगूँ? मैं इस धरती और आकाश के बीच आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं देख पा रही हूँ, जिससे मैं माँग सकूँ।

**भावार्थ-** एकनिष्ठता एवं समर्पण के बिना प्रेम की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस चौपाई में सांकेतिक रूप से उन सुन्दरसाथ के ऊपर करारी चोट की गयी है, जो सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये देवी-देवताओं की ओर भागते फिरते हैं।

बोलां थी तो बोलाई, तो अडां पसाइए तूं।

निद्र इलम या इस्क, तो डिंनो अचे मूं॥१२॥

**शब्दार्थ-** बोलां थी-बोलती हूँ, बोलाई-बुलाने से, तो-अपनी, अडां-तरफ, पसाइए-दिखाते हैं, तूं-अपनी, निद्र-नींद, तो-आपका, डिंनो-दिया, अचे-

आता है, मूं-मुझे।

**अर्थ-** आप बुलवाते हैं, तो बोलती हूँ। अपनी ओर दिखाते हैं, तो आपकी ओर देखती हूँ। मेरे पास जो माया की नींद, तारतम ज्ञान, या इश्क (प्रेम) है, वह भी आपसे ही प्राप्त होता है।

**भावार्थ-** खेल दिखाने के लिये धाम धनी ने हमें मायावी जगत में भेजा है। इसे ही नींद देना कहा गया है। इससे छुटकारा पाने के लिये श्री राज जी ने हमें तारतम वाणी का ज्ञान और प्रेम दिया है, जिसके द्वारा धनी के हुक्म की छत्रछाया में हमारी आत्मा उन्हें देख सकती है। यह सम्पूर्ण कथन परोक्ष रूप में सुन्दरसाथ के लिये है, महामति जी के लिये नहीं।

जे चओ त बोलियां, न तां मांठ करे रहां।

जे उपाओ था दिल में, से तो रे के के चुआं॥१३॥

**शब्दार्थ-** चओ-कहो, त-तो, बोलियां-बोलूँ, नतां-  
नहीं तो, मांठ-चुप, करे-करके, रहां-रहूँ, उपाओ-  
उपजाते, था-हैं, से-सो, तो रे-आपके बिना, के के-  
किनसे, चुआं-कहूँ।

**अर्थ-** हे धनी! आप जैसा कहते हैं, मैं वही बोलती हूँ,  
अन्यथा आप कहें तो मैं चुप हो जाऊँ। आप मेरे दिल में  
जो भी बात उपजाते हैं, उसे आपके अतिरिक्त मैं किससे  
कहूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेम भरी नोक-झोंक की अति  
मधुर झलक दिखायी गयी है। आशिक (आत्मा) का कुछ  
भी कहना-सुनना माशूक (प्रियतम) के इशारे पर ही  
निर्भर करता है।

हंद न रख्यो कितई, जे से करियां गाल।

तो डेखारी डिस तोहिजी, से लखे तोहिजा भाल॥१४॥

**शब्दार्थ-** हंद-ठिकाना, रख्यो-रखा, कितई-कहीं भी, जे से-जिससे, करियां-करूँ, गाल-बातें, तो-आपने, डेखारी-दिखाया, डिस-तरफ, तोहिजी-आपकी, लखे-लाखों, भाल-अहसान।

**अर्थ-** आपने अपने अतिरिक्त मेरा कहीं कोई ठिकाना ही नहीं रखा, जिससे मैं बातें भी कर सकूँ। आपने मुझे अपनी पहचान बतायी है, जिसके लिये मैं आपके लाखों एहसान मानती हूँ।

**भावार्थ-** ब्रह्मसृष्टियाँ अक्षरातीत की अँगरूपा हैं। वे उनके अतिरिक्त अन्य किसी को भी प्रियतम के रूप में स्वीकार नहीं कर सकतीं। क्या चन्द्रमा की मनोरम किरणें चन्द्रमा को छोड़कर, किसी दीपक को अपना

प्रियतम बना सकती हैं। धनी के अतिरिक्त अन्य कोई ठिकाना न होने का यही अभिप्राय है।

**मूं अवगुण डिठां पांहिजा, गुण डिठम पिरम।**

**से बेओ जमारो गेंदे, उमेद ए रियम॥१५॥**

**शब्दार्थ-** मूं-मैंने, डिठां-देखे, पांहिजा-अपने, गुण-अहसान, डिठम-देखे, पिरम-प्रियतम के, बेओ-गई, जमारो-आयु, गेंदे-गाते हुए, उमेद-चाहना, रियम-रही है।

**अर्थ-** हे धाम धनी! एक ओर जहाँ मैंने अपने अवगुणों (दोषों) को देखा, तो दूसरी ओर आपके अनन्त गुणों को देखा। आपके गुणों को गाते-गाते मेरी (इस शरीर की) आयु बीत गयी। केवल यही एक चाहना रह गयी है कि आपका दीदार कर प्रेम भरी बातें करूँ।

**भावार्थ-** प्रायः पञ्चभौतिक शरीर की उम्र के अधिकांश भाग के बीत जाने को आयु का पूरा हो जाना कहा जाता है, इस प्रकार का कथन आलंकारिक ही होता है। इस चौपाई का कथन परोक्ष रूप में सुन्दरसाथ के लिये है, क्योंकि श्री महामति जी ने हब्शा में ही प्रियतम का दीदार भी कर लिया था और प्रेम भरी बातें भी कर ली थीं।

जब आह भी सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग॥

कलस हिंदुस्तानी ८/८ का कथन भी यही बात सिद्ध करता है।

तो उमेदूं पुजाइयूं, जे जो न्हाए सुमार।

हे तो पांण मंगाइए, तूही डियन हार॥१६॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, उमेदूं-चाहनाएँ, पुजाइयूं-पूर्ण

की, जे जो-जिसका, न्हाए-नहीं है, सुमार-हिसाब, हे-यह, तो-आप, पांण-आप ही, मंगाइए-मँगवाते हैं, तूही-आप ही, डियन हार-देने वाले हैं।

**अर्थ-** आपने मेरी जो इच्छायें (चाहनायें) पूर्ण की हैं, वे अनन्त हैं। आप ही मँगवाते हैं, तो मैं माँगती हूँ। आप ही देने वाले हैं (इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं)।

**लाड कोड तो हथमें, संग या सांजाए।**

**जडे तडे तूही डिए, बेओ कोए न कितई आए॥१७॥**

**शब्दार्थ-** कोड-हर्ष, हथमें-हाथ में है, संग-सम्बन्ध, सांजाए-पहचान भी, जडे-जब, तडे-तब, तूही-आप ही, डिए-देते हैं, बेओ-दूसरा, कोए-कोई भी, कितई-कहीं, आए-है।

**अर्थ-** प्रेम, आनन्द, या मूल सम्बन्ध की पहचान भी

आप ही के हाथों में हैं। जब कभी ये प्राप्त होते हैं , तो आप ही कराते हैं। आपके अतिरिक्त और कोई भी ऐसा करने वाला नहीं है।

**जडे आंणी ने ओडडा, तडे पेरईं डिंने लज्जत।**

**हे डिंनो अचे सभ तोहिजो, मूँके बुझाइए सौ भत॥१८॥**

**शब्दार्थ-** आंणी ने-लायेंगे, ओडडा-नजदीक, पेरो-पहले ही, डिंने-देंगे, लज्जत-स्वाद, हे-यह, डिंनो-दिया हुआ, अचे-आता है, सभ-सम्पूर्ण, तोहिजो-आपका, मूँके-मेरे को, बुझाइए-समझाया (इलम के द्वारा), भत-तरह से।

**अर्थ-** जब आप अपने पास बुलाते हैं, तब पहले से ही उसका रसास्वादन होने लगता है। आपने तारतम ज्ञान द्वारा यह बात मुझे सैकड़ों बार समझा दी है कि यह सब



कुछ आपके द्वारा ही होता है।

**भावार्थ-** प्रेम और आनन्द के अनन्त सागर अक्षरातीत का साक्षात्कार होने से पूर्व ही आत्मा के हृदय में अलौकिक प्रेम व आनन्द की अनुभूति होने लगती है। "एता सुख तेरे विरह में, तो कौन सुख होसी विहार" (कलस हिंदुस्तानी ७/११) का कथन यही भाव प्रकट करता है।

**जीं बुझाइए मूंहके, डे तूं मेहेर करे।**

**जे न घुरां तो कंने, त को आए बेओ परे॥१९॥**

**शब्दार्थ-** जीं-जिस तरह, बुझाइए-समझाया, मूंहके-मुझे, डे-दीजिए, तूं-आप ही, मेहेर-दया, करे-करके, घुरां-माँगूं, तो कंने-आपके पास, त को-तो कौन, आए-है, बेओ-दूसरा, परे-आगे।

**अर्थ-** आपने जिस प्रकार मुझे समझाया है, उसी के अनुसार आप मेहर करके मुझे दीजिए। यदि मैं आपसे ही इस प्रकार प्रेम, आनन्द, और सम्बन्ध की पहचान का सुख न माँगूँ, तो आपके अतिरिक्त और कौन है जिससे मैं माँगने जाऊँ?

ए तो सिखाई मूं सिखई, को न घुरां धणी गरे।

मूं थेयूं हजारूं हुजतूं, जडे तो डिनो संग करे॥२०॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, सिखाई-सिखाया, मूं-मैंने, सिखई-सीखी, को-क्यों, धणी-प्रियतम के, गरे-पास, मूं-मुझ से, थेयूं-हुई, हजारूं-हजारों, हुजतूं-दावा, जडे-जब, तो-आपने, डिनो-दिया (इलम), संग-सम्बन्ध, करे-करके।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आपके सिखाने पर ही यह बात

मैंने सीखी है कि मैं अपने प्रियतम से क्यों नहीं माँगूँ। जब आपने परमधाम के मूल सम्बन्ध से तारतम ज्ञान का प्रकाश दिया, तो अब आपसे माँगने के लिये मेरे पास हजारों दावे हैं।

**भावार्थ**— प्रकरण ३ चौपाई २७ में कहा गया है कि धनी से दीदार एवं वार्ता का सुख माँगने में दोष लगता है। इसी प्रकार ११/१७ में कहा है कि इस्क मंगा गुणा, किन्तु यहाँ पर अँगना होने के दावे से हजारों इच्छाओं को पूर्ण करने की बात कही गयी है।

ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही यह जिज्ञासा उठती है कि क्या सिन्धी वाणी के कथनों में विरोधाभास है, जहाँ कहीं पर माँगने में दोष दिखाया जाता है तो कहीं माँगने को न्यायोचित ठहराया जाता है?

इसका समाधान इस प्रकार है—

अक्षरातीत की वाणी में विरोधाभास जैसे शब्द की कल्पना भी नहीं की जा सकती, आवश्यकता है उचित समायोजन की। ज्ञान, प्रेम, और अनन्य प्रेम (मारिफत) की अवस्थायें अलग-अलग होती हैं। यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो श्री कृष्ण जी द्वारा राधा के रूठ जाने पर पैर पकड़कर मनाना और गोपियों के कहने पर मक्खन पाने के लिये नाचने लगना उचित नहीं है, किन्तु यह प्रेम की लीला का अनिवार्य अंग है जिसमें सत्ता, गरिमा, या मर्यादा का बन्धन नहीं होता।

ऋत् (मारिफत) अवस्था के विशुद्ध प्रेम (अनन्यता) में स्थिति और ही हो जाती है। जब उसमें दो का अस्तित्व ही नहीं होता तो निस्बत, वहदत, और खिल्वत का भी बन्धन समाप्त हो जाता है। उसमें यही भाव प्रबल हो जाता है कि जब हम दो हैं ही नहीं, तो मैं किससे माँगूँ

और किसके लिये माँगूँ। क्या प्रियतम से मेरा कोई अलग अस्तित्व है। किन्तु हकीकत (सत्य) के प्रेम की लीला में या आत्म-जाग्रति के लिये धनी से माँगना अनिवार्य है।

प्रेममयी चेतन तत्व का इच्छा से रहित होना असम्भव है। ज्ञान की परिपक्वता में यदि कोई लौकिक सुख की इच्छा नहीं करता है, तो ऐसा कौन मन्द भाग्य (बदनसीब) होगा जो प्रियतम का प्रेम, दर्शन, एवं उनसे मधुर वार्ता की इच्छा न करे? "ना चाहों मैं बुजरकी, ना चाहों खिताब खुदाए। इस्क दीजो मोहे अपनो, मोहे याही सो मुदाए।" (किरंतन ६२/३) का कथन इसी सन्दर्भ में है। किन्तु परम प्रेम (मारिफत) की अवस्था में इश्क माँगने में दोष लग जाता है। ज्ञान दृष्टि से अँगना भाव जाग्रत होने पर विरह की अवस्था में यदि धनी का प्रेम और दर्शन न माँगा जाये, तो आत्म-जाग्रति सम्भव ही

नहीं है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अलग-अलग अवस्थाओं में अलग-अलग बातें कही गयी हैं, जो अक्षरशः सत्य हैं। अपनी-अपनी आध्यात्मिक अवस्था के अनुसार वास्तविक सत्य को ग्रहण करने का प्रयास करना चाहिए। इसी में आत्मिक सुख का रहस्य छिपा हुआ है।

**संगडो डिठम बेसक, मंझ तोहिजे इलम।**

**त चुआं थी हुजतूं, जे चाइए थो खसम॥२१॥**

**शब्दार्थ-** संगडो-सम्बन्ध, डिठम-देखा, बेसक-तेहेकीक कर, मंझ-बीच में, तोहिजे-आपके, इलम-ज्ञान से, त-तो, चुआं थी-कहती हूँ, हुजतूं-दावे की बातें, जे-जो, चाइए थो-कहलाते हो, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** हे धनी! आपकी तारतम वाणी में मेरे और

आपके सम्बन्ध के बारे में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि हम और आप प्रिया-प्रियतम हैं। इसकी मैंने निश्चित रूप से पहचान कर ली है। आप ही मुझसे इस प्रकार के दावे की बातें कहलवा रहे हैं, तो मैं कह रही हूँ।

**हांगे चाह डिए थो दिलके, त दिल करे थो चाह।**

**अपार मिठाइयूं तोहिज्यूं, जे डिंने पाण हथांए॥२२॥**

**शब्दार्थ-** हांगे-अब, चाह-उमेद, डिए थो-देते हो, दिलके-दिल को, त-तो, दिल-दिल, करे थो-करता है, चाह-उमेद, अपार-बेशुमार, मिठाइयूं-मिठास, तोहिज्यूं-आपकी (वाणी में), जे-जो, डिंने-देते हो, पांण-अपने, हथांए-हाथों से।

**अर्थ-** जब आप ही हमारे दिल में चाहना पैदा कराते हैं, तो हमारा दिल चाहना करता है। आपकी तारतम वाणी

में अनन्त मिठास छिपी हुई है, जिसे आप अपने हाथों से देते हैं।

**भावार्थ-** ब्रह्मवाणी में प्रेम, आनन्द, सौन्दर्य, एकत्व, और मूल सम्बन्ध आदि की अनन्त मिठास छिपी हुई है, जिसका वास्तविक रसास्वादन ब्रह्मांगनायें ही कर पाती हैं।

महामत चोए मेहेबूबजी, ही सुणज दिल धरे।

हांणे हेडी डिजंम हिमंत, जीं लगी रहां गरे॥२३॥

**शब्दार्थ-** महामत-महामति, चोए-कहते हैं, मेहेबूबजी-हे धाम धनी, हे-यह, सुणज-सुनो, दिल-दिल में, धरे-धर के, हांणे-अब, हेडी-ऐसी, डिजंम-दो, हिंमत-शक्ति, जीं-जिससे, लगी-लगी, रहां-रहूँ, गरे-कण्ठ से।



**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे मेरे धाम धनी! मेरी इस बात को सुनकर आप अपने दिल में धारण कीजिए। आप मेरे अन्दर प्रेम की ऐसी शक्ति दीजिए कि मैं हमेशा आपके गले से लगी रहूँ।

**प्रकरण ॥४॥ चौपाई ॥१२९॥**

## श्री देवचंदजी मिलाप विछोहा

इस प्रकरण में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से श्री इन्द्रावती (श्री मिहिरराज) जी के मिलन एवं वियोग का वर्णन है। साथ ही शाकुण्डल एवं शाकुमार की जागनी सम्बन्धी बातें भी हैं।

सांगाए थिंदम धाम संगजी, तडे घुरंदिस लाड करे।

दम न छडियां तोहके, लगी रहां गरे॥१॥

**शब्दार्थ**—सांगाए—पहिचान, थिंदम—होगी, धाम—धाम के, संगजी—सम्बन्ध की, तडे—तब, घुरंदिस—माँगूंगी, लाड—प्यार, करे—करके, दम—क्षणभर, न—नहीं, छडियां—छोड़ूंगी, तोहके—आपको, लगी—लगी, रहां—रहूंगी, गरे—गले से।

**अर्थ**— श्री इन्द्रावती (महामति) जी कहती हैं कि हे मेरे

प्राण प्रियतम! मुझे आपसे परमधाम के मूल सम्बन्ध की पहचान हो गयी है, इसलिये मैं बहुत ही प्रेम से आपके दीदार (दर्शन) की चाहना कर रही हूँ। अब तो मेरी एकमात्र यही इच्छा है कि मैं आपको एक पल के लिये भी न छोड़ूँ और हमेशा आपके गले से लगी रहूँ।

**जासीं संग न सांगाए, त रुह केडी सांजाए।**

**हे गाल्युं थियन सभ मथियूं, त की लाड करे घुरांए॥२॥**

**शब्दार्थ**—जासीं—जहाँ तक, संग—सम्बन्ध की, न—नहीं है, सांगाए—पहचान, त—तहाँ तक, रुह—आत्मा की, केडी—क्या, सांजाए—पहचान है, हे—ये, गाल्युं—बातें, थियन—होती हैं, सभ—सम्पूर्ण, मथियूं—ऊपर की, की—कैसे, लाड—प्यार, करे—करके, घुरांए—माँगूं।

**अर्थ**— जब तक धनी से अपने मूल सम्बन्ध की पहचान

नहीं होती है, तब तक अपनी आत्मा के स्वरूप की पहचान कैसे हो सकती है। ज्ञान की ये सारी बातें ऊपरी (बाह्य) होती है। जब तक आत्मा इन्हीं में उलझी रहती है, तब तक वह धनी से किस प्रकार प्रेम की माँग कर सकती है।

**भावार्थ—** जब तक श्री राज जी से अपने अंग-अंगी के सम्बन्ध का पता नहीं चलता, तब तक स्वयं के ब्रह्मसृष्टि होने का बोध ही नहीं हो सकता। श्रद्धा, समर्पण, और विश्वास से रहित होकर केवल शब्दों की झिक-झिक में पड़े रहने से हृदय शुष्क और कठोर बना रहता है। ऐसा हृदय धाम धनी से कभी प्रेम की माँग कर ही नहीं सकता।

हे सभ सांजायूं तो हथ, लाड सांगाए या संग।

कौल फैल या हाल जो, तो हथमें नों अंग॥३॥

**शब्दार्थ**—सभ—सम्पूर्ण, सांजायूं—पहचान, तो—आपके, हथ—हाथ में, सांगाए—पहचान, या संग—या सम्बन्ध, हाल जो—रहना, नों—नौ, अंग—अंग है।

**अर्थ**— हे धाम धनी! इस प्रकार सारी पहचान (सम्बन्ध तथा निज स्वरूप की) कराना आपके ही हाथों में है अर्थात् केवल आप ही कर सकते हैं। अब यह सब आप के ही ऊपर है कि आप हमें प्यार करें, अपनी पहचान दें, या अपने साथ रखें। हमारी कथनी, करनी, तथा रहनी एवं शरीर के नौ अंग (५ ज्ञानेन्द्रिय + ४ अन्तःकरण) भी आपके ही अधीन हैं।

पेरो केयां जा गालडी, सा रूहके पूरी लगी।

हिक तो रे को न कितई, हे तोहिजे इलमें सक भगी॥४॥

**शब्दार्थ**— पेरो—पहले, केयां—की, जा—जो, गालडी—बातें, सा—सो, रूहके—आत्मा को, लगी—चुभ गयी, हिक—एक, तो रे—आपके बिना, को न—कोई नहीं, कितई—कहीं, तोहिजे—आपके, इलमें—ज्ञान से, भगी—मिट गया।

**अर्थ**— आपने परमधाम में (पहले) जो बातें कही थीं, वे इस संसार में मेरी आत्मा को पूर्ण रूप से सत्य लगीं (चुभ गयीं)। आपके तारतम ज्ञान से यह स्पष्ट हो गया कि आपके अतिरिक्त हमारा कहीं भी कोई प्रियतम नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारे सभी संशय समाप्त हो गये।

**भावार्थ**— धाम धनी ने अपनी अँगनाओं को परमधाम में ही बता दिया था कि तुम जिस संसार में जा रही हो, वहाँ

दुःख ही दुःख है। वहाँ जाकर तुम मुझे, निजधाम को, और स्वयं को भी भूल जाओगी। इस खेल में वह कथन चरितार्थ होता हुआ दिख रहा है। इसलिये इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि परमधाम में धाम धनी ने संसार के विषय में जो कुछ कहा था, वह अक्षरशः सत्य है।

तो घर न्यारो दुनी से, थेयम तोसे संग।

आसमान जिमी जे विचमें, मूँके तो धारा सभ रंज॥५॥

**शब्दार्थ-** तो-आपका, घर-निवास, न्यारो-अलग, दुनी से-संसार से, थेयम-हुआ, तोसे-आपसे, जिमी जे-पृथ्वी के, मूँके-मुझको, धारा-बिना, सभ-सब, रंज-दुख।

**अर्थ-** आपकी ब्रह्मवाणी से ही मुझे यह ज्ञात हुआ है

कि आपका धाम इस नश्वर संसार से अलग है। निजधाम में विराजमान आपके स्वरूप से अब मेरा सम्बन्ध भी हो गया है। आपके बिना तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आकाश और धरती के बीच हर जगह दुःख ही दुःख है।

**भावार्थ-** पृथ्वी और आकाश के बीच में ही चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड जैसे असंख्य चौदह लोक भ्रमण कर रहे हैं। जिस स्वर्ग और वैकुण्ठ की प्राप्ति के लिये संसार के प्राणी तरसते हैं, उनमें भी अक्षरातीत के ज्ञान और प्रेम के बिना सब दुःख ही दुःख है।

घणा डींह धारिम कुफरमें, कर कूडे से संग।

कंने सुणी संग तोहिजो, लगी न रूह जे अंग॥६॥

**शब्दार्थ-** घणां-बहुत, डींह-दिन, धारिम-गँवाया, कुफरमें-झूठी दुनिया में, कूडे से-झूठे से, कंने-कानों,



सुणी-सुनकर, लगी-चुभी, रूह जे-आत्मा के, अंग-अंग में।

**अर्थ-** मैंने इस संसार में झूठे (क्षणिक) सुखों में फँसकर बहुत सा समय व्यर्थ में गँवा दिया। यद्यपि मैंने अपने कानों से आपसे अपने अखण्ड सम्बन्ध के बारे में सुना तो अवश्य था, किन्तु वह बात मेरी आत्मा में चुभ नहीं सकी थी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में आत्मा के दिल में न चुभने का प्रसंग यह है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की शरण में श्री मिहिरराज जी १२ वर्ष २ माह १० दिन की आयु में गये थे। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के मुखारबिन्द से उन्होंने श्री राज जी से अपनी आत्मा के मूल सम्बन्ध एवं जागनी लीला के महत्वपूर्ण तथ्यों को सुना , किन्तु अल्पायु होने से उस पर दृढ़तापूर्वक ध्यान नहीं दे सके।

इसी को यहाँ दिन गँवाने के सन्दर्भ में कहा गया है।  
 खिलवत १/२२ में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—  
 मैं हुती बीच लड़कपने, तब कछुए न समझी बात।  
 मोहे सब कही सुध धाम की, भेख बदल आए साख्यात॥

हे दिल आइम तेहेकीक, जे हेकली थियां आंऊं।

त खिल्ले कूडे मूंह से, थिए दम न अघाऊं॥७॥

**शब्दार्थ—** आइम—है, तेहेकीक—निश्चय ही, हेकली—  
 अकेली, थियां—होऊँ, आंऊं—मैं, खिल्ले—हँसेंगे, कूडे—  
 हर्ष कर, मूंह से—मेरे से, थिए—होवें, दम—क्षणमात्र,  
 अघाऊं—दूर।

**अर्थ—** निश्चय ही मेरे दिल में यह बात आती है कि यदि  
 मैं अकेली ही आपके पास आ जाऊँ, तो आप बहुत ही  
 आनन्दपूर्वक मुझसे मिलेंगे, हँसेंगे, और एक पल के लिये

भी मुझसे दूर नहीं होंगे।

**भावार्थ-** सिन्धी ग्रन्थ में श्री महामति जी के द्वारा श्री राज जी के पास "अकेले जाने" का कथन कई बार आया है। इस कथन में गहन रहस्य छिपा हुआ है, जो संक्षेप में इस प्रकार है-

श्री महामति जी के धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान होकर जागनी लीला कर रहे हैं। जागनी कार्य में श्री महामति जी को जगह-जगह की यात्रा करनी पड़ती है, वाणी-चर्चा एवं प्रवचन भी करना पड़ता है, जिसका एकमात्र उद्देश्य है - परमधाम की भटकी हुई आत्माओं को परमधाम की ओर उन्मुख करना। वे यही चाहते हैं कि "सब साथ करूं मैं आपसा, तो मैं जागी परमान। पिउ जगाए एकली, मैं जगाऊं बांधे जुत्थ।" (कलस हिंदुस्तानी २३/४४,४५)। इसी लक्ष्य तक

पहुँचने में वे अपना अनमोल समय व्यय कर रहे हैं। ऐसा करने का आदेश उन्हें धाम धनी से ही मिला है। कलस हिंदुस्तानी ९/३८ में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

तूं देख दिल विचार के, उड़जासी सब असत।

सारों के सुख कारने, तूं जाहेर हुई महामत॥

यदि श्री महामति जी जागनी कार्य छोड़कर परमधाम में विराजमान युगल स्वरूप के ध्यान में लग जाते हैं, तो एक पल के लिये भी उनका दिल धनी से अलग नहीं होगा क्योंकि उनके धाम हृदय में युगल स्वरूप स्वतः ही विराजमान हैं। यद्यपि उनकी आत्मा का दिल पल-पल धनी के दीदार एवं आनन्द में डूबा हुआ है, किन्तु जीव का दिल उस रस से वंचित है क्योंकि वह जागनी कार्य में लग चुका है। तारतम ज्ञान के प्रकाश में अब जीव भी स्वयं को अँगना मानकर ही धनी को रिझा रहा है। ऐसी

स्थिति में जीव तथा आत्मा के बीच ऐक्य स्थापित होने से जीव को भी वही सुख देने की बात आती है। "पौढ़े भेले जागसी भेले" (कलस हिंदुस्तानी २३/२९) के अनुसार तो सभी आत्मायें एक साथ परमधाम जायेंगी। सबको छोड़कर श्री इन्द्रावती जी के लिये अकेले परमधाम जाना असम्भव है। इस प्रकार "अकेले आने" का तात्पर्य अपने धाम हृदय में विराजमान धनी से सुख लेना है, जबकि श्री महामति जी सबको अपने स्तर पर पहुँचाना चाहते हैं।

हे तां पाणे पधरी, जे आंऊं हेकली थियां।

तडे की न अचे तो दिल में, जे आंऊं हिन के सुख डियां॥८॥

शब्दार्थ— तां—तो, पाणे—आप ही, पधरी—प्रत्यक्ष, थियां—होऊँ, तडे—तब, की—क्यों, अचे—आवे, तो—

आपके, हिन के-इनको (इन्द्रावती जी को), डियां-देऊँ।

**अर्थ-** अब मेरे दिल में इस बात का निश्चय हो गया है कि यदि मैं आपके पास अकेली आ जाऊँ , तो आप मुझसे आनन्दपूर्वक हँसी करेंगे और मैं पल भर के लिये भी आपसे अलग नहीं होऊँगी।

थियां हेकली हिन रंजमें, मथे अभ तरे थी भूं।

ईं हाल पसां पांहिजो, त की छडे हेकली मूं॥९॥

**शब्दार्थ-** थियां-होऊँ, रंज-दुःख के, में-बीच में, मथां-ऊपर, अभ-आकाश, तरे-नीचे, थी-है, भूं-पृथ्वी, ईं-इस तरह, हाल-दशा, पसां-देखकर, पांहिजो-अपना, की-क्यों, छडे-छोड़े, मूं-मुझे।

**अर्थ-** मैं इस दुःखमयी संसार में अकेली हूँ। मेरे ऊपर

आकाश है और नीचे धरती है। मेरी ऐसी अवस्था को देखकर भी आपने मुझे अकेली क्यों छोड़ दिया है?

**भावार्थ-** इस मायावी जगत् में दुःख का भोग प्रायः अकेले ही होता है। यद्यपि श्री इन्द्रावती जी के साथ परमधाम की सखियाँ भी हैं, किन्तु यहाँ वहदत (एकत्व) न होने के कारण दुःख देखने के प्रसंग में "अकेली" शब्द का प्रयोग किया गया है।

**धणी मूंहजे अर्सजा, चुआं मूं हेकली जो हाल।**

**जीं आंऊं गडजी विछडिस, सा करियां आंसे गाल॥१०॥**

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, मूंहजे-मेरे, अर्सजा-धाम के, चुआं-कहूँ, मूं-मैं, हेकली जो-अकेली का, हाल-वर्णन, जीं-जैसे, गडजी-मिलकर, बिछडिस-बिछुड़ गयी, सा करियां-सो करती हुई, आंसे-आप से, गाल-

बात।

**अर्थ-** हे मेरे धाम के धनी! मुझ अकेली इन्द्रावती की इस खेल में जो हालत (स्थिति) है, उसका मैं वर्णन करती हूँ। मैं किस (जिस) प्रकार आपसे मिली और पुनः बिछुड़ गयी, उस सम्पूर्ण बात को मैं आपसे बता रही हूँ।

आंऊं हुईस धणी जे कदमों, तडे संग न सांगाए।

चेआंऊं घणी भत्तिएं, पण थीयम न सांजाए॥११॥

**शब्दार्थ-** हुईस-हुई थी, धणी जे-प्रीतम के, संग-सम्बन्ध की, सांगाए-पहचान, चेआंऊं-कहा, घणी-बहुत, भत्तिएं-तरह से, पण-परन्तु, थिएम-हुई।

**अर्थ-** मेरे प्राणप्रियतम! जब मैं आपके चरणों में सर्वप्रथम पहुँची, तो उस समय आपके प्रति अपने मूल सम्बन्ध की मुझे कोई पहचान नहीं थी। आपने मुझे



तरह-तरह से समझाया, किन्तु मुझे पहचान नहीं हो सकी।

**भावार्थ-** यह उस समय का प्रसंग है, जब श्री मिहिरराज जी सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के चरणों में गये थे। हब्शा से पहले श्री मिहिरराज जी को सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के अन्दर विराजमान युगल स्वरूप की वास्तविक पहचान नहीं थी, भले ही उन्होंने बाल बाई जी के सामने उन्हें धाम धनी मान लिया हो। श्रीमुखवाणी के किरंतन ७५/१ में यह कथन इस प्रकार है-

मेरे धनी धाम के दुल्हा, मैं कर ना सकी पेहेचान।

सो मैं रोऊ याद कर कर, जो मारे हेत के बान॥

तडे धणिएं मूँके चयो, जे ब जण्युं आईन।

खिल्ले थ्युं न्हारे रांद अडां, तांजे सांगाईन॥१२॥

**शब्दार्थ-** धणिएं-धनी जी ने, मूँके-मुझको, चयो-कहा, ब जण्यूं-दो जनी, आईन-हैं, खिल्ले थ्यूं-हँसती हैं, न्हारे-देखकर, रांद-खेल को, अडां-तरफ, तांजे-कदाचित, सांगाईन-पहचान।

**अर्थ-** उस समय धाम धनी (श्री निजानन्द स्वामी) ने मुझसे कहा कि इस खेल में परमधाम की दो प्रमुख सखियाँ आयी हैं। वे इस खेल को देखकर हँस रही हैं। उन्हें किसी भी तरह से जगाना है।

**भावार्थ-** परमधाम की ये दो सखियाँ शाकुण्डल और शाकुमार हैं, जिन्हें लीला रूप में प्रमुख (सरदार) कहा गया है। परमधाम की एकदिली (वहदत) में सामान्य और प्रमुख जैसे शब्दों का अस्तित्व मूलतः नहीं है।

रुहअल्लाएं ई चयो, पाण न्हारे कढ्यूं तिन।

पाण से न्हारे न कढ्यूं, आंऊं हुइस गाल में इन॥१३॥

**शब्दार्थ-** रुहअल्लाएं-श्यामा जी ने, ई-ऐसा, चयो-कहा, पाण-आप, न्हारे-देख के, कढ्यूं-निकालो, तिन-तिनको, पाण से-स्वयं, हुइस-हुई, गाल में-बात में, इन-इनों की।

**अर्थ-** श्री श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) ने मुझसे कहा कि तुम्हें इन्हें खोजकर निकालना है। मैं सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की इस बात को सोचती रही कि उन्होंने स्वयं ही उन्हें क्यों नहीं खोजकर जगाया (निकाला)।

पाण बखत हल्लण जे, याद केयांऊं मूँके।

चेयांऊं ई जेडिन के, जे कोठे अचो हिनके॥१४॥

**शब्दार्थ-** बखत-समय, हल्लण-चलने के, केयांऊं-

किया, मूँके-मुझको, चेयांऊं-कहा, ई-ऐसे, जेडिन के-सखियों को, कोठे-बुलाकर, अचो-आओ, हिनके-इन दोनों को।

**अर्थ-** धामगमन के समय आपने (श्री निजानन्द स्वामी ने) मुझे याद किया। सखियों (बालबाई तथा बिहारी जी) को बुलाकर उन्होंने ऐसा कहा कि तुम दोनों मिहिरराज जी को बुलाकर ले आओ।

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के समय श्री मिहिरराज जी धरोल में दीवान थे। श्री निजानन्द स्वामी ने उन्हें बुलाने के लिये बिहारी जी को दरबार भेजा, किन्तु बिहारी जी ने वास्तविक बात न बताकर दवाइयाँ ही माँगी। अन्ततः बालबाई जी को भेजा। बालबाई के दूसरी बार जाने पर वास्तविक रहस्य खुला कि सद्गुरु महाराज उन्हें बार-बार याद कर रहे हैं।

श्री मिहिराज जी अगले ही दिन (श्री कृष्ण जन्माष्टमी को) सद्गुरु महाराज की सेवा में जामनगर उपस्थित हो गये।

**अची आंऊं पेरे लगी, तडे मूँके चेयांऊं ई।**

**रूह तोहिजी रोए थी, आंऊं पेया अर्समें की॥१५॥**

**शब्दार्थ-** अची-आकर, पेरे-चरणों में, तडे-तब, मूँके-मुझसे, चेयांऊं-कहा, तोहिजी-आपकी, रोए थी-रो रही है, पेया-जाऊँ, की-कैसे।

**अर्थ-** मैंने आकर उनके चरणों में प्रणाम किया। तब उन्होंने मुझसे इस प्रकार कहा कि तुम्हारी आत्मा धाम के दरवाजे पर खड़ी होकर रो रही है, ऐसी स्थिति में मैं कैसे धाम जा सकता हूँ।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी का दिल ही वह धाम है,

जिसमें युगल स्वरूप को विराजमान होना है। वि.सं. १७०३-१७१२ तक ९ वर्षों का वियोग रहा है। ऐसी अवस्था में श्री मिहिरराज जी के व्यथित हृदय में युगल स्वरूप कैसे विराजमान हो सकते हैं। इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी के रोने और सद्गुरु महाराज जी के धाम न जाने (धाम हृदय में विराजमान न होने) का यही आशय है।

दर माधा अर्स जे, आंऊं रेंदी पसां हित।

ते मूं तोके कोठई, आंऊं हल्ली न सगां तित॥१६॥

**शब्दार्थ-** दर-दरवाजे के, माधा-आगे, अर्स जे-धाम के, आंऊं-मैं, रेंदी-रोती, पसां-देखकर, हित-यहाँ, ते-इसलिये, मूं-मैंने, तोके-तुम्हें, कोठई-बुलाया है, हल्ली-चली, सगां-सकती हूँ, तित-वहाँ।

**अर्थ-** धाम-दरवाजे के आगे मैंने तुम्हें रोते हुए देखा है। मैंने तुम्हें इसलिये बुलाया है, क्योंकि तुम्हारे आए बिना मैं धाम नहीं जा सकता था।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि यदि श्री इन्द्रावती जी का दिल (हृदय) ही धाम है जिसमें युगल स्वरूप को विराजामन होना है, तो धाम दरवाजा क्या है जिसके आगे श्री इन्द्रावती जी के रोने की बात कही गयी है?

इसका समाधान यह है कि आत्मा सुख-दुःख तथा मान-अपमान के बन्धन में नहीं आती। बालबाई जी की चुगली और दबाव के कारण, सद्गुरु महाराज द्वारा प्रणाम स्वीकार न किये जाने पर श्री मिहिरराज जी के जीव का हृदय (दिल, अन्तःकरण) ही व्यथित हुआ। श्री इन्द्रावती जी की आत्मा का दिल तो इस व्यथा की पीड़ा

को द्रष्टा होकर देख रहा है। इस प्रकार श्री मिहिरराज जी के जीव का दिल ही वह द्वार है, जिसके (माध्यम से) आगे श्री इन्द्रावती जी के रोने की बात कही गयी है। अपने सद्गुरु स्वरूप धाम धनी के विरह में श्री इन्द्रावती जी के जीव का दिल जिस पीड़ा का अनुभव कर रहा है, आत्मा भी द्रष्टा होकर इस लीला को देख रही है। जीव और आत्मा की अँगना रूप में एक्य भावना होने के कारण जीव के रोने की प्रक्रिया को आत्मा के साथ जोड़ कर वर्णित किया गया है।

इसे दूसरे रूप में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने शाकुण्डल तथा शाकुमार की परात्म को हँसते हुए वर्णित किया है, क्योंकि इनकी सुरता राजघराने में उतरी थी और अभी तक दुःख की लीला को नहीं देख सकी थी। बीतक में यह प्रसंग इस



प्रकार वर्णित है—

साकुण्डल साकुमार ढूँढन की, एकान्त होए सुनाई बात।  
मूल सरूप उनके हंसत है, ओ खेल में है अपनी जात॥

बीतक साहिब १३/५१

इसे इस दृष्टान्त द्वारा समझा जा सकता है कि जिस प्रकार किसी बिच्छू के डंक मारने पर पीड़ा से तड़पने वाले व्यक्ति को देखकर उसका निकटवर्ती व्यक्ति भी द्रवित हो जाता है, उसी प्रकार जीव की सुख-दुःख से भरी लीला को देखकर आत्मा और परात्म भी कुछ द्रवित सी हो जाती है। इसे ही संसार की भाषा में हँसना या रोना कहा गया है। वस्तुतः अपने शुद्ध स्वरूप में जीव भी कूटस्थ द्रष्टा ही है। वह तो अपने अन्तःकरण के माध्यम से सुख-दुःख एवं मान-अपमान को द्रष्टा होकर देखा करता है।

इस प्रकार श्री मिहिरराज जी के जीव के साथ घटित होने वाली विरह, अपमान, एवं मिथ्यारोपों की पीड़ा से आत्मा तथा परात्म के दिल का द्रवित होना स्वाभाविक है। जब परात्म का दिल इस लीला से द्रवित हो रहा है, तो उसकी सुरता रूप आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप विराजमान होकर कैसे लीला कर सकते हैं। धाम के दरवाजे पर रोने का भी यही भाव है।

"दरवाजे" का तात्पर्य यहाँ लौकिक द्वार या रंगमहल के द्वार से नहीं है, बल्कि वह वस्तु (जीव का दिल) जिसके माध्यम से परात्म का दिल दुःख-सुख का अनुभव कर सके द्वार कहलाता है। श्रीमुखवाणी एवं बीतक में इसे इन शब्दों में दर्शाया गया है—

मोहे चलते बखत बुलाए के, जाहेर करी रोसन।

धाम दरवाजे इंद्रावती, ठाड़ी करे रुदन॥

किरंतन ९६/११

मैं बैठ न सकों धाम में, तहां इनको रोवती देख।

तिस वास्ते मैं तुमको, बुलाया कर वैसेख॥

बीतक साहिब १६/८

मूँके चेयांऊं पधरो, सा सुई गाल सभन।

पर केर परुडे इसारतूं, संदयूं हिन दोसन॥१७॥

**शब्दार्थ-** चेयांऊं-कहा, पधरो-प्रत्यक्ष, सा-सो, सुई-सुनी, सभन-सब ने, पर-परन्तु, केर-कौन, परुडे-समझे, इसारतूं-गुप्त कथन, संदयूं-को, हिन-इन, दोसन-मित्रों की।

**अर्थ-** मुझसे यह बात उन्होंने स्पष्ट रूप से कही, जिसे सभी ने सुना, किन्तु इन दो दोस्तों (सुन्दरबाई, इन्द्रावती) के इस गुप्त कथन को भला कोई दूसरा कैसे

समझ सकता था।

**द्रष्टव्य-** दोस्त (मित्र) शब्द पुल्लिङ्ग है। यहाँ इसका भाव सखियों से लिया जा सकता है, क्योंकि सुन्दरबाई और इन्द्रावती शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

करे मेडो चेयांऊं मीठी भत्ते, पण आंऊं निद्र मंझ।

पण मूं की न परूड्यो, सर छडे उड्या हंज॥१८॥

**शब्दार्थ-** करे-करके, मेडो-मिलाप, भत्ते-तरह से, पण-परन्तु, निद्र-नींद, मंझ-बीच में, मूं-मैंने, की-कुछ, परूड्यो-समझा, सर-भवसागर, छडे-छोड़कर, उड्या-उड़ा, हंज-हँस (श्री देवचन्द्र जी)।

**अर्थ-** मुझसे मिलकर उन्होंने परमधाम की बहुत ही मीठी-मीठी बातें की, परन्तु मैं माया की नींद में थी, इसलिये कुछ भी समझ नहीं पायी और संसार रूपी

सरोवर को छोड़कर हँस रूप सद्गुरु ओझल (अन्तर्धान) हो गये।

**ई थीयस आंऊं हेकली, भोंणा डोरींदी बेई।**

**धणिएं जा मूँके चई, तांजे न्हारे कढां सेई॥१९॥**

**शब्दार्थ-** ई-ऐसे, थियस-हुई, हेकली-अकेली, भोंणा-फिरती हूँ, डोरींदी-ढूँढती, बेई-दोनों को, धणिएं-धनी ने, चई-कहा, तांजे-कदाचित्, न्हारे-देख के, कढां-निकालूँ, सेई-सोई।

**अर्थ-** इस तरह से मैं अकेली हो गयी और उन दोनों को ढूँढती फिरी। धाम धनी ने मुझे उनके (शाकुण्डल, शाकुमार) बारे में कहा था, इसलिये मैंने सोचा कि सम्भवतः मैं उन्हें खोज निकालूँ।

डोरींदे जे लधिम, अरवा कई हजार।

किन जाण्यो घर नूरजो, के नूर घर पार॥२०॥

**शब्दार्थ-** डोरींदे-ढूँढने से, लधिम-मिली, अरवा-आत्माएँ, किन-कितनों ने, जाण्यो-जाना, नूरजो-अक्षरधाम को, के-कितनों ने, पार- परे परमधाम।

**अर्थ-** खोजने पर हजारों आत्मायें मिलीं। इनमें से कुछ ने अक्षरधाम को, तो कुछ ने परमधाम को अपना घर माना, अर्थात् कुछ ईश्वरी सृष्टि थीं तो कुछ ब्रह्मसृष्टि थीं।

हिनी में जे बे चयूं, सुन्दरबाई सिरदार।

से पण थेयूं निद्र में, तिनी सुध न सार॥२१॥

**शब्दार्थ-** हिनी में-इनमें, बे-दो, चयूं-कहों, थेयूं-हैं, निद्र में-निद्रावस्था में, तिनी-तिनको, सुध-होश, सार-खबर।

**अर्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने इनमें से जिन दो सखियों (शाकुण्डल और शाकुमार) को प्रमुख (सरदार) बताया था, वे इस माया के खेल में इतनी मग्न हो गयीं कि उन्हें घर की जरा भी सुध नहीं रही।

**तिनी बी में हिकडी, अची गडई मूं।**

**जे हाल आए इन जो, से जाणे थो सभ तूं।२२॥**

**शब्दार्थ-** तिनी-उन, बी में-दो में, हिकडी-एक, अची-आ, गडई-मिली, मूं-मुझको, आए-हैं, इन जो-इनकी, जाणे थो-जानते हैं, सभ-सब ही।

**अर्थ-** उन दोनों में से एक शाकुण्डल (महाराजा छत्रसाल जी) आकर मुझे मिली। उसकी जो दशा (हालत) है, उसे आप अच्छी तरह से जानते ही हैं।

आंऊं बेठिस हिनजे घर में, मूँके रख्याई भली भत।

केयांई सभे बंदगी, जांणी तोहिजी निसबत॥२३॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, बेठिस-बैठी, हिनजे-इनके, रख्याई-रखा, भली-अच्छी, भत-तरह से, केयांई-की, जांणी-जानकर।

**अर्थ-** मैं शाकुण्डल (छत्रसाल जी) के ही घर में विराजमान हूँ। यहाँ पर मुझे आपका ही स्वरूप मानकर सभी लोग मेरी सेवा-भक्ति कर रहे हैं।

हिक हिनजे दिल में, द्रढाव वडो डिठम।

हांणे माधा हथ तोहिजे, पण हितरो पेरो केयो पिरम॥२४॥

**शब्दार्थ-** हिक-एक, हिनजे-इनके, द्रढाव-निश्चय, वडो-बड़ा, डिठम-देखा, हांणे-अब, माधा-आगे, तोहिजे-आपका, हितरो-इतना, पेरो-पहले, केयो-



किया, पिरम-प्रियतम।

**अर्थ-** हे प्रियतम! छत्रसाल जी के हृदय में मैंने जागनी के लिये बहुत दृढ़ निश्चय देखा। अब आगे आपके हाथ में है। इतना तो पहले मैंने कर दिया।

चेयम हाल हिनजो, जा हिक मूं गडई।

मूं बेओ जमारो डोरींदे, हुन बी पण खबर सुई॥२५॥

**शब्दार्थ-** चेयम-कहती हूँ, हाल-चरित्र, हिनजो-इनको, हिक-एक, मूं-मुझे, गडई-मिली है, बेयो-गई, जमारो-उम्र, डोरींदे-ढूँढते, हुन-उन, बी-दूसरी, पण-भी, खबर-सन्देश, सुई-सुनी।

**अर्थ-** यह जो शाकुण्डल सखी मिली है, मैंने उसका हाल आपसे कह सुनाया है। दोनों को ढूँढते-ढूँढते मेरी उम्र बीत गयी। इसकी खबर दूसरी सखी शाकुमार बाई

(औरंगजेब) ने भी सुनी।

हे बए जण्यूं मिडी करे, मूँके थ्यूं न्हारीन।

हुन असिधें ई न विचारियो, हो मूं लाए दुख घारीन॥२६॥

**शब्दार्थ-** हे-ये, बए-दो, जण्यूं-जनी, मिडी-मिल, करे-करके, थ्यूं-हैं, न्हारीन-ढूँढती, हुन-उन, असिधें-बेखबरी में, ई-ऐसा, विचारियो-विचार किया, हो-वे, मूं लाए-मेरे लिए, दुख-तकलीफ, घारीन-उठा रही हैं।

**अर्थ-** शाकुमार बाई (औरंगजेब) ने सुना कि परमधाम की दो सखियाँ (श्री इन्द्रावती जी एवं शाकुण्डल) मुझे खोज रही हैं। माया में बेसुध होने के कारण उसने यह भी विचार नहीं किया कि मुझे खोजने में वे दोनों कष्ट उठा रही हैं।

**द्रष्टव्य-** श्री इन्द्रावती, श्री महामति, और श्री प्राणनाथ जी को एक ही धरातल पर नहीं देखना चाहिए। परमधाम की आत्मा है श्री इन्द्रावती जी, जबकि उनकी शोभा का नाम है "महामति"। "ए पांचों मिल भई महामत" (प्रगटवाणी- प्रकास हिंदुस्तानी ३७/१०१) से यह स्पष्ट होता है।

इसी प्रकार श्री इन्द्रावती जी या श्री महामति जी के प्रियतम हैं "अक्षरातीत श्री प्राणनाथ (श्री राज जी)।" श्रीमुखवाणी में इस तथ्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

महामति खेलें अपने लाल सों, जो अछरातीत कह्यो।

किरंतन १६/१२

महामति कहे सुनो साथ, देखो खोल बानी प्राणनाथ।

किरंतन ७६/२५

दोए सुपन ए तीसरा, देखाया प्राणनाथ।

किरंतन ९४/९

साथ हुतो जे प्रीसणे, सखियो ने प्रीसे प्राणनाथ।

रास ४६/१९

हो हल्लण के उतावरयूं, अर्स उपटे दर।

हे की रेहेंदयूं रंज में, हुन बिसरी न्हाए खबर॥२७॥

**शब्दार्थ-** हो-वह, हल्लण के-चलने के, उतावरयूं-उतावली है, उपटे-खोलकर, दर-द्वार, हे-यह, की-कैसे, रेहेंदयूं-रहेगी, रंज में-दुख में, हुन-उनको, बिसरी-भूल जाने से, न्हाए-नहीं, खबर-सुध।

**अर्थ-** शाकुण्डल सखी (महाराजा छत्रसाल जी) परमधाम का द्वार खोलकर घर चलने के लिये उतावली है। वह इस दुःखमयी संसार सागर में कैसे रहे? दूसरी

शाकुमार सखी (औरंगजेब) है, जो माया में परमधाम को भूली बैठी है। उसे अपने स्वरूप की जरा भी सुध नहीं है।

ते लाएं पिरम आंऊं हेकली, मूं बी न गडजी कांए।

जे तोजो दर उपटे, मूज्यू आसडियूं पुजाए॥२८॥

**शब्दार्थ-** ते-इस, लाएं-लिये, पिरम-प्रियतम, आंऊं-मैं, बी-दूसरी, गडजी-मिली, कांए-कहीं, तोजो-आपका, दर-दरवाजा, उपटे-खोलकर, मूज्यूं-मेरी, आसडियूं-चाहना, पुजाए-पूर्ण करें।

**अर्थ-** इसलिये हे प्रियतम! मैं अकेली हूँ। मुझे दूसरी सखी (शाकुमार) नहीं मिली, जो आपके धाम का दरवाजा खोलकर मेरी इच्छा पूर्ण करे।

पिरम हांणे पांण विचमें, तूहीं आइए तूं।

से तूं जांणे सभ की, हे तो सुध डिंनी मूं॥२९॥

**शब्दार्थ-** पिरम-प्रियतम, हांणे-अब, पांण-अपने, तूहीं-आप ही, आइए-हैं, तूं-आप, से तूं-सो आप, जांणे-जानते हैं, सभ की-सब कुछ, हे-यह, तो-आपने, सुध-खबर, डिंनी-दिया, मूं-मुझे।

**अर्थ-** हे प्राणप्रियतम! हमारे और आपके बीच में केवल आप ही हैं। यह सारी सुध आपने ही मुझे दी है। इस प्रकार, आप सबकी सभी बातों को जानते हैं।

धणी तूं पसे थो पांणई, अने कुछाइए थो पांण।

जा करे गाल रे इस्क, सा दानाई सभ अजांण॥३०॥

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, पसे थो-देखते हैं, पांणई-आप ही, अने-और, कुछाइए थो-बुलाते हैं, करे-करता

है, रे-बिना, सा-सो, दानाई-चतुराई, अजाण-नासमझ है।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आप स्वयं सब कुछ देखते हैं और मुझसे कहलाते हैं। जो अँगना प्रेम से रहित होकर बातें करे, वह उसकी अज्ञानता की चतुराई है।

**भावार्थ-** अज्ञानता की चतुराई का तात्पर्य है, ज्ञान से रहित होने पर भी यह दर्शाना कि वह बहुत ज्ञानी है।

दम में चुआं आंऊं हेकली, दम में गडजिम बेई।

दम में मेडो रूहन जो, न्हारियां थी त्रेई॥३१॥

**शब्दार्थ-** दम में-क्षण में, चुआं-कहती हूँ आंऊं-मैं, हेकली-अकेली, गडजिम-मिली, बेई-दूसरी, मेडो-मिलाप, रूहन जो-सखियों का, न्हारियां-ढूँढती, थी-हूँ, त्रेई-तीसरी।

**अर्थ-** हे प्रियतम! एक क्षण में तो मैं कहती हूँ कि मैं अकेली हूँ। उसी क्षण कहती हूँ कि मुझे शाकुण्डल और शाकुमार दोनों ही मिल गयीं। अगले पल में यह भी कहती हूँ कि मैं अन्य (तीसरी) सखियों का मेला (समूह) ढूँढती हूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में "अकेली" शब्द स्वयं के लिये, "दो" शाकुण्डल तथा शाकुमार के लिये, और "तीसरी" का भाव परमधाम की अन्य आत्माओं के लिये किया गया है।

दम में आंऊं बाझाइंदी, दम में हित नाहियां।

दम में भाइयां मूर थी, तोके थीराइयां॥३२॥

**शब्दार्थ-** दम में-क्षण में, आंऊं-मैं, बाझाइंदी-कलपती हूँ, हित नाहियां-यहाँ नहीं हूँ, भाइयां-जानो,



मूर थी-मूल से, तोके-आपको, थीराइयां-ठहराती हूँ।

**अर्थ-** मैं एक क्षण में तो बिलखने लगती हूँ। अगले ही पल यह सोचने लगती हूँ कि मैं तो इस संसार में हूँ ही नहीं। पल भर में सबके मूल में आपको ही ठहराती हूँ, अर्थात् मूल से सब कुछ आप ही करने वाले हैं।

**फिरी पसां जा पाण अडां, त करियां कांध से दानाई।**

**तडे अची लिकां थी तो तरे, चुआंए डिनी धणीजी आई॥३३॥**

**शब्दार्थ-** फिरी-फेर, पसां-देखूँ, जा-जो, पाण-अपनी, अडां-तरफ, त-तो, करियां-करतीं, कांध से-प्रियतम से, दानाई-चतुराई, तडे-तब, अची-आ, लिकां थी-छिपती हूँ, तो-आपके, तरे-नीचे, चुआंए-कहती है, डिनी-दी, धणीजी-प्रियतम की, आई-है।

**अर्थ-** पुनः जब मैं अपनी ओर देखती हूँ, तो मुझे

लगता है कि मैं अपने प्रियतम से चतुराई कर रही हूँ। तब मैं लज्जा से छिप जाती हूँ। पुनः आपकी छत्रछाया में मैं यह कहती हूँ कि यह चतुराई भी आपकी ही दी हुई है।

**भावार्थ-** इस प्रकरण की चौपाई ३१, ३२, और ३३ में भावुकता भरे प्रेम की मनोहर दशा का चित्रण किया गया है। कभी स्वयं को अकेले मानना, तो कभी सखियों के साथ, और कभी बिलखना तथा अपनी चतुराई को भी निश्छल भाव से वर्णित करना, भावुक हृदय से ही सम्भव है। इसी प्रकार का हृदय ही समर्पण के मार्ग पर चल सकता है। ३३वीं चौपाई में इसी समर्पण भावना को शब्दों में पिरोया गया है और सुन्दरसाथ को सिखापन दी गयी है।

धणी मूंजी गालिनजी, से सभ तो के आए जाण।

अव्वल विच आखिर लग, तो डिनो अचे पांण॥३४॥

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, मूंजी-मेरी, गालिनजी-बातों की, से-सो, सभ-सब, तो के-आपको, आए-है, जाण-खबर, अव्वल-पहले, विच-बीच में, आखिर-अन्त, लग-तक, तो-आपका, डिनो-दिया, अचे-आता है, पांण-आप।

**अर्थ-** हे मेरे धाम धनी! आपको मेरी सभी बातों की पूर्ण रूप से खबर है। शुरु (परमधाम), मध्य (व्रज-रास), एवम् आखिर (जागनी) की सभी बातों की जो मुझे जानकारी है, वह आपके ही देने से मुझे प्राप्त हुई है।

हे तो डिन्यू पांणई, गाल्यूं मूँके करण।

पण जासीं डिए न इस्क, दर खुले न रे वरण॥३५॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, तो-आपके, डिन्यू-दिया, पांणई-आप ही, गाल्यूं-बातें, मूंके-मेरे का, करण-करने, पण-परन्तु, जासीं-जहाँ तक, डिए-देते, न-नहीं, इस्क-प्रेम, दर-दरवाजा, खुले-खुलता, न-नहीं, रे-बिना, वरण-प्रियतम के।

**अर्थ-** हे प्रियतम्! यह सम्पूर्ण ज्ञान आपका ही दिया हुआ है, ताकि आप मुझसे बातें कर सकें। किन्तु जब तक आप मुझे इश्क नहीं देंगे, तब तक परमधाम का दरवाजा नहीं खुल सकता है।

**भावार्थ-** श्री महामति जी को इश्क प्राप्त ही है, तभी तो हब्शा में उन्होंने अपने प्राण प्रियतम को पा लिया। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को परोक्ष रूप में यह शिक्षा दी गयी है कि केवल शब्द ज्ञान को ही अन्तिम उपलब्धि नहीं समझें, बल्कि प्रेम मार्ग का अवलम्बन करें, तभी युगल

स्वरूप एवं परमधाम का दर्शन हो सकेगा।

**ई हाल डिने धणी मूंहके, जीं गभुराणी मत।**

**जां तो इस्क न आइयो, तां कुछां थी सो भत॥३६॥**

**शब्दार्थ-** ई-यह, हाल-दशा, डिने-दिया, धणी-प्रियतम ने, मूंहके-मुझ को, जीं-जैसी, गभुराणी-बालक की, मत-बुद्धि, जां-जहाँ तक, तो-आपका, इस्क-प्रेम, न-नहीं, आइयो-आया, तां-वहाँ तक, कुछां थी-बोलती हूँ, सो भत-सौ तरह से (इसी तरह से)।

**अर्थ-** हे धनी! आपने मेरी बुद्धि की स्थिति ऐसी कर दी है, जैसी एक बालक की बुद्धि होती है। जब तक आपका इश्क (प्रेम) मेरे अन्दर नहीं आ जाता, तब तक मैं इसी प्रकार की सैकड़ों बातें करती रहूँगी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में परोक्ष कथन द्वारा सुन्दरसाथ

को यह शिक्षा दी गयी है कि प्रेम के अभाव में केवल शुष्क ज्ञान से हृदय भी शुष्क हो जाता है और शब्दों की झिक-झिक में अध्यात्म के चरम लक्ष्य से भटक जाता है। इसलिये अपने हृदय में प्रेम का रस प्रवाहित करने के लिये प्रियतम से चाहना करनी चाहिए, जिससे हम बातों के जाल से ऊपर उठें और परम लक्ष्य को प्राप्त करें।

**मांठ करे पण न सगां, बंधां जा बोले।**

**सभ जाणे थो रुहजी, चुआं कुजाडो दिल खोले॥३७॥**

**शब्दार्थ-** मांठ-चुप, करे-कर, पण-भी, न-नहीं, सगां-सकती हूँ, बंधां जा-बँधाती हूँ, बोले-बोलने से, सभ-सब, जाणे थो-जानते हो, रुहजी-आत्मा की, चुआं-कहूँ, कुजाडो-क्या, दिल-दिल, खोले-खोलकर।

**अर्थ-** मैं चुप भी नहीं रह सकती , क्योंकि आपकी प्रेरणा से मैं बोलने से बँधी हुई हूँ। आप मेरे दिल की सारी बातें जानते हैं। इसके बाद भी मैं दिल खोलकर और क्या बताऊँ।

**बेओ को न पसां कितई, सभ अंग तांणीन तो अडूं।**

**जे हाल पुजाइए पुंनिस, हांणे को न करिए हेकली मूं॥३८॥**

**शब्दार्थ-** बेओ-दूसरा, को-कोई, न-नहीं, पसां-देखती, कितई-कहीं भी , सभ-सब, अंग-अंग, तांणीन-खींचते हैं, तो-आपको, अडूं-तरफ, जे-जो, हाल-दशा में, पुजाइए-पहुँचाए वह, पुंनिस-पहुँची, हांणे-अब, को-क्यों, न-नहीं, करिए-करते हो, हेकली-अकेली, मूं-मुझको।

**अर्थ-** मैंने आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं

देखा है। मेरे सभी अंग आपकी ही ओर खिंचे रहते हैं। आपने मुझे जिस स्थिति में पहुँचा दिया है, उस स्थिति में आप मुझे अकेली क्यों नहीं कर देते।

**भावार्थ-** प्रेम की गहन अवस्था में आशिक (आत्मा) के गुण, अंग, इन्द्रियों, तथा शरीर के रोम-रोम में अपने माशूक (श्री राज जी) के प्रति आकर्षण होता है।

रोम रोम बीच रमि रह्या, पिऊ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग॥

किरन्तन ९१/१७

का कथन यही स्पष्ट करता है। इस चौपाई में खिंचे रहने का यही भाव है। श्री राज जी ने महामति जी से कहा भी है कि यदि तुम अकेली आती हो, तो मैं तुम्हें दर्शन भी दूँगा और बातें भी करूँगा। उनके इस कथन पर श्री इन्द्रावती जी का यही कहना है कि आपने मेरे तन से इन



सुन्दरसाथ की जागनी कराकर इन्हें आत्मिक सुख देने का उत्तरदायित्व भी मुझे दे रखा है। मैं इन्हें कैसे छोड़ सकती हूँ। एकमात्र आपमें ही सामर्थ्य है कि आप मुझे सभी प्रकार के उत्तरदायित्व से मुक्त करके एकमात्र अपने में लगा सकते हैं (अकेली कर सकते हैं)।

**जे तूं करिए हेकली, भाइए गडजां आंऊं।**

**से तां तोहिजी सिखाइल, त पाइयां थी धांऊं॥३९॥**

**शब्दार्थ-** जे-जो, तूं-आप, करिए-करो, हेकली-अकेली, भाइए-जान के, गडजां-मिलो, आंऊं-मैं, से-वह, तां-तो, तोहिजी-आपकी, सिखाइल-सिखायी, त-तो, पाइयां थी-कहती हूँ, धांऊं-पुकार।

**अर्थ-** यदि आप मुझे अकेली कर देते हैं, तो मैं आपसे आकर मिल जाऊँगी। आपके सिखाने पर ही मैं यह बात

बोल रही हूँ। इसलिये इस बात को पुकार-पुकार कर कह रही हूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में परोक्ष (पर्दे में) सुन्दरसाथ को सिखापन दी गयी है कि प्रियतम के प्रेम के समय सभी प्रकार के उत्तरदायित्वों से किनारा कर लेना चाहिए। कतेब परम्परा में इसे ही "साद" करना कहते हैं, जिसमें धनी के अतिरिक्त और किसी का भान (आभास) भी नहीं रहे। इसी के द्वारा प्रियतम से मिलन होता है। तभी तो धाम धनी ने कहा है-

मैं लिख्या है तुमको, जो एक करो मोहे साद।

तो दस बेर मैं जी जी कहूँ, कर कर तुमको याद॥

सिनगार २९/२३

हे जे कराईयूं गालियूं, एही कौल फैल जे हाल।

हिन मजल के ओडडी, मूँके केइए नूरजमाल॥४०॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, कराईयूं-करायी, गालियूं-बातें, एही-यही, जे हाल-रहना, हिन-इन, मजल के-मन्जिल के, ओडडी-नजदीक, केइए-कीजिए।

**अर्थ-** हे धाम धनी! हमारी कथनी, करनी, और रहनी से सम्बन्धित जो बातें आपने यहाँ कराई हैं, इस मन्जिल के निकट आप मुझे कीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई के पहले चरण में कथित "कराईयूं" का भाव "करने से" है। श्री महामति जी की आत्मा अपने प्रियतम से जो भी बातें कर रही हैं, वह धाम धनी की प्रेरणा से ही कर रही हैं। यह वार्ता दो के बीच में ही हो रही है, इसलिये यहाँ यही मानना पड़ेगा कि श्री महामति जी ने श्री राज जी से कथनी, करनी,

और रहनी के सम्बन्ध में बातें की हैं। कथनी और करनी की मन्जिल (लक्ष्य) को प्राप्त करके रहनी के चरम बिन्दु तक पहुँचना धनी की मेहर के बिना सम्भव नहीं है। यहाँ यही बात दर्शायी गयी है।

**पिरी डिए थो जे दिल में, सा माधाई करियां पुकार।**

**से सभ तूही कराइए, तो हथ कारगुजार॥४१॥**

**शब्दार्थ-** पिरी-प्रियतम, डिए थो-देते हैं, जे दिल में-जो दिल में, सा-वह, माधाई-आगे ही, करियां-करती, से-वह, सभ-सम्पूर्ण, तूही-आप ही, कराइए-कराते हैं, हथ-हाथ में है, कारगुजार-कार्य-व्यवहार।

**अर्थ-** हे प्रियतम्! आप मेरे दिल में जो भी देते हैं, उसे मैं पहले से ही पुकार करके कहने लगती हूँ। यह सारी लीला आपके ही हाथ में हैं और स्वयं आप ही सब कुछ

करते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई की पहली पंक्ति का भाव इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि श्री महामति जी या किसी अन्य आत्मा के दिल में प्रेम का रस प्रवाहित होता है, तो इसके पहले वह स्वयं ही धनी की प्रेरणा से माँग करने लगती है कि-

ना चाहूं मैं बुजरकी, न चाहूं खिताब खुदाए।

इस्क दीजे मोहे अपनो, मेरा याही सो मुद्दाए॥

किरंतन ६२/३

लाड कोड आसां उमेदूं, रूहें सभ दिलमें आईन।

पण तूं जे ताणिए पांण अडूं, त तोके ए भाईन॥४२॥

**शब्दार्थ-** कोड-हर्ष, उमेदूं-चाहना, रूहें-सखियों में, सभ-सबके, आईन-है, ताणिए-खींचे, पांण-अपनी,

अड्डं-तरफ, तोके-आपको, ए भाईन-ए जाने।

**अर्थ-** सभी आत्माओं के दिल में आपसे ही प्रेम और आनन्द पाने की आशा अथवा उम्मीद है। किन्तु यदि आप इस समय अँगनाओं को अपनी तरफ खींचे, तो ये आपको जान सकती हैं।

**भावार्थ-** "आशा" शब्द संस्कृत और हिन्दी का है, जबकि "उम्मेद" शब्द फारसी का है। धनी को जानने का तात्पर्य है, उनके स्वरूप की पहचान करना।

हे गाल न मूँजे हथमें, जे की करिए से तूँ।

तांजे तूँ न खेंचिए, त हे रंज सभे मूँ॥४३॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, मूँजे-मेरे, हथमें-हाथ में, जे की-जो कुछ, करिए-करते, तूँ-आप, तांजे-कदाचित्, खेंचिए-खींचते हैं, त-तो, रंज-दुःख, सभे-सम्पूर्ण है,

मूं-मुझे।

**अर्थ-** यह बात मेरे हाथ में नहीं है। सब कुछ तो आप ही करते हैं। यदि आप अँगनाओं (सुन्दरसाथ) को अपनी ओर नहीं खींचते हैं, तो मुझे इसका दुःख अवश्य होगा।

**भावार्थ-** इस चौपाई के पहले चरण में कथित "यह बात" का तात्पर्य है- आत्माओं को प्रेम और आनन्द देना जो एकमात्र श्री राज जी ही कर सकते हैं। श्री महामति जी का तन तो मात्र एक माध्यम है, जिसके द्वारा धाम धनी जागनी कार्य स्वयं ही कर रहे हैं। "आवेस जागनी हाथ पिया के, एह हमारा बल" (कलस हिंदुस्तानी २३/४९) का कथन भी यही भाव प्रकट करता है।

बेओ कित न जरे जेतरो, सभ हथ तोहिजे हुकम।

जे तिर जेतरी मूं दिल में, सभ जाणे थो पिरम॥४४॥

**शब्दार्थ-** बेओ-दूसरा, कित-कहीं, जरे-थोड़ी, जेतरो-जितना, तिर-तिल, जाणे-जानते, थो-है, पिरम-प्रियतम।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आपके अतिरिक्त कहीं भी दूसरा कोई नहीं है। सारी लीला आप के ही हुक्म के हाथ में है। मेरे हृदय में थोड़ी बहुत जो भी बातें हैं, उसे आप अच्छी तरह से जानते हैं।

**भावार्थ-** धनी के अतिरिक्त अन्य किसी के न होने का भाव उनकी सर्वोच्च सत्ता को दर्शाना है।

कडे कंदासो डींहडो, अस्सां रूहें जो संग।

हे हुज्रतूं करियां लाड में, जीं साफ थिए मूं अंग॥४५॥



**शब्दार्थ-** कडे-कब, कंदासो-करेंगे, डींहडो-दिन, अस्सां-हम, रूहें जो-सखियों का, संग-मिलाप का, हे हुज्जतूं-यह दावा, करियां-करती हूँ, जीं-जिससे, साफ थिए-पवित्र होवे, मूं अंग-मेरा शरीर।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप वह दिन कब दिखायेंगे, जब हम सभी आत्मायें आपके साथ प्रेम में संलग्न होंगी। इस प्रकार का दावा भी मैं प्रेम में ही कर रही हूँ, जिससे मेरे सभी अंग निर्मल हो जाएँ।

**भावार्थ-** श्री राज जी के प्रति विरह-प्रेम ही वह साधन है, जिससे माया कोसों दूर भाग जाती है। "माया गई पोताने घेर, हवे आतम तूं जाग्यानी केर" (रास २/१) तथा "इस्क आगूं न आवे माया, इस्कें पिण्ड ब्रह्माण्ड उड़ाया" (परिकरमा १/२६) के कथन का यही अभिप्राय है। धनी से प्रेम पाने की कामना विरहिणी के

लिये स्वाभाविक है। वह उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में पल-पल व्यतीत करती है। यहाँ यही भाव प्रकट किया गया है।

**दिलमें तूं उपाइए, मंगाइए पण तूं।**

**मूंजी रूह के गालियूं, जे मिठ्यूं सुणाइए मूं॥४६॥**

**शब्दार्थ-** उपाइए-उपजाते, मंगाइए-मंगाते, पण-भी, तूं-आप ही, मूंजी-मेरी, गालियूं-बातें, जे मिठ्यूं-जो मधुर, सुणाइए-सुनाइए, मूं-मुझे।

**अर्थ-** हे धनी! मेरे दिल में अपने दर्शनों की चाह आप ही पैदा करते हैं और आप ही मँगवाते हैं। आप मेरी आत्मा को अब प्रेम की मीठी-मीठी बातें सुनाइये।

तूं चाइए कर सुणाइए, सभ उमेदूं तो हथ।

धणी मूंहजे धामजा, तूं सभनी गालें समरथ॥४७॥

**शब्दार्थ-** चाइए-चाह, कर-करके, उमेदूं-चाहना, तो हथ-आपके हाथ में है, मूंहजे-मेरे, धामजा-धाम के, सभनी-सब, गालें-बातों के, समरथ-सामर्थ्यवान हैं।

**अर्थ-** हे मेरे धाम के धनी! आपको जो भी अच्छा लगे, वही सुनाइये। मेरी सम्पूर्ण आशा आपके ही हाथों में केन्द्रित है। आप सब प्रकार से पूर्ण सामर्थ्यवान हैं।

मूं चयो भूं आसमान विच, आंऊं हेकली आइयां।

जीं न अचे दिल में खतरो, से माधाई थी लाहियां॥४८॥

**शब्दार्थ-** मूं-मैंने, चयो-कहा, भूं-पृथ्वी, हेकली-अकेली, आइयां-हूँ, जीं-जिससे, अचे-आवे, खतरो-शक, से-वह, माधाई थी-आगे से ही, लाहियां-मिटती

हूँ।

**अर्थ-** मैंने आपसे पहले ही कह दिया है कि इस धरती और आकाश के बीच में मैं अकेली हूँ। अपने दिल में इच्छाओं के पूर्ण होने के सम्बन्ध में उठने वाले संशयों को मैंने पहले ही समाप्त कर दिया है।

**भावार्थ-** यहाँ इस बात में यह दृढ़ता दिखायी गयी है कि श्री राज जी हमारी आत्मिक इच्छाओं को अवश्य पूर्ण करते हैं। इस सम्बन्ध में अपने दिल में किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए। इस प्रसंग में रास ग्रन्थ १/८४ का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है—

मनना मनोरथ पूरण कीधां, मारा अनेक बार।

वारणे जाए इन्द्रावती, मारा आतमना आधार॥

बियूं रूहें हिन अर्सज्यूं, से तां आजिज पाणे।

हे मंझ रूअन रातो डीहां, मूंजी रूहडी थी जांणे॥४९॥

**शब्दार्थ-** बियूं-दूसरी, हिन-इन, अर्सज्यूं-धाम की, से तां-वह तो, आजिज-गरीब है, पाणे-आप ही, मंझ-खेल के बीच, रूअन-रोती हैं, रातो-रात, डीहां-दिन, रूहडी थी-आत्मा ही, जांणे-जानती है।

**अर्थ-** परमधाम की ये जो अन्य आत्मायें हैं, वे बहुत ही दयनीय अवस्था में हैं। वे मेरे पास आकर दिन-रात रोती हैं। उनकी पीड़ा को मेरी आत्मा अच्छी तरह से जानती है।

**भावार्थ-** धनी के प्रेम और आनन्द से वंचित आत्मायें असहाय अवस्था वाली कही गयी हैं, क्योंकि उनके पास परमधाम का अखण्ड धन (प्रेम और आनन्द) नहीं है। श्री महामति जी की दृष्टि में निश्चय ही वे इस संसार में

धनी की मेहर और दया की अधिकारिणी हैं।

जे आंऊं न्हारियां रूहन अडूं, पसी इंनी जो हाल।

रूअन अचे मूंह के, से तूं जांणे नूरजमाल॥५०॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, आंऊं-मैं, न्हारियां-देखती हूँ, अडूं-तरफ, पसी-देखकर, इंनी जो-इनकी, हाल-दशा, रूअन-रोना, अचे-आता है, मूंह के-मुझे, तूं-आप, जांणे-जानते हैं।

**अर्थ-** हे मेरे धाम धनी! जब इन आत्माओं की ओर देखती हूँ, तो इनकी हालत को देखकर मुझे भी रोना आ जाता है। इस बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं।

आंऊं बी बट भाइयां तिनके, जा उपटे अर्स दर।

कांध लाड पारनज्यूं, मूंके डे खबर॥५१॥

**शब्दार्थ-** बी-दूसरी, बट-पास में, भाइयां-जानिए, तिनके-उनको, जा-जो, उपटे-खोले, अर्स-अखण्ड के, दर-दरवाजे, कांध-हे प्रियतम, पारन-पूर्ण करने, ज्यूं-को, मूँके-मुझे, डे-दीजिए, खबर-जानकारी।

**अर्थ-** हे प्रियतम्! मैं इन सखियों को अपने से दूसरा समझती हूँ। यदि आप इनके लिये परमधाम का दरवाजा खोल देते हैं, तो अपने इस प्रेम को पूर्ण करने (निभाने) की सूचना मुझे भी अवश्य दे दीजिएगा।

**भावार्थ-** श्री महामति जी की आत्मा जाग्रत होने से अन्य आत्माओं से भिन्न कही गयी है, किन्तु परमधाम की वहदत (एकत्व) में सभी समान है क्योंकि सभी धनी की अँगरूपा हैं।

त की चुआं बी तिनके, जे मूं अडां पसी रोए।

त चुआंथी हेकली, मूं बट बी न कोए॥५२॥

**शब्दार्थ-** त-तो, की-कैसे, चुआं-कहूँ, बी-दूसरी, तिनके-उनको, जे-जो, मूं-मेरे, अडां-तरफ, पसी रोए-देखकर रोवे, त-तब, चुआंथी-कहती हूँ, हेकली-अकेली, कोए-कोई।

**अर्थ-** इन सखियों को मैं अलग दूसरी कैसे कह सकती हूँ, जो मेरी ओर देखकर रो रही हैं। मैं स्वयं को अकेली इसलिये कहती हूँ, क्योंकि मेरे पास कोई भी दूसरी सखी नहीं है अर्थात् मेरी तरह ये जाग्रत नहीं हैं।

**भावार्थ-** यहाँ यह संशय होता है कि क्या श्री लाल दास जी, महाराजा छत्रसाल जी, मुकुन्द दास जी, एवं केशव दास जी की भी आत्मा जाग्रत नहीं?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि उपरोक्त



महान् विभूतियाँ जाग्रत तो थीं, किन्तु इन्हें श्री महामति जी के समकक्ष नहीं ठहराया जा सकता। महामति जी को धाम धनी ने अपनी सारी शोभा दे रखी है। "नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो" (किरंतन ६२/१५) का यह कथन इस सन्दर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है। "मोहे करी सबों ऊपर, ऐसी ना करी दूजी कोए" (किरंतन १०९/१५) से भी यही निष्कर्ष निकलता है। इसी आधार पर महामति जी ने स्वयं को अकेली कहा है। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि इस चौपाई में "अकेली" शब्द तथा चौपाई ३९ में कथित "अकेली" शब्द के भावों में अन्तर (भेद) है, जिसका भावार्थ में स्पष्टीकरण किया जा चुका है।

पसां बंझाईदयूं हिनके, मूं अचे बाझाण।

ई दर ओडी कांध अडूं, थेयम बधंदी तांण॥५३॥

**शब्दार्थ-** पसां-देखती हूँ, बंझाईदयूं-कलपती हुई, हिनके-इन सखियों को, अचे-आता है, बाझाण-कल्पना, ई-इस, दर-द्वार, ओडी-नजदीक हूँ, कांध-प्रियतम की, अडूं-तरफ, थेयम-होती, बधंदी-बहुत तरह, तांण-खेंच।

**अर्थ-** हे प्रियतम! मैं जब इन्हें बिलखती हुई देखती हूँ, तो मुझे भी रोना आ जाता है। इस प्रकार मैं आपके धाम के द्वार की ओर निकट में खिंची चली आ रही हूँ।

**भावार्थ-** प्रियतम अक्षरातीत की सान्निध्यता (निकटता) ही आत्मा को माया के बन्धनों से मुक्त करती है और जाग्रत करके आनन्द के रस में डुबोती है।

हे सभ मेहेर धणीय जी, डिए थो रूह अन्दर।

हे पण आइम भरोसो कांध जो, जीं जाणे तीं कर॥५४॥

**शब्दार्थ-** धणीय जी-प्रीतम की, डिए थो-देते हैं, आइम-है, भरोसो-विश्वास, कांध जो-धनी को, जीं-जैसे, जांणे-जानिए, तीं-वैसे, कर-कीजिए।

**अर्थ-** हे धाम धनी! यह सारी मेहर आपकी है, जो आप मेरी आत्मा के अन्दर दे रहे हैं। मुझे केवल आपका ही भरोसा (सहारा) है। अब आप जैसा चाहें, वैसा कीजिए।

जे मूं करिए हेकली, विच आसमाने भूं।

जे आंऊं पसां पाणके हेकली, से सभ करिए थो तूं॥५५॥

**शब्दार्थ-** मूं-मुझे, करिए-करते हैं, हेकली-अकेली, विच-मध्य, भूं-पृथ्वी के, जे आंऊं-जो मैं, पसां-

देखती हूँ, पाणके-अपने को, से सभ-वह सम्पूर्ण,  
करिए थो-करते हैं, तूं-आप ही।

**अर्थ-** जब आप मुझे इस धरती और आकाश के बीच  
अकेली कर देते हैं, तभी मैं आपको अकेली देख पाती  
हूँ। यह सब कुछ आप ही कर रहे हैं।

**भावार्थ-** जागनी कार्य के उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर  
जब महामति जी की आत्मा प्रियतम के प्रेम में डूबती है,  
उस समय उन्हें मात्र स्वयं का एवं धनी का ही आभास  
होता है। यहाँ यही तथ्य दर्शाया गया है।

जे तूं जगाइए इलम से, त पसां थी हेकली पाण।

जे की करिए संग लाडजो, त थीयम तो अडूं ताण॥५६॥

**शब्दार्थ-** तूं-आपने, जगाइए-जाग्रत किया, पसां थी-  
देखती हूँ, पाण-स्वयं को, की-कुछ, करिए-करते हैं,

संग-सम्बन्ध, लाडजो-प्यार का, थीयम-होती है, तो-आपकी, अड्डूं-तरफ, ताण-खैंचा खैंच।

**अर्थ-** आपने मुझे तारतम ज्ञान से जाग्रत किया है, इसलिये मैं स्वयं को अकेली देख रही हूँ। यदि आप मुझसे प्यार करते हैं, तो मैं आपकी ओर खिंची चली आती हूँ।

करे हेकली गडजे, सभ तोहिजे हथ धणी।

मूं चेयूं उमेदूं वडियूं, जे तूं न्हारिए नैण खणी॥५७॥

**शब्दार्थ-** करे-करके, गडजे-मिलूँ, तोहिजे-आपके, हथ-हाथों में है, मूं-मैंने, चेयूं-कहा है, उमेदूं-चाहनाएँ, वडियूं-बहुत, तूं-आप, न्हारिए-देखिए, नैण-नेत्र, खणी-खोलकर।

**अर्थ-** हे प्रियतम! सब कुछ आपके ही हाथ में है। आप

मुझसे अकेले में मिलिये और अपने नेत्र उठाकर मेरी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखिए। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि मुझे आपसे इस प्रकार के व्यवहार की बहुत अधिक आशा है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेम के मधुरतम् भावों की अभिव्यक्ति है, जिसमें आशिक (आत्मा) द्वारा अपने माशूक (श्री राज जी) से इस प्रकार का आग्रह है। "अकेले में मिलने" का कथन प्रेममयी लीला को दृष्टिगत् करके कहा गया है।

बेई कित न जरे जेतरी, कांए न रखिए गाल।

हे तेहेकीक मूंजी रुहके, केइए नूरजमाल॥५८॥

**शब्दार्थ-** बेई-दूसरी, कित-कहीं भी, जरे-किंचित्, जेतरी-जितनी, कांए-कुछ भी, रखिए-रखी, गाल-

बात, हे-यह, तेहेकीक-पूर्ण विश्वास, मूंजी-मेरी, रूहके-आत्मा को, केइए-कीजिए।

**अर्थ-** और कोई दूसरी बात जरा सी भी कहीं नहीं है। हे मेरे प्रियतम्! आपने मुझे इस बात का पूर्णतः विश्वास दिला दिया है।

**भावार्थ-** यदि प्रियतम ही प्रेम भरे नेत्रों से देख लें, तो उसके पश्चात् और कोई भी बात कहने-सुनने के लिये नहीं रह जाती। यहाँ पर यही भाव प्रकट किया गया है।

चुआं थी रूह मूंहजी, से पण आइम भूल।

मूंजी आंऊं त चुआं, जे हुआं विच अर्स असल॥५९॥

**शब्दार्थ-** चुआं-कहती, थी-है, मूंहजी-मेरी, से-सो, पण-भी, आइम-है, त-तब, जे-जो, हुआं-होऊँ, असल-खास।

**अर्थ-** किन्तु मेरी आत्मा यह भी कहती है कि इस प्रकार की बातें करना भूल है। मैं इस प्रकार की बातें तो तभी कर सकती हूँ, जब अखण्ड परमधाम में मेरी विद्यमानता (मौजूदगी) हो।

**भावार्थ-** परमधाम में नूरमयी तन हैं, जहाँ धाम धनी अपनी नूरमयी अँगनाओं की ओर प्रेम भरी नजर (दृष्टि) से निहारा (देखा) करते हैं। यहाँ पर यह सम्भव नहीं लगता, क्योंकि धाम धनी भी यहाँ आवेश स्वरूप से आये हैं और मेरा तन भी पञ्चभूतात्मक है।

इस तथ्य के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यदि धाम धनी श्याम जी के मन्दिर में श्री देवचन्द्र जी को साक्षात् दर्शन देकर बातें कर सकते हैं, आड़िका लीला में तरह-तरह की वस्तुएँ भेंट कर सकते हैं और साथ में बैठकर भोजन भी कर सकते हैं, तो अपने प्रेम भरे नेत्रों



से हमारी ओर क्यों नहीं देख सकते।

इतना ही नहीं, श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर उन्होंने सबकी भावना के अनुसार दर्शन दिया है—

जाको दिल जिन भांत सों, तासों मिले तिन बिध।

मन चाह्या सरूप होए के, कारज किए सब सिध॥

खुलासा १३ / ९४

सुर असुर सबों के ए पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को साईं, जिनहूं जैसा चीन्ह्या॥

किरंतन ५९ / ७

यदि यह कहा जाये कि उन दोनों तनों (सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी और श्री महामति जी) की लीला की बात और थी, वर्तमान समय में (छठे दिन की लीला में) यह सम्भव नहीं है, तो यह भी उचित नहीं है। छठे दिन के

लिये ही तो यह ब्रह्मवाणी उतरी है—

पीछला साथ आवेगा क्योंकर, प्रकास वचन हिरदे में धर।  
चरने हैं सो तो आए सही, पर पीछले कारन ए बानी कही॥

प्रकास हिंदुस्तानी ३४/२०

हम प्रेम द्वारा निश्चित रूप से अपनी आत्मा के धाम  
हृदय में अपने प्राणवल्लभ को जी भरकर देख सकते हैं,  
बातें कर सकते हैं, और उनकी अमृत से भी अनन्त गुना  
मीठी बातों को सुन सकते हैं। सिनगार २५/६८ में स्पष्ट  
कहा गया है—

रूह नैनों दीदार कर, रूह जुबां हक सो बोल।

रूह कानों बातें सुने, एही पट रूह का खोल॥

आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण  
परमधाम विद्यमान है। यह बात श्रृंगार ग्रन्थ के दूसरे  
प्रकरण में बहुत विस्तार के साथ वर्णित की गयी है,

आवश्यकता है केवल दृढ़ आत्मिक बल के साथ प्रेम भरे कदम बढ़ाने की। जो हमारी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट है, वह हमें क्यों नहीं दर्शन देगा। वह अक्षरातीत ही नहीं जो दर्शन नहीं दे सकता और वह आत्मा ही नहीं जो दर्शन (दीदार) नहीं कर सकती। प्रेममयी चितवनि से सब कुछ सम्भव है। नकारात्मक विचार हमारी राह में सबसे बड़ी बाधा हैं। इसी को दृष्टिगत रखते हुए अगली चौपाई में संकेत किया गया है।

**हित न्हाए विच बेही करे, आंऊं की चुआं मूके पांण।**

**केई थेई सभ तोहिजी, से सभ तोके आए जांण॥६०॥**

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ, न्हाए-नश्वर, विच-बीच में, बेही-बैठ, करे-करके, की-कैसे, मूके-मुझे, पांण-आप, केई-किया, थेई-हुआ, तोहिजी-आपका, से-

वह, तोके-आपका, आए-है, जाण-जानकारी, खबर।

**अर्थ-** इस नश्वर संसार में बैठकर मैं स्वयं अपने लिये ऐसा कैसे कहूँ। यह सारा किया हुआ आपका ही है। इस सारी बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं।

**भावार्थ-** यदि कोई संशय करे कि क्या श्री महामति जी को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि धनी ने उनकी ओर प्रेम भरी नजरों से देखा है?

इसका सीधा सा उत्तर है कि किरंतन ८४/२ में इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "धन धन धनी नेत्र मिलाए रसाले।" इस चौपाई की दूसरी पंक्ति में उन्होंने हब्शा का संकेत दे ही दिया है कि आप सारी बातों को जानते हैं। आगे की तीनों चौपाइयों (६१, ६२ एवं ६३) में भी यही संकेत किया गया है।

हे पण गाल्यूं लाडज्यूं, करिए थो सभ तूं।

तो रे तोहिजी गालिनजी, दम न निकरे मूं॥६१॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, पण-भी, गाल्यूं-बातें, लाडज्यूं-प्यार को, करिए-करते, थो-हैं, तूं-आप, तो-आपके, रे-बिना, तोहिजी-आपकी, गालिनजी-बातों को, दम-जरा सा, निकरे-निकलती, मूं-मुझसे।

**अर्थ-** हे प्रियतम! ये सभी प्रेम भरी बातें हैं, जो आप मुझसे कर रहे हैं। आपके बिना मैं आपकी बातों का दम नहीं भर सकती, अर्थात् आप की तरह इतनी मीठी बातें नहीं कर सकती।

**भावार्थ-** माधुर्यता के मूल स्रोत अक्षरातीत ही हैं। उनसे अलग होकर कोई भी माधुर्यता के रस में प्रवेश नहीं कर सकता।

आसां उमेदूं जे हुज्रतूं, सभ तूंहीं उपाइए।

मूंजे मोंहें तेतरी निकरे, जेतरी तूं चाइए॥६२॥

**शब्दार्थ-** उमेदूं-उमेद की, जे-जो, हुज्रतूं-दावा है, तूंहीं-आप ही, उपाइए-उपजाते हैं, मूंजे-मेरे, मोंहें-मुख से, तेतरी-उतनी, निकरे-निकलती है, जेतरी-जितनी, तूं-आप, चाइए-कहलाते हैं।

**अर्थ-** हमारे अन्दर आपसे अपनी इच्छाओं के पूर्ण कराने (होने) का जो दावा है, वह आप ही उत्पन्न कराते हैं। मेरे मुख से मात्र उतना ही निकल सकता है, जितना आप कहलवाते हैं।

चई चई चुआं केतरो, सभ दिलजी तूं जाणे।

तो रे आइयां हेकली, सभ जाणे थो पांणे॥६३॥

**शब्दार्थ-** चई-कहकर, केतरो-कितना, दिलजी-दिल

की, तू-आप ही, जाणे-जानते हैं, तो-आपके, रे-बिना, आइयां-हूँ, हेकली-अकेली, जाणे-जानते, थो-हैं, पांणे-आप ही।

**अर्थ-** बार बार कहकर मैं कितना कहूँ? आप हमारे दिल की सभी बातों को जानते हैं। आपके बिना मैं अकेली हूँ। प्रेम के रहस्यों से भरी इन सारी बातों को आप अच्छी तरह से जानते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेम की कितनी मधुर अभिव्यक्ति है। प्रेम और समर्पण को शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। धनी का दिल ही तो धाम में श्री इन्द्रावती जी के दिल और तन (परात्म) के रूप में लीला कर रहा है। उसी दिल का प्रतिबिम्बित दिल भला धाम धनी के बिना कैसे सन्तुष्ट रह सकता है। यही भाव इन शब्दों में उजागर होता है कि "मैं आपके बिना

अकेली हूँ।"

महामत चोए मेहेबूबजी, हे डिंनी तो लगाए।

तूं जागे अस्सीं निद्रमें, जाणे तींय जगाए॥६४॥

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, मेहेबूबजी-धाम धनी, हे-यह, डिंनी-दिया है, तो-आपने, लगाए-लगाया है, तूं-आप, जागे-जाग्रत हो, अस्सीं-हम, निद्रमें-नींद में, जाणे-जानिये, तींय-वैसे, जगाए-जाग्रत कीजिए।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे धाम धनी ! आपने हमारे साथ यह माया लगा रखी है। आप तो पूर्ण रूप से जाग्रत हैं, किन्तु मैं (हम सभी आत्मायें) माया की नींद में हूँ (हैं)। अब आप जैसे भी चाहें, वैसे जगाइये।

**भावार्थ-** माया की नींद में होने का कथन संकेत रूप में



सुन्दरसाथ के लिये है। श्री इन्द्रावती जी की परात्म पर अवश्य फरामोशी (नींद) है, किन्तु उनकी आत्मा इस खेल में जाग्रत है।

प्रकरण ॥५॥ चौपाई ॥१९३॥

## रूहन जो फैल हाल

ब्रह्मसृष्टियों की करनी और रहनी

इस प्रकरण में यह बात बतायी गयी है कि इस खेल में परमधाम की अँगनाओं को क्या करना है, और धनी के प्रेम (रहनी) में किस प्रकार से डूब जाना है ताकि जागनी लीला का रस लिया जा सके।

**धणी मूंहजी रूहजा, गाल करियां कोड करे।**

**आंईन उमेदूं लाडज्यूं, अची करियां गरे॥१॥**

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, रूहजा-आत्मा के, गाल-बातें, करियां-करती हूँ, कोड-हर्ष, करे-करके, आंईन-है, उमेदूं-चाहना, लाडज्यूं-प्यार की, अची-आकर, करियां-करूँगी, गरे-पास में।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे मेरी आत्मा के

प्राणवल्लभ! मैं आपसे जिस प्रेम की आनन्दपूर्वक बातें करती हूँ, उसे आपसे पाने की मेरे अन्दर बहुत चाहना है। मैं घर आकर अपनी इस इच्छा को अवश्य ही पूर्ण करूँगी।

**रूहें बिहारे रांद में, पाण बेठा परडेह।**

**सुध न्हाए के रूह के, रांद न अचे छेह॥२॥**

**शब्दार्थ-** रूहें-आत्माओं को, बिहारे-बैठाया, रांद में-खेल के बीच में, पाण-आप, बेठा-बैठे हैं, परडेह-परदेश में, न्हाए-नहीं है, के-कुछ भी, रांद-खेल का, अचे-आता है, छेह-किनारा (पारावार)।

**अर्थ-** आपने हम आत्माओं को माया के इस खेल में बिठा रखा है और स्वयं परमधाम (परदेश) में बैठे हैं। हमें तो आपकी और घर की जरा भी सुध नहीं है, क्योंकि

इस मायावी खेल में नींद की कोई सीमा ही नहीं है।

**भावार्थ-** परमधाम की दृष्टि से यह माया का संसार परदेश है, किन्तु इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के आने तथा धनी के अपने नूरी तन से मूल मिलावा में विराजमान होने के कारण परमधाम को ही परदेश कहकर सम्बोधित किया गया है।

अस्सां मथें आइयो, पिरियन जो फुरमान।

मूक्यो आं रसूलके, डियन रूहन जाण॥३॥

**शब्दार्थ-** अस्सां-हमारे, मथें-ऊपर, आइयो-आया, पिरियन-प्रियतम, जो-को, मूक्यो-भेजा, आं-आपने, रसूलके-संदेशवाहक, डियन-देने, रूहन-आत्माओं को, जाण-खबर।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आपने हमारे लिये रसूल साहिब द्वारा

सन्देशवाहक के रूप में आदेश पत्र भेजा, जिससे सभी अँगनाओं को जानकारी हो जाये।

**भावार्थ-** फरमान (फुरमान) का अर्थ होता है- परब्रह्म के आदेश से अवतरित धर्मग्रन्थ। इसके अन्तर्गत कुरआन एवं भागवत दोनों ही आते हैं। "फुरमान दूजा ल्याया सुकदेव" (खुलासा २/४५) के कथन से शुकदेव जी को भी सन्देशवाहक माना जाता है। वेद पक्ष में जहाँ भागवत् आदेश पत्र है, वही कतेब पक्ष में कुरआन।

**लिख्यो आं फुरमान में, रमूजें इसारत।**

**भत्ती भत्ती ज्यूं गालियूं, सभ अर्सजी हकीकत॥४॥**

**शब्दार्थ-** लिख्यो-लिख भेजा, आं-आपने, रमूजें-रहस्यमयी, इसारत-संकेत, भत्ती भत्ती-तरह तरह, ज्यूं-की, गालियूं-बातें, अर्सजी-धाम की, हकीकत-

जानकारी।

**अर्थ-** आपने कुरआन सहित भागवत आदि धर्मग्रन्थों में रहस्यमयी संकेतों में प्रेम की बातें लिखी हैं। इन ग्रन्थों में तरह-तरह की सांकेतिक बातों में सम्पूर्ण परमधाम का ज्ञान लिखा हुआ है।

तो चेयो रसूल के, तूं थीयज हुनमें अमीन।

डिज तूं मूर निसानियूं, जीं अचे रूहें आकीन॥५॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, चेयो-कहा, रसूल के-रसूल साहब से, थीयज-होकर, हुनमें-उन आत्माओं में, अमीन-सत्यनिष्ठ अमानतदार, डिज तूं-देकर, मूर-निजधाम की, निसानियूं-सूक्ष्म खबरें, जीं-जिससे, अचे-आवे, रूहें-आत्माओं को, आकीन-विश्वास।

**अर्थ-** आपने रसूल साहिब से कहा कि आप कुरआन

के रूप में ब्रह्मसृष्टियों की धरोहर को अपने पास रखिए। उचित समय पर उन्हें परमधाम की बातों को बताना , जिससे उन्हें विश्वास आ जाये।

**भावार्थ-** मुहम्मद साहिब के समय में परमधाम की आत्मायें नहीं थीं , इसलिये उनमें प्रमुख होने (सरदारी करने) का प्रश्न ही नहीं है। "अमीन" शब्द का अर्थ सत्य निष्ठा से किसी की धरोहर को सुरक्षित रखने वाला होता है। सम्पूर्ण अरब में मुहम्मद साहिब की ख्याति अमीन के रूप में थी, क्योंकि वे सभी की धरोहर (अमानत) को पूर्णतया सुरक्षित रखते थे। रसूल साहिब के ही आदेश से कुरआन अब तक सुरक्षित रहा। श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर अक्षर की आत्मा (रसूल साहिब) और इस्राफील (जाग्रत बुद्धि) ने सभी रहस्यों को उजागर किया।

रुहें लग्यूं जडे रांद में, विसर वेओ घर।

आसमान जिमी जे विच में, अर्स बका न के खबर॥६॥

**शब्दार्थ-** लग्यूं-लगी, जडे-जब, रांद में-खेल में, विसर-भूल, वेओ-गया, जिमी जे-पृथ्वी के, बका-अखंड को, न के-किसी को नहीं है, खबर-जानकारी।

**अर्थ-** हे धनी! ब्रह्मसृष्टियाँ जब इस खेल में मग्न हो गयी हैं, तो उन्हें अपना मूल घर भूल गया है। इस धरती और आकाश के बीच (चौदह लोक) में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को अखण्ड परमधाम का ज्ञान नहीं है।

तडे मूकियां रुह पांहिजी, जा असांजी सिरदार।

कुंजी मूकियां अर्स जी, उपटन बका द्वार॥७॥

**शब्दार्थ-** मूकियां-भेजो, पांहिजी-अपनी, जा-जो, असांजी-हम साथ की, सिरदार-बुजरक, कुंजी-चाबी,



अर्स जी-परमधाम की, उपटन-खोलने के लिए।

**अर्थ-** तब आपने श्री श्यामा जी को भेजा, जो सबकी प्रमुख (सरदार) हैं। अखण्ड परमधाम का द्वार खोलने के लिये आपने उनके हाथ तारतम ज्ञान रूपी कुञ्जी (चाबी) भी भेजी।

रूहें पसी मूं द्रियूं, रई न सगे रे रांद।

कां न विचारे पांण के, मूं सिर केहो कांध॥८॥

**शब्दार्थ-** पसी-देखकर, मूं-मैं, द्रियूं-डर गयी, रई-रह, सगे-सकती, रे-बिना, रांद-खेल के, कां-क्यों, विचारे-विचारती हैं, पांण के-आपको, मूं-मेरे, सिर-ऊपर, केहो-कैसे हैं, कांध-प्रियतम।

**अर्थ-** आत्माओं को संसार में फँसा हुई देखकर मैं डर गयी कि ये तो इस मायावी खेल के बिना रह ही नहीं पा

रही हैं। ये स्वयं इस बात का विचार क्यों नहीं करती हैं कि हमारे शिर पर कैसे प्रियतम विराजमान हैं।

**भावार्थ-** "शिर पर होना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है- छत्रछाया होना या वरदहस्त होना।

**वडी रूह रूहन के, चई समझाईन।**

**पाण न्हायूं हिन रांदज्यूं, घर बकामें आईन॥९॥**

**शब्दार्थ-** वडी रूह-श्यामा जी, रूहन के-सखियों को, चई-कहकर, समझाईन-समझाया, पाण-अपना साथ, हिन रांदज्यूं-इस खेल के, बकामें-अखण्ड धाम में, आईन-है।

**अर्थ-** सखियों में अग्रगण्य श्यामा जी ने अनेक प्रकार से समझाया कि हम सब इस खेल के नहीं हैं। हमारा घर अखण्ड परमधाम है।

कई केयांऊं रांदज्यूं गालियूं, समझन के सौ भत।

कांधे मूकी मूके कोठण, जांणी आंजी निसबत॥१०॥

**शब्दार्थ-** कई-कई प्रकार से, केयांऊं-करी, रांदज्यूं-खेल की, गालियूं-बातें, समझन-जानकारी कराने, के-को, सौ भत-सौ प्रकार से, कांधे-प्रियतम ने, मूकी-भेजी, कोठण-बुलाने, जांणी-जानकर, आंजी-तुम्हारी।

**अर्थ-** उन्होंने अनेक प्रकार की खेल की बातें की तथा सैंकड़ों प्रकार से समझाया कि धाम धनी ने तुमसे अपना मूल सम्बन्ध जानकर तुम्हें घर बुलाने के लिये मुझे भेजा है।

वडी रूह चोए आं कारण, मूं हेडो केया पंध।

लखे भतें समझाइयूं, पण हियो न अचे हंद॥११॥

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, आं-तुम्हारे, मूं-मेरा, हेडो-

ऐसा, केया-किया, पंध-रास्ता, लखे-लाखों, भतें-तरह से, समझाइयूं-समझाया, पण-परन्तु, हियो-हृदय में, अचे-आता है, हंद-ठिकाना।

**अर्थ-** श्यामा जी ने कहा कि तुम्हें जाग्रत करने के लिये मैंने इतना लम्बा मार्ग तय किया है। इस प्रकार उन्होंने लाखों प्रकार से समझाया, किन्तु साथ के हृदय में परमधाम (मूल घर) नहीं बस सका।

**भावार्थ-** श्री देवचन्द्र जी सत्य की खोज करने के लिये अनेक पन्थों में घूमे, सत्संग, ध्यान-साधना में स्वयं को लगाया, तथा १४ वर्ष तक निष्ठाबद्ध होकर भागवत कथा का श्रवण किया। तत्पश्चात् प्रियतम परब्रह्म ने दर्शन देकर तारतम ज्ञान प्रदान किया। इसे ही मार्ग (आध्यात्मिक) पर चलना कहा गया है।

आंऊं आइस आंके कोठण, उपटे बका दर।

आसमान जिमी जे विच में, जा के के न्हाए खबर॥१२॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, आइस-आई हूँ, आंके-तुमको, कोठण-बुलाने, उपटे-खोले, दर-द्वार, के के-किसी का भी।

**अर्थ-** श्यामाजी कहती हैं कि हे साथ जी! मैं आपको बुलाने के लिये आयी हूँ। मैंने तारतम ज्ञान से उस अखण्ड परमधाम का द्वार खोल दिया है, जिसका ज्ञान इस धरती और आकाश के बीच (चौदह लोक) में किसी को भी नहीं है।

**भावार्थ-** परमधाम का द्वार खोलने का तात्पर्य है, परमधाम का दर्शन कराने वाले अलभ्य ज्ञान को सर्वसुलभ कर देना।

वडी वडाई आंजी, पसो केहेडो पांहिजो घर।

हे कूडा कूडी रांदमें, छडे कायम वर॥१३॥

**शब्दार्थ**— वडाई—महिमा, आंजी—तुम्हारी, पसो—देखो, केहेडो—कैसा है, पांहिजो—अपना, कूडा—झूठा, रांदमें—खेल में, छडे—छोड़कर, कायम—अखण्ड, वर—पति को।

**अर्थ**— तुम्हारी बहुत अधिक शोभा (महिमा) है। देखो! तुम्हारा परमधाम कितना सुन्दर है, जबकि यह संसार झूठा है। अपने अखण्ड प्रियतम को छोड़कर हम सभी इस झूठे खेल में मग्न हो गयी हैं।

कई करे रांदज्यूं गालियूं, फिरी फिरी फना डुख।

पांहिजा कायम अर्सजा, कई कोडी डेखारयाई सुख॥१४॥

**शब्दार्थ**— कई—कई प्रकार से, करे—करी, रांद—खेल, ज्यूं—की, गालियूं—बातें, फिरी—फेर, फना—नश्वर, डुख—

दुःख ही है, पांहिजा-अपना, कायम-अखण्ड, अर्सजा-परमधाम का, कोडी-करोड़ों, डेखारयाई-दिखाया।

**अर्थ-** इस प्रकार श्यामा जी ने अनेक प्रकार से खेल की बातें बतायीं। उन्होंने बारम्बार इस नश्वर संसार के दुःखों का वर्णन किया और अपने अखण्ड परमधाम के करोड़ों सुखों की चर्चा की (दिखलाया)।

तोहे रूहें न छडीन रांदके, कां निद्रडी लगाई हिन।

कडे थी न हेडी फकडी, मथां हिन रूहन॥१५॥

**शब्दार्थ-** तोहे-फिर भी, छडीन-छोड़ती हैं, रांदके-खेल को, कां-क्यों, निद्रडी-नींद, कडे-कभी, थी-हुई, हेडी-ऐसी, फकडी-हास्यपना (ठठोली), मथां-ऊपर, हिन-इन, रूहन-सखियों पर।

**अर्थ-** फिर भी सखियाँ इस मायावी खेल को नहीं छोड़

पा रही हैं। धनी ने इन्हें कुछ ऐसी नींद ही लगा दी है। सखियों के साथ आज तक कभी भी इस प्रकार की हँसी की लीला नहीं हुई थी।

**आंऊं पुकारियां इंनी कारण, पण इंनी केहो डो।**

**आऊं पण बंधिस रांदमें, करियां कुजाडो॥१६॥**

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, पुकारियां- पुकारती हूँ, इंनी- इन सखियों के, कारण-वास्ते, पण-परन्तु, केहो डो-क्या कसूर, बंधिस-बन्ध गई हूँ, रांदमें- खेल में (माया), करियां-करूँ, कुजाडो-क्या।

**अर्थ-** मैं इन सखियों को जाग्रत करने के लिये ही तारतम वाणी से पुकार कर रही हूँ, परन्तु इनका दोष भी क्या है। इस खेल में आकर मैं भी बन्ध सी गयी हूँ। अब क्या कर सकती हूँ।



हिक लधिम गाल पिरनजी, चुआं सभे जेडिन।

जा लगाइल हिन हक जी, सा न छुटे पर किन॥१७॥

**शब्दार्थ-** हिक-एक, लधिम-पाई, गाल-बात, पिरनजी-प्रियतम की, चुआं-कहती हूँ, सभे-सम्पूर्ण, जेडिन-सखियों को, जा-जो, लगाइल-लगाई, हिन-उन, हक जी-धनी की, सा-सो, न-नहीं, छुटे-छूटती है, पर-तरह (दूसरी), किन-किसी से।

**अर्थ-** धनी की एक बात को मैं समझ गयी हूँ। उसी बात को मैं सभी सखियों से कहती फिरती हूँ। प्रियतम ने जो माया हमारे साथ लगा रखी है, वह उनके अतिरिक्त और किसी से नहीं छूटेगी।

मूं उमेदूं पिरनज्यूं, लधिम भली पर।

सुयम मोहां सजणे, जो खिलवत थी घर॥१८॥

**शब्दार्थ-** मूं-मेरी, उमेदूं-आशाएँ, पिरनज्यूं-प्रियतम की, लधिम-पाई, भली-अच्छी, पर-प्रकार से, सुयम-सुनी, मोहां-मुखारविन्द से, सजणे-प्रियतम के, खिलवत-प्रेम सम्वाद, थी-हुआ।

**अर्थ-** मुझे अपने प्राणवल्लभ से आशायें थीं, वे बहुत ही अच्छी तरह से पूरी हो गयीं। परमधाम के मूल मिलावा में होने वाली बातों को मैंने अपने प्रियतम के मुख से सुना है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रियतम से तात्पर्य सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी से है। मूल मिलावा में इश्क रब्द और खेल से सम्बन्धित बातें हुईं, जिन्हें श्री मिहिरराज जी ने सुना।

परुडिम पिरन जी, हे जा डेखारयाई रांद।

अस्सां मथें खिल्लण, केइए कुडन के कांध॥१९॥

**शब्दार्थ-** परुडिम-समझी, पिरन जी-प्रियतम को, हे जा-यह जो, डेखारथाई-दिखाया, रांद-खेल, अस्सां-हमारे, मथें-ऊपर, खिल्लण-हँसने को, केइए-किया, कुडन-हर्षित होने, के-को, कांध-धनी ने।

**अर्थ-** अब मैं इस बात को समझ गयी हूँ कि धाम धनी ने हमारे ऊपर हँसी करके, आनन्दित होने के लिये ही हमें यह माया का खेल दिखाया है।

इस्क धणी जे दिल जो, पेरो न लधों पांण।

त डेखारयाई रांदमें, इस्कजी पेहेचान॥२०॥

**शब्दार्थ-** इस्क-प्रेम, धणी जे-प्रियतम के, दिल जो-दिल का, पेरो न-पहले नहीं, लधों-पाया, पांण-आप,

त-तब, डेखारयाई-दिखाई, रांद-खेल के, में-बीच में, इस्कजी-प्रेम की, पेहेचान-समझ।

**अर्थ-** अक्षरातीत प्रियतम के दिल में उमड़ने वाले अनन्त प्रेम को मैं पहले नहीं समझ पायी थी। इसलिये उन्होंने अपने प्रेम (इश्क) की पहचान कराने के लिये ही यह खेल दिखाया है।

**भावार्थ-** सखियों द्वारा अक्षर ब्रह्म के खेल को देखने की इच्छा करना तथा अक्षर ब्रह्म द्वारा परमधाम की प्रेममयी लीला को देखने की इच्छा करना खेल का कारण है। इसी प्रकार अक्षरातीत द्वारा अपने दिल में विद्यमान इश्क आदि की मारिफत (परमसत्य) की पहचान कराना खेल का महाकारण है।

मूं तेहेकीक आयो दिलमें, अगरो धणी इस्क।

डिठम अर्स खिलवतमें, सा रही न जरो सक॥२१॥

**शब्दार्थ-** मूं-मुझको, तेहेकीक-निश्चय, आयो-है, दिलमें-दिल में, अगरो-अधिक है, धणी-प्रियतम का, इस्क-प्रेम, डिठम-देखा, अर्स-धाम के, खिलवतमें-मूल मिलावा में, सा रही-वह रही, न-नहीं, जरो-किंचित्, सक-संशय।

**अर्थ-** परमधाम के मूल मिलावा में मैंने जो इश्क रब्द का दृश्य देखा है, उसके सम्बन्ध में अब मेरे दिल में पूर्णतया यह निश्चित हो गया है कि धाम धनी का इश्क ही सबसे बड़ा है। इस विषय में अब नाम मात्र के लिये भी संशय नहीं रह गया है।

**भावार्थ-** मारिफत (परमसत्य, ऋत) से ही हकीकत (सत्य) का स्वरूप प्रकट होता है। मारिफत स्वरूप श्री

राज जी के दिल से ही सखियों एवं श्यामा जी का स्वरूप लीला रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। उस हकीकत के स्वरूप में ही मारिफत छिपा हुआ है, इसलिये परमधाम में वहदत होने के कारण इश्क का निर्णय नहीं हो पा रहा था। इस खेल में आने पर ब्रह्मवाणी द्वारा सारा निर्णय हो गया, क्योंकि यहाँ किसी के पास परमधाम वाला इश्क रहा ही नहीं।

**मूं उमेदूं दिलमें, धणी से घारण।**

**को न होन उमेदूं धणी के, मूंजा लाड पारण॥२२॥**

**शब्दार्थ—** मूं-मेरे, उमेदूं-आशाएँ, दिलमें- दिल के भीतर है, धणी-प्रियतम, से-सो, घारण-माँगने की, को न-क्यों नहीं, होन-होवे, धणी के-प्रियतम को, मूंजा लाड-मेरे प्यार, पारण-पूर्ण करने की।

**अर्थ-** मेरे दिल में धनी से प्रेम करने की अमिट चाह (इच्छा) है, किन्तु मुझे आश्चर्य है कि स्वयं धाम धनी के अन्दर मुझे प्यार करने के लिये इच्छा क्यों नहीं है?

**भावार्थ-** इस चौपाई से पूर्व की २१वीं चौपाई में कहा जा चुका है कि निर्विवाद रूप से श्री राज जी का इश्क ही सबसे बड़ा है और वे ही आशिक हैं। प्रेम आशिक (प्रेमी) ही करता है। इस चौपाई में धनी द्वारा प्रेम न किये जाने का जो उलाहना रूप कथन है, वह मात्र विरह की एक मधुर टीस (पीड़ा) है। अक्षरातीत तो प्रेम (इश्क) के अनन्त सागर हैं। उनके प्रेम में कभी भी न्यूनता नहीं हो सकती। हम तो उनके प्रेम के पदचिन्हों पर भी नहीं चल पा रहे हैं, तभी तो उन्होंने कहा है- "जो तुम पीछे दोस्ती करो, तो भी मेरे सच्चे यार" (खिलवत ८/४०)। इसी प्रकार की अभिव्यक्ति अगली चौपाई में भी है।

तरसे दिल मूंहजो, जाणे कडे धणी पस्सां।

त की न हून कांध के, मिडन उमेदूं अस्सां॥२३॥

**शब्दार्थ-** तरसे-दुःखी होता है, दिल-दिल, मूंहजो-मेरा, जाणे-जानूँ, कडे-कब, धणी-प्रियतम को, पस्सां-देखूँ, त की-तो क्यों, न-नहीं, हून-होवे, कांध के-धनी को, मिडन-मिलने की, अस्सां-हमसे।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! मेरा दिल आपसे मिलने के लिये तड़प रहा है कि मैं कब आपका दीदार (दर्शन) करूँ, किन्तु आपके दिल में हमसे मिलने की चाहना क्यों नहीं होती?

**भावार्थ-** अक्षरातीत पूर्णातिपूर्ण है और जाग्रत भी हैं। वे हमें पल-पल देख रहे हैं, किन्तु माया की नींद में होने के कारण सुन्दरसाथ उन्हें नहीं देख पा रहे हैं। अपूर्णता में ही पूर्ण होने की इच्छा होती है। दीदार की इच्छा भी



अपूर्ण में ही होती है। परमधाम में पल-पल दीदार होता रहता है, इसलिये वहाँ विरह की लीला या दीदार की तड़प नहीं होती। तीसरी भूमिका की पड़साल में धाम धनी जो पशु-पक्षियों को दर्शन देते हैं, वह तो प्रेम की स्वाभाविक लीला है। रंगमहल का सम्पूर्ण आनन्द परमधाम के कण-कण में अनुभूत होता है। पशु-पक्षियों तक को धाम धनी अनन्त रूप धारण करके दर्शन देते हैं—

धनी इनों के कारने, सरूप धरे कई करोर।

ले दिल चाह्या दरसन, ऐसे आसिक हक के जोर॥

परिकरमा २८/८

दिल थिए मिडन धणीयसे, जे मूं इस्क न हंड।

कांध पूरे इस्क से, तिन आए सौ गणी चड॥२४॥

**शब्दार्थ-** थिए-होता है, मिडन-मिलाप करने को, धणीयसे-प्रियतम से, जे-जो, मूं-मेरे पास, इस्क न-प्रेम का नहीं, हंड-ठिकाना, कांध-प्रियतम, पूरे-पूर्ण, तिन-तिन को, आए-है, गणी-गुण, चड-चढ़ती।

**अर्थ-** यद्यपि हमारे हृदय (दिल) में प्रेम (इश्क) नहीं है, फिर भी धनी से मिलने की हमें प्रबल इच्छा होती है। धाम धनी तो इश्क से भरपूर हैं (गंजानगंज सागर हैं), उनके अन्दर तो हमसे सौ गुना अधिक इच्छा होनी चाहिए।

**भावार्थ-** विरह-प्रेम की मधुर पीड़ा (कसक) में आत्मा की ओर से हृदय को झकझोरने वाली यह व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति है। आगे की चौपाई में भी यही तथ्य दर्शाया गया है।

पण हे गाल्यूं आईन रांदज्यूं, ते मूँके सिकाइए।

पाण इस्क डेखारे लाडमें, मूँके कुडाइए॥२५॥

**शब्दार्थ-** पण-परन्तु, हे-यह, गाल्यूं-बातें, आईन-हैं, रांदज्यूं-खेल की, ते मूँके-इसलिये मुझे, सिकाइए-दुःखी करते हो, पाण-आप, इस्क-प्रेम, डेखारे-दिखा के, लाडमें-प्यार में, मूँके-मुझे, कुडाइए-बिलखाते हैं।

**अर्थ-** किन्तु ये सारी बातें इस खेल की हैं, इसलिये आप मुझे तरसा रहे हैं और अपने इश्क की पहचान कराने (दिखाने) के लिये प्रेम में मुझे बिलखा रहे हैं।

**भावार्थ-** "कुडाइए" शब्द का अर्थ "कुढ़ना" करना उचित नहीं है, क्योंकि "कुढ़ने" में ईर्ष्या का समावेश होता है। पवित्र प्रेम में विरह की पीड़ा विलखाती है और प्रेम में पीछे रह जाने पर लज्जा का अहसास कराती है।

मूं उमेदूं दिल में, धणी ज्यूं गडजण।

लाड पारण असांहिजा, आईन अगरयूं सजंण॥२६॥

**शब्दार्थ**—मूं—मेरी, उमेदूं—आशाएँ, धणी ज्यूं—प्रियतम से, गडजण—मिलने की है, लाड—प्यार, पारण—पूर्ण करने की, असांहिजा—हमारे, आईन—हैं, सजंण—प्रियतम को।

**अर्थ**— हे धनी! मेरे दिल में आपसे मिलने की प्रबल इच्छा है। मेरे इस प्रेम को पूर्ण करने के लिये आपके दिल में तो मिलने की इच्छा मुझसे अधिक होनी चाहिए।

**भावार्थ**— इस चौपाई में प्रेम भरी चतुराई से युक्ति द्वारा प्रियतम को प्रेम लुटाने के लिये निवेदन किया गया है।

अई सुणेजा जेडियूं, चुआं इस्क जी गाल।

हे सुध न अस्सां अर्स में, धणी केहडी साहेबी कमाल॥२७॥

**शब्दार्थ-** अंई-तुम, सुणेजा-सुनो, जेडियूं-सखियों, चुआं-कहती हूँ, इस्क जी-प्रेम की, हे सुध-यह खबर, अस्सां-हमें, धणी साहेबी-धनी की साहिबी, कमाल-कमाल की।

**अर्थ-** हे सखियों! सुनो! मैं तुम्हें प्रेम की बात सुनाती हूँ। हमें परमधाम में इस बात की जानकारी नहीं थी कि धनी की साहिबी (स्वामित्व, गरिमा) कितनी महान (कमाल की) है।

न सुध केहडो कादर, न सुध केहडी कुदरत।

हे सुध अर्स कायम जी, न सुध हक निसबत॥२८॥

**शब्दार्थ-** केहडो-कैसे हैं, कादर-सामर्थ्यवान, कुदरत-कारीगरी, कायम जी-अखण्ड की, हक-प्रीतम की।

**अर्थ-** परमधाम में हमें अक्षर ब्रह्म की कोई भी पहचान नहीं थी। शक्ति स्वरूपा योगमाया कैसी है। हमें तो अखण्ड परमधाम की भी सुध नहीं थी और धनी से अपने मूल सम्बन्ध की भी पहचान नहीं थी।

**भावार्थ-** कादिर (कादर) का तात्पर्य अक्षर ब्रह्म से है, क्योंकि इसका शाब्दिक अर्थ होता है – शक्ति स्वरूप, सामर्थ्यवान्। "कुदरत को माया कही" से स्पष्ट है कि कादिर की ही कुदरत होती है और हमें यह भी पहचान नहीं थी कि योगमाया का ब्रह्माण्ड उनकी ही कुदरत है जिसका स्वाप्निक रूप कालमाया है। परमधाम में रहकर भी हमें परमधाम की मारिफत (परमसत्य) की वास्तविक पहचान नहीं थी। यह सब कुछ तारतम वाणी से ही विदित हुआ है।

सुध न सुख कांधजा, सुध न धणी इस्क।

सुध न अस्सां लाडजी, केहडा पारे हक॥२९॥

**शब्दार्थ-** कांधजा-प्रियतम के, अस्सां-हमारे, लाडजी-प्यार को, केहडा-कैसे, पारे-पूर्ण करते हैं।

**अर्थ-** परमधाम में रहते हुए भी हमें धनी के अनन्त आनन्द और प्रेम की वास्तविक पहचान नहीं थी। हमें यह भी पता नहीं था कि श्री राज जी किस प्रकार हमारी प्रेममयी लीला (लाड-प्यार) को पूर्ण करते हैं (क्रियान्वित करते हैं)।

**भावार्थ-** श्री राज जी के हृदय में विद्यमान मारिफत स्वरूप इश्क ही सभी सखियों के अन्दर लीला कर रहा है, किन्तु यह रहस्य परमधाम में विदित नहीं था।

सुध न आसा उमेद, सुध न प्रेम प्रीत।

सुध न अर्स अरवाहों के, धणी रखियूं केही रीत॥३०॥

**शब्दार्थ-** आसा-इच्छा, अरवाहों के-आत्माओं को, धणी-प्रियतम ने, रखियूं-रखा, केही-कैसी, रीत-तरह से।

**अर्थ-** परमधाम में तो हमें यह भी पता नहीं था कि किसी से कोई आशा या उम्मीद रखने का आशय क्या होता है? प्रेम और प्रीति की वास्तविकता क्या है? हमें इस बात का भी वास्तविक बोध नहीं था कि धाम धनी हम अँगनाओं को किस प्रकार रखते हैं?

**भावार्थ-** जिस प्रकार यश में कीर्ति, पवन में वायु, सौन्दर्य में शोभा, और तेज में ज्योति बीज रूप से छिपी होती है, उसी प्रकार प्रेम में प्रीति का अस्तित्व होता है।



यहाँ यह संशय हो सकता है कि यह असम्भव सी बात है कि परमधाम में रहते हुए भी सखियों को यह पता नहीं चल सका कि धाम धनी हमें किस प्रकार अपने प्रेम की मधुरता में डुबोये रहते हैं?

इसका समाधान यह है कि धाम धनी के अथाह प्रेम में ब्रह्मांगनायें इतनी डूबी हुई थीं कि उन्हें इन बातों का जरा भी ज्ञान नहीं था। "रुहें बेनियाज थीं, बीच दरगाह बारे हजार" (खुलासा १७/४६) के कथन से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है।

**हे जे हितरूं गालियूं, केयूं इस्क जे कारण।**

**लाड कोड आसा उमेदूं, रुहन ज्यूं पारण॥३१॥**

**शब्दार्थ—** हे-यह, जे-जो, हितरूं-इतनी, गालियूं-बातें, केयूं-की हैं, इस्क जे-प्रेम के, कारण-वास्ते,

लाड-प्यार, कोड-हर्ष, पारण-पूर्ण करो।

**अर्थ-** धनी के अनन्त प्रेम की पहचान कराने के लिये ही मैंने इतनी बातें की हैं। अँगनाओं को प्रियतम के प्रेम और आनन्द की पूर्ण पहचान देने के लिये ही यह खेल बना है और तारतम वाणी का अवतरण हुआ है।

जेहेडो धणी पांहिजो, तेहेडी तेहजी रांद।

लाड कोड इस्क जा, तेहेडाई पारे कांध॥३२॥

**शब्दार्थ-** जेहेडो-जैसे, धणी-प्रियतम, पांहिजो-अपने हैं, तेहेडी-वैसे ही, तेहेजी-उनकी, रांद-खेल है, लाड-प्यार, कोड-हर्ष, इस्क जा-प्रेम का, पारे-पूर्ण कीजिये।

**अर्थ-** जिस प्रकार हमारे प्रियतम अक्षरातीत महानतम् हैं, उसी प्रकार यह खेल भी गहन है। इस प्रकार धाम

धनी अपनी अँगनाओं के लाड-प्यार और आनन्द को पूर्ण करते हैं।

**बड़ी गाल धणीयजी, लगी मथे आसमान।**

**आंऊं रे पाणी भूं सूकीयमें, खाधिंम डुब्यूं पांण॥३३॥**

**शब्दार्थ-** बड़ी-भारी, धणीयजी-प्रियतम की, लगी-पहुँची, मथे-ऊपर, आंऊं-मैं, रे पाणी-बिना पानी, भूं सूकीय-सूखी धरती, खाधिंम-खा रही हूँ, डुब्यूं-डुबकी, पांण-आप।

**अर्थ-** श्री राज जी की बातें इतनी महान गरिमा वाली हैं कि वे आकाश तक गयी हैं। मैं तो बिना जल वाले भवसागर की सूखी धरती में ही डुबकियाँ लगा रही हूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में अपने अहं के विसर्जन के साथ समर्पण के चरम बिन्दु को भी पार करने की एक झलक

दर्शायी गयी है, जो सभी सुन्दरसाथ के लिये प्रेरणादायी है।

जा सहूर करियां रूह से, त निपट गरई गाल।

चुआं हित हिन मूंह से, मूंजो खसम नूरजमाल॥३४॥

**शब्दार्थ-** सहूर-विचार, करियां-करती हूँ, रूह से-आत्मा से, त-तो, निपट-निश्चय, गरई-भारी, हित-यहाँ, हिन-इन, मूंह से-मुख से, मूंजो-मेरे, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** यदि मैं अपनी आत्मिक दृष्टि से विचार करती हूँ तो यह निश्चित होता है कि धाम धनी की अनन्त महिमामयी बातें बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इस संसार में मैं अतीव गौरव के साथ अपने मुख से यह बात कहती हूँ कि मेरे एकमात्र प्रियतम अक्षरातीत श्री राज जी ही हैं।

अई गाल सुणेजा जेडियूं, मूं चरई ज्यूं चंगी भत।

गाल कंदे फटी न मरां, जे कांध से निसबत॥३५॥

**शब्दार्थ-** अई-तुम, गाल-बात, सुणे-सुनो, जेडियूं-सखियों की, मूं-मैं तो, चरई-दीवाना, ज्यूं-जैसी हूँ, चंगी-अच्छी, भत-तरह, कंदे-करते, फटी-तुरन्त, मरां-मरी, के-करके, कांध-धनी, निसबत-सम्बन्ध।

**अर्थ-** हे सखियों! मुझ दीवानी की इस बात को अच्छी तरह से सुनो। जिस सर्वशक्तिमान, प्रेम के सागर अक्षरातीत से मेरा अखण्ड सम्बन्ध है, उनसे इश्क-रब्द के समय अपने प्रेम को बड़ा और उनके प्रेम को छोटा कहते समय मैं फटकर मर क्यों नहीं गयी।

**भावार्थ-** यद्यपि अखण्ड परमधाम में कोई मर तो नहीं सकता, किन्तु घोर प्रायश्चित की घड़ियों में इस प्रकार की भाषा प्रयोग की जाती है।

लाड कोड आसा उमेदूं, आंऊं चुआं मूं माफक।

पारण वारो मूं धणी, कायम अर्स जो हक॥३६॥

**शब्दार्थ-** आसा-चाहनाएँ, उमेदूं-इच्छाएँ, मूं-मेरे, माफक-लायक, पारण-पूर्ण करने, वारो-वाले, जो-के।

**अर्थ-** प्रियतम के प्रेम और आनन्द को पाने की जो मेरे मन में आशा (उम्मीद) है, उसकी बातें मैं अपने भावों के अनुकूल ही करती हूँ। इसे पूर्ण करने वाले एकमात्र मेरे धाम धनी ही हैं, जो अखण्ड परमधाम में विराजमान हैं।

जे आंई गाल विचारियो, रूहें मेडो करे।

त रही न सगों किएं रांदमें, हे कूडा वजूद धरे॥३७॥

**शब्दार्थ-** आंई-आप, विचारियो-विचारो, मेडो-मिलाप, करे-करके, त-तो, रही न-रह नहीं, सगों-सकती, किएं-किसी तरह से, रांदमें-खेल में, हे कूडा-

यह झूठा, वजूद-शरीर, धरे-धारण करके।

**अर्थ-** यदि सभी सखियाँ मिलकर मेरी इस बात का विचार करें, तो इस मायावी जगत् में अपने झूठे तनों को रख ही नहीं सकतीं (त्याग देंगी)।

**भावार्थ-** इस चौपाई का यह कथन घोर प्रायश्चित के स्वरों में कहा गया है। जिस अक्षरातीत के प्रेम को हम सबने मिलकर छोटा कहा था, वही अक्षरातीत हमारे अपराधों की तरफ ध्यान न देते हुए अपने प्रेम और आनन्द के रस से हमें सींच रहे हैं और पल-पल मेहर की छाँव तले रखे हुए हैं। हमारे इस दोष का क्या प्रायश्चित हो सकता है। चौपाई में कथित बात (गाल) शब्द का यही आशय है।

सहूर डियण मूं हियो, कठण केयांऊं निपट।

न तां विचार कंदे हिक हरफजो, फटी पोए न उफट॥३८॥

**शब्दार्थ-** सहूर-विचार, डियण-देने, हियो-हृदय, कठण-कठोर, केयांऊं-किया, निपट-निश्चय कर, न तां-नहीं तो, कंदे-करते, हिक-एक ही, हरफ-शब्द, जो-को, फटी-फटकर, पोए न-पड़ी नहीं, उफट-तुरन्त।

**अर्थ-** आपने मुझे तारतम वाणी का चिन्तन दिया, जिसने निश्चित रूप से मेरे हृदय को कुछ कठोर सा कर दिया। अन्यथा इश्क-रब्द के उन कठोर वचनों के एक शब्द का भी विचार करने पर मैं उसी क्षण फटकर गिर पड़ती (मृत्यु को प्राप्त हो जाती)।

**भावार्थ-** परमधाम में अपने प्रेम को बड़ा कहने के अपराध का विचार और शरीर-त्याग की बात इस संसार



में हो रही है। इस चौपाई में यही प्रसंग है, जबकि चौपाई ३५ में परमधाम में इन कठोर बातों को कहते ही शरीर-त्याग की बात कही गयी है। उन शब्दों की एक सामान्य झलक इस प्रकार है—

राजी करो दिखाए के, हम बैठे पकड़ कदम।

खिलवत ९/३७

सभ अंग डिनाऊं कठण, त रह्यो वंजे आकार।

न तां सुणी विचारी हे गालियूं, की रहे कांधा धार॥३९॥

**शब्दार्थ—** अंग-अंग को, डिनाऊं-दिया, रह्यो-रहा, वंजे-जाता है, आकार-शरीर, सुणी-सुनते, विचारी-विचार करते, गालियूं-बातें, की रहे-कैसे रहे, कांधा-प्रियतम के, धार-बिना।

**अर्थ—** आपने मेरे सभी अंगों (मन, चित्त, बुद्धि,

अहंकार) को कठोर बना दिया है इसलिये यह शरीर जीवित है, अन्यथा इन बातों को सुनकर विचार करने पर आपके बिना यह शरीर भला कैसे रह सकता है।

**इलम डिंनाऊं पांहिजो, मय निपट वडो विचार।**

**बका न चौडे तबकें, से डिंनो उपटे द्वार॥४०॥**

**शब्दार्थ-** डिंनाऊं-दिया, पांहिजो-अपना, मय-बीच में, निपट-निश्चिय ही, विचार-समझ है, बका-अखण्ड, चौडे-चौदे, तबकें-लोक में, डिंनो-दिये, उपटे-खोल।

**अर्थ-** आपने मुझे अपनी तारतम वाणी दी, जिसके अन्दर निश्चित रूप से महानतम ज्ञान है। चौदह लोक के इस ब्रह्माण्ड में किसी को भी उस अखण्ड परमधाम का बोध नहीं था, जिसका दरवाजा आपने तारतम ज्ञान से खोल दिया है।

विहारे ते विचमें, जो बका वतन।

करे निसबत हिन कांध से, असल कायम रूह तन॥४१॥

**शब्दार्थ-** विहारे-बैठाया, ते-उसके, विचमें-बीच में, करे-करके, हिन-इन, कांध से-धनी से, असल-मूल में, कायम-अखण्ड, रूह-आत्मा के, तन-स्वरूप है।

**अर्थ-** इस तारतम ज्ञान ने प्रियतम अक्षरातीत से हमारे मूल सम्बन्ध की पहचान करा दी है और हमें परमधाम के अन्दर उस मूल मिलावा में बैठा दिया है, जहाँ हमारी परात्म का तन धनी के चरणों में विद्यमान है।

हे इलम एहेडो आइयो, सभ दिल जी पूरण करे।

डेई इस्क मेडे कांध से, घर पुजाए नूर परे॥४२॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, एहेडो-ऐसा, आइयो-आया है, सभ-सम्पूर्ण, दिल जी-दिल की इच्छा, करे-करते हैं,

डेई-देकर, मेडे-मिलाता है, कांध से-प्रियतम से, पुजाए-पहुँचाता है, परे-पार।

**अर्थ-** हमारे पास यह ऐसा तारतम ज्ञान आया है, जो दिल की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करता है। यह इश्क देकर अक्षर ब्रह्म से भी परे परमधाम (रंगमहल) में पहुँचाता है और प्रियतम से मिलन कराता है।

**भावार्थ-** अक्षरधाम में अक्षर ब्रह्म का निवास है, जो सर्वरस सागर और यमुना जी के मध्य में है। सर्वरस सागर से दधि सागर तक अनन्त परमधाम ही है। अतः अक्षरधाम भी परमधाम के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

इस प्रकार चौपाई में "नूर" शब्द से तात्पर्य उस बेहद मण्डल से है, जिसके परे परमधाम है जहाँ अक्षर और अक्षरातीत के धाम हैं। वहाँ पहुँचकर हमारी आत्मा अपने प्रियतम को पा लेती है।

यदि यहाँ संशय किया जाये कि यमुना जी से पूर्व में ही अक्षरधाम है, जहाँ अक्षर ब्रह्म है और वहाँ इश्क की लीला नहीं होती, क्योंकि यदि वहाँ इश्क होता तो अक्षर ब्रह्म भी मूल मिलावा में पहुँच जाते। वे चाँदनी चौक से ही श्री राज जी का दर्शन क्यों करते?

इसका समाधान इस प्रकार है कि अक्षर और अक्षरातीत का स्वरूप एक ही है, मात्र लीला ही दो प्रकार की है। "स्वरूप एक है लीला दोए" (परिकरमा ३/९८) का यह कथन स्पष्ट रूप से प्रामाणिक है। लीला रूप में ही सत अंग अक्षर ब्रह्म चाँदनी चौक तक जाते हैं, अन्यथा उनकी अर्धांगिनी महालक्ष्मी जी को वही प्रेम और आनन्द प्राप्त होता है जो श्यामा जी सहित सखियों को प्राप्त होता है। श्री राजश्यामा जी, सखियाँ, अक्षर ब्रह्म, और महालक्ष्मी एक ही अद्वैत स्वरूप हैं।

इन्हें लौकिक दृष्टि से नहीं समझना चाहिए। परिकरमा  
१४/८७ में कहा गया है—

एक इन वचन का बसबसा, तबका रहता था मेरे दिल।  
लखमी जी का गुजरान, होत है बिध किन॥

व्यक्तिवाद की अन्धेरी पगडण्डियों पर भटकने वाले  
समाज को इस चौपाई में यह दिशा—निर्देश दिया गया है  
कि वे मात्र ब्रह्मवाणी के कथन को ही सर्वोपरि मानें, तभी  
उनकी आत्मा जाग्रत हो सकेगी।

**रूहें पाण न विचारियूं, हिन इलम संदो हक।**

**से की न करे पूरी उमेद, जे में न्हाए सक॥४३॥**

**शब्दार्थ—** रूहें—सखियों ने , पाण—अपने को,  
विचारियूं—विचार किया, हिन—इन, संदो—को, हक—  
सत्य, से—सो, की—क्यों, पूरी—पूर्ण किया, जे में—

जिसमें, न्हाए-नहीं है, सक-संशय।

**अर्थ-** ब्रह्मसृष्टियाँ स्वयं इस बात का विचार क्यों नहीं कर पा रही हैं कि धाम धनी का यह तारतम ज्ञान , जिसमें नाम मात्र का भी संशय नहीं है , उनकी इच्छाओं को पूर्ण क्यों नहीं करता है।

**धणी पांहिजो पांण के, विचारण न डे।**

**के के डींह हिन रांद में, करे थो रखण के॥४४॥**

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, पांहिजो-अपने, पांण-आप, के-को, विचारण-विचार करने, डे-देते हैं, के के-कितने, डींह-दिन, रांद-खेल के, में-बीच में, करे थो-करते हो, रखण के-रखने के लिए।

**अर्थ-** इसका उत्तर यह है कि धाम धनी स्वयं ही अँगनाओं को इस बात का विचार नहीं करने दे रहे हैं। वे

इस मायावी खेल में सबको कुछ दिन और रखना चाहते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में विशेष रूप से यह शिक्षा दी गयी है कि चिन्तन-मनन से रहित पाठ हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं कर सकता और आत्म-जाग्रति की राह भी नहीं दर्शा सकता।

मूँके अकल न इस्क, से पट खोल्याई पांण।

उघाड्यूं अंख्यूं रूहज्यूं, थेयम सभे सुजाण॥४५॥

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझे, से-वह, खोल्याई पांण-आपने खोला, उघाड्यूं-खोलकर, अंख्यूं-नेत्र, रूहज्यूं-आत्मा के, थेयम-हुई, सभे-सम्पूर्ण, सुजाण-जानकार।

**अर्थ-** मेरे पास न तो बुद्धि थी और न ही प्रेम था, किन्तु प्रियतम ने मेरे हृदय में तारतम ज्ञान का प्रकाश



करके मेरी आत्मिक दृष्टि खोल दी और मुझे सब कुछ विदित हो गया।

न तां केर आंऊं केर इलम, आंऊं हुइस के हाल।

पुजाइए हिन मजलके, मूं धणी नूरजमाल॥४६॥

**शब्दार्थ-** न तां-नहीं तो, केर-कौन (क्या), हुइस-हुई, के-कौन, पुजाइए-पहुँचाया, हिन-इन, मजल-स्थिति, मूं-मेरे, धणी-प्रियतम।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम श्री राज जी ने मुझे इस मन्जिल तक पहुँचा दिया है, अन्यथा मुझे इस बात की कोई जानकारी ही नहीं थी कि मैं कौन हूँ, यह तारतम ज्ञान क्या है, और पहले मेरी आत्मिक स्थिति (रहनी) क्या थी।

आंऊं हुइस कबीले के घर, ही गंदो वजूद धरे।

थेयम धणी नूरजमाल घर, जे दर नूर अचे मुजरे॥४७॥

**शब्दार्थ-** हुइस-हुई, कबीले-कुटुम्ब (परिवार), ही-यह, गंदो-झूठा, थेयम-हुआ, जे-जहाँ, दर-द्वार पर, नूर-अक्षर ब्रह्म, अचे-आते हैं, मुजरे-दर्शन के लिये।

**अर्थ-** मैं इस मायावी जगत के झूठे सम्बन्ध वाले परिवार में पञ्चभूतात्मक गन्दे शरीर को धारण किए बैठी थी। अब मेरे प्रियतम अक्षरातीत श्री राज जी हैं, जिनके रंगमहल के द्वार पर अक्षर ब्रह्म दर्शन करने जाते हैं।

**भावार्थ-** अपने मूल तन परात्म की भावना से ही इस चौपाई की पहली पंक्ति में भूतकाल का प्रयोग (थी) किया गया है, अन्यथा इस बात को कहते समय भी श्री इन्द्रावती जी (श्री मिहिरराज जी) का पञ्चभूतात्मक ही तन था।

**बाहेर मंझ अंतर, सभनी हंदे इस्क।**

**रुहअल्ला डिखारई, वडी दोस्ती हक।।४८।।**

**शब्दार्थ-** बाहेर-शरीर, मंझ-दिल, अंतर-आत्मा के, सभनी-सम्पूर्ण, हंदे-ठिकाना, रुहअल्ला-श्यामा जी ने, डिखारई-दिखाई, वडी-भारी, हक-प्रियतम की।

**अर्थ-** परमधाम में दृश्यमान लीला रूप सभी स्वरूपों के अन्दर, बाहर, और अन्य वस्तुओं में सर्वत्र प्रेम ही प्रेम (इश्क ही इश्क) भरा हुआ है। श्यामा जी ने तारतम ज्ञान से श्री राज जी से हमारे अखण्ड प्रेम के सम्बन्ध को भी दर्शा दिया है।

**भावार्थ-** परमधाम के सभी स्वरूपों (श्री राजश्यामा जी, सखियों, महालक्ष्मी आदि) के अन्दर और बाहर केवल प्रेम ही प्रेम (इश्क) है। इसी प्रकार इनसे भिन्न प्रतीत होने वाले २५ पक्षों (पुखराज, माणिक, लाल

चबूतरा आदि) में भी वही प्रेम भरा हुआ है, जो श्री राज जी के दिल से प्रवाहित हो रहा है। इस चौपाई में कथित "अंतर" शब्द का यही आशय है। "दोस्ती" का भाव परमधाम के अखण्ड प्रेम सम्बन्ध से है, लौकिक मित्रता से नहीं।

**मूं फिराक हिन धणी जो, मूंआं अगरो हिन धणी के।**

**आंऊं बेठिस धणी नजर में, सिधी न गडजां ते॥४९॥**

**शब्दार्थ-** मूं-मुझे, फिराक-वियोग, हिन-इन, जो-का, मूंआं-मुझसे, अगरो-अधिक, धणी के-प्रियतम को है, बेठिस-बैठी हूँ, नजर-सामने, में-बीच में, गडजां-मिलती हूँ, ते-उनसे।

**अर्थ-** यद्यपि आप से मेरा वियोग अवश्य है, किन्तु आपको मुझसे भी अधिक वियोग है, क्योंकि मैं आपके

सामने ही बैठी हुई हूँ, फिर भी मैं आपसे सीधे नहीं मिल सकती।

**भावार्थ-** इस चौपाई में बहुत ही चतुराई भरे शब्दों में श्री इन्द्रावती जी ने हास्यपूर्ण ढंग से अपने साथ-साथ धनी के भी विरह को दर्शाया है। श्री इन्द्रावती जी का कथन है कि इस मायावी जगत में आने के कारण भले ही मैं आपको नहीं देख पा रही हूँ और न आपसे बातें ही कर पा रही हूँ, किन्तु मैं आपके सामने ही चरणों में बैठी हुई हूँ और आप सर्वशक्तिमान होते हुए भी मुझसे साक्षात् बातें नहीं कर सकते, क्योंकि मेरे मूल तन पर फरामोशी (बेसुधी) है। इस प्रकार मुझसे अधिक आपको विरह है, क्योंकि न दिखने पर न बोल पाना तो सह्य है, किन्तु दिखते रहने पर भी न बोल पाना असह्य है। आगे की दोनों चौपाइयों में भी इसी प्रकार का भाव भरा है।

मूं फिराक धणी न सहे, मूंके बिहारयाई तरे कदम।

धणी पांहिजी रूहन रे, रही न सके हिक दम॥५०॥

**शब्दार्थ-** मूं-मेरा, फिराक-बिछोहा, धणी-प्रियतम, सहे-सहते, मूंके-मुझे, बिहारयाई-बैठाकर, तरे-नीचे, कदम-चरणों में, पांहिजी-अपने, रूहन-आत्माओं को, रे-बिना, रही-रह, सके-सकते हैं, हिक-एक, दम-क्षण भी।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप मेरा वियोग कदापि सहन नहीं कर सकते, इसलिये तो आपने अपने चरणों में मुझे बैठा रखा है। आप तो अपनी अँगनाओं के बिना एक पल भी नहीं रह सकते।

मूं धणी रे घारई, मूंजी सभ उमर।

इस्क धणी या मूंह जो, पस जा पटंतर॥५१॥

**शब्दार्थ-** मूं-मैंने, धणी-प्रियतम के, रे-बिना, घारई-गँवाई, मूंजी-मेरी, सभ-सारी, या-और, मूंह जो-मेरा, पस-देखो, जा-जो, पटंतर-अन्तर है।

**अर्थ-** हे मेरे प्रियतम! मैंने आपके वियोग में अपनी सारी उम्र बिता दी है। अब आप स्वयं ही मेरे प्रेम और अपने प्रेम का अन्तर (भेद) समझ लीजिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में बहुत ही चतुराई और व्यंग्यपूर्ण तरीके से श्री इन्द्रावती जी ने अपने प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित किया है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धनी! मेरा यह तन तो पञ्चभूतात्मक है और आपके विरह में डूबने से यह वृद्धावस्था से जर्जर हो चुका है (उम्र खो चुका है), किन्तु आप तो नूरी शरीर वाले हैं। मेरे वियोग में आप कभी वृद्ध हो ही नहीं सकते। इस प्रकार निश्चित रूप से इस खेल में मेरा प्रेम बड़ा हो गया है, क्योंकि मैंने

आपको पाने के लिये विरह में अपने तन को विनाश के कगार पर पहुँचा दिया है, किन्तु आप तो नहीं पहुँचा सकते।

**महामत चोए मेहेबूब जी, अस्सां इस्क बेवरो ई।**

**मूंजे आंजे दिल जी, आंऊं कंदिस अर्ज बेई॥५२॥**

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, मेहेबूब जी-प्रियतम, अस्सां-हमारे, बेवरो-विवरण, ई-ऐसे, मूंजे-मेरे, आंजे-आपके, दिल जी-दिल की, कंदिस-करूँगी, अर्ज-विनती, बेई-दूसरी।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे मेरे प्रियतम! हमारे प्रेम का यही विवरण है। अब मैं अपने दिल का और आपके दिल का दूसरे प्रकार से विवरण देती हूँ (निरूपण करती हूँ, वास्तविकता दर्शाती हूँ)।

**प्रकरण ॥६॥ चौपाई ॥२४५॥**



## झगड़े जो प्रकरण

### झगड़े का प्रकरण

प्रेम की लीला सबसे न्यायी होती है। लौकिक विवादों से जहाँ मन में कड़वाहट घुलती है, वहीं प्रेम के विवाद से और अधिक मिठास का संचार हो जाता है। इस प्रकरण में सब आत्माओं की प्रतिनिधि (वकील) स्वरूपा श्री इन्द्रावती (महामति) जी ने स्वयं को वादी तथा श्री राज जी को प्रतिवादी बनाया है। न्यायाधीश भी उन्हीं को बनाया है तथा संविधान के रूप में है परमधाम की ब्रह्मवाणी। न्यायालय का स्थान है यह जागनी ब्रह्माण्ड। वादी की ओर से प्रस्तुत किये गये प्रमुख विचारणीय विषय (मुद्दे) इस प्रकार हैं—

१. आप मुझे दर्शन दीजिए।
२. मुझे अपना दिल भी दीजिए।

३. मीठी-मीठी बातें सुनाइए।

हिक मंगा दीदार तोहिजो, बी मिठडी गाल सुणाए।

कांध मूंहजा दिल डेई, मूसे हित गालाए॥ सिंधी ७/९

श्री महामति जी के शब्दों में इस मनभावन विवाद की अति मोहनी छवि सूक्ष्म रूप से यहाँ प्रस्तुत है।

वलहा जे आंऊं तोके वलही, गिनी बिठे तरे कदम।

हे मूं दिल डिंनी साहेदी, तूं मूं रे रहे न दम॥१॥

**शब्दार्थ-** वलहा-प्रियतम, जे-जो, तोके-आपको, वलही-प्यारी हूँ, गिनी-लेकर, बिठे-बैठे हैं, तरे-नीचे, कदम-चरणों के, हे-यह, मूं-मेरे, दिल-दिल ने, डिंनी-दिया, साहेदी-साक्षी, तूं-आप, मूं रे-मेरे बिना, रहे-रहते हैं, दम-क्षणमात्र।

**अर्थ-** मेरे प्राणप्रियतम! मैं तो आपकी प्यारी अँगना हूँ।

मैं मूल मिलावा में आपके चरणों में बैठी हुई हूँ। मेरा दिल यह साक्षी देता है कि आप मेरे बिना एक पल भी नहीं रह सकते।

**डिंनी बी साहेदी इलम, त्री तोहिजे इस्क।**

**चौथी साहेदी रसूल, बियूं कई साहेदियूं हक॥२॥**

**शब्दार्थ-** बी-दूसरी, इलम-ज्ञान से, बियूं-दूसरी, कई-कितने, साहेदियूं-साक्षियाँ, हक-सत्य हैं।

**अर्थ-** अपने इस वाद को प्रस्तुत करते समय दूसरी साक्षी मैं आपके तारतम ज्ञान की देती हूँ। तीसरी साक्षी आपके इश्क की है। चौथी साक्षी सन्देशवाहक के रूप में रसूल साहब की है। इनके अतिरिक्त अन्य भी कई सच्ची साक्षियाँ हैं।

**भावार्थ-** मुहम्मद साहब और शुकदेव मुनि, दोनों ही

सन्देशवाहक के रूप में हैं। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "अन्य साक्षियों" का भाव धर्मग्रन्थों एवं युक्तियों से दी जाने वाली साक्षियाँ हैं।

**तोहिजे इलमें मूँके ई चयो, ही रांद केई आं कारण।**

**लाड कोड आसां उमेदूं, से सभेई पारण॥३॥**

**शब्दार्थ-** तोहिजे-आपके, इलमें-ज्ञान ने, मूँके-मुझे, ई चयो-यह कहा, ही रांद-यह खेल, केई-किया, आं कारण-तुम्हारे लिये, कोड-हर्ष, उमेदूं-इच्छाएँ, से-वह, सभेई-सम्पूर्ण, पारण-पूर्ण कीजिए।

**अर्थ-** हे धनी! आपका तारतम ज्ञान मुझसे यह कहता है कि यह खेल हमारे लिये ही बनाया गया है। धनी से प्रेम और आनन्द पाने की जो हमारी आशायें (उम्मीदें) हैं, वे अवश्य ही पूर्ण होंगी।

बेई न जरे जेतरी, तोहिजे दिलमें गाल।

लाड उमेदूं रूह दिलज्यूं, से तूं पूरे नूरजमाल॥४॥

**शब्दार्थ-** बेई-दूसरी, जरे-किंचित्, जेतरी-जितनी, तोहिजे-आपके, गाल-बात, रूह-आत्मा के, दिलज्यूं-दिल की, से-वह, तूं-आप, पूरे-पूर्ण कीजिए।

**अर्थ-** हे प्राणवल्लभ! आत्माओं के दिल में आपसे प्रेम पाने की जो इच्छा है, उसे आप अवश्य पूर्ण करते हैं। आपके दिल में तो इसके (लाड पालने के) अतिरिक्त अन्य कोई बात ही नहीं होती।

हे चियम तिर जेतरी, आईन अलेखे अपार।

अस्सां सिकण रहे के गालजी, सभ तूही करणहार॥५॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, चियम-कही, तिर-जरा, जेतरी-जितनी, आईन-है, अलेखे-अनगिनती, अस्सां-हम

को, सिकण-चाहना, रहे-रहती है, के-कौन, गालजी-बात की, सभ-सम्पूर्ण, तूही-आप ही, करणहार-करने वाले हो।

**अर्थ-** यह तो मैंने तिल मात्र ही कहा है। हमारी इच्छाएँ तो अनन्त हैं। जब सब कुछ आप ही करने वाले हैं, तो हमारी किसी भी बात की इच्छा कैसे अधूरी रह सकती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में इच्छाओं को अनन्त कहने का तात्पर्य मायावी इच्छाओं से नहीं है। आत्मा के अन्दर मात्र धनी के प्रेम, आनन्द, ज्ञान, अखण्ड सौन्दर्य के दर्शन आदि से सम्बन्धित ही इच्छायें उत्पन्न होती हैं। इनकी पूर्ति हो जाने पर भी इनमें डूबे रहने की भावना हमेशा बनी रहती है, इसलिये इन्हें अनन्त (अपार) कहा गया है। लौकिक इच्छायें (धन, सन्तान, प्रतिष्ठा, भोग

आदि) माया (सत्व, रज, तम) के कारण जीव के अन्तःकरण में उत्पन्न होती हैं। इनका आत्मा और धाम धनी से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

**कांध डे तूं हे पडूत्तर, हिन रांदमें बेही।**

**न तां वडा लाड मूंहजा, की पारीने सेई॥६॥**

**शब्दार्थ-** कांध-धनी, डे-देओ, तूं-आप, हे-यह, पडूत्तर-जबाब, हिन-इस, रांद-खेल, में-बीच में, बेही-बैठकर, न तां-नहीं तो, वडा-भारी, लाड-प्यार, मूंहजा-मेरे जो है, की-कैसे, पारीने-पूर्ण करोगे, सेई-सोई।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आप मेरी इस बात (प्रश्न) का उत्तर दीजिए कि हमारे दिल में आपका बहुत अधिक प्यार पाने की जो तीव्र इच्छा है, उसे इस खेल में आकर

आप कैसे पूर्ण करेंगे?

**भावार्थ-** यद्यपि धाम धनी इस खेल में भी ब्रह्मसृष्टियों के धाम हृदय में ही विराजमान हैं, फिर भी विरह-प्रेम की अवस्था में इसी प्रकार (परमधाम से आने) का कथन किया जाता है।

हुइयूं आसा उमेदूं वडियूं, से थक्यूं विच हित।

मूं अडां पसो न सुणो गालडी, हांणे आंऊं चुआं के भत॥७॥

**शब्दार्थ-** हुइयूं-हुई, आसा-आशाएँ, उमेदूं-चाहनाएँ, वडियूं-भारी, से-यह, थक्यूं-रह गई, विच-बीच में, हित-यहाँ ही, मूं-मेरे, अडां-तरफ, पसो-देखते हैं, न-नहीं, सुणो-सुनती, गालडी-बातें, हांणे-अब, आंऊं चुआं-मैं कहूँ, के भत-किस तरह से।

**अर्थ-** आपसे तो हमें बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं, किन्तु



आप तो इतने में ही थक गये। आप इस समय न तो मेरी ओर देख रहे हैं और न ही मेरी बात सुन रहे हैं। अब मैं किस प्रकार आपसे अपनी बातें कहूँ?

तू की पारीने वडियूं, जे हितरी न थिए तोह।

फिरी फिरी मंगाए न डिए, हे के सिर डियां डोह॥८॥

**शब्दार्थ-** तू-आप, की-कैसे, पारीने-पूर्ण करोगे, वडियूं-भारी, जे-जो, हितरी-इतनी ही, न-नहीं, थिए-होती, तोह-आपसे, फिरी फिरी-बार बार, मंगाए-माँगने पर भी, न-नहीं, डिए-देते हो, हे-यह, के-किसके, सिर-ऊपर, डियां-देऊँ, डोह-दोष।

**अर्थ-** जब आप इतना भी नहीं कर सकते, अर्थात् न तो मेरी ओर देखते हैं और न बातें ही करते हैं, तो आप हमारी बड़ी-बड़ी इच्छाओं को किस प्रकार पूर्ण करेंगे?

आप तो बारम्बार माँगने पर भी नहीं देते हैं। ऐसी अवस्था में मैं किसको दोष दूँ?

**भावार्थ-** सम्पूर्ण सिन्धी ग्रन्थ में श्री इन्द्रावती जी सुन्दरसाथ का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। इसलिये जहाँ भी बातें न करने, दर्शन न देने आदि का प्रसंग है, वहाँ सुन्दरसाथ के लिए ही कहा हुआ मानना चाहिए।

हिक मंगां दीदार तोहिजो, बी मिठडी गाल सुणाए।

कांध मूंहजा दिल डेई, मूसे हित गालाए॥९॥

**शब्दार्थ-** हिक-एक, मंगां-माँगती हूँ, दीदार-दर्शन, तोहिजो-आपका, बी-दूसरी, मिठडी-मधुर, गाल सुणाए-बात सुनाइये, कांध-प्रियतम, मूंहजा-मेरे को, दिल-दिल, डेई-देकर, मूसे-मुझसे, हित-यहाँ ही, गालाए-बातें कीजिए।

**अर्थ-** हे प्रियतम! एक तो मैं आपका दर्शन चाहती हूँ। मेरी दूसरी इच्छा यह है कि आप मुझे मीठी-मीठी बातें सुनाइए। इसके अतिरिक्त मेरी यह भी चाहना है कि आप इसी संसार में मुझे अपना दिल देकर प्रेम भरी बातें कीजिए।

हांणे वड्यूं उमेदूं अगियां, की पूरयूं कंने कांध।

हांणे पेरे लगी मंगां एतरो, पाए गिचीमें पांध॥१०॥

**शब्दार्थ-** हांणे-अभी, वड्यूं-भारी, उमेदूं-चाहना, अगियां-आगे, की-कैसे, पूरयूं-पूर्ण, कंने-करेंगे, कांध-प्रियतम, हांणे-अब, पेरे-चरणारबिंद, लगी-लगके, एतरो-इतना, पाए-डालकर, गिची-गले, में-बीच में, पांध-पल्ला, पकड़ा।

**अर्थ-** हे धनी! भविष्य में तो आपसे मेरी बड़ी-बड़ी

आशायें हैं। आप उन्हें कैसे पूर्ण करेंगे? अब मैं अपने गले में कपड़ा डालकर और आपके चरण पकड़कर इन तीन माँगों को माँग रही हूँ।

**भावार्थ-** अपने सम्पूर्ण अहंकार का परित्याग करके ही किसी से कोई भी वस्तु माँगी जाती है। गले में कपड़ा डालना इसी भाव का द्योतक (परिचायक) है।

हे गाल आए थोरडी, की हेडी वडी केइए।

आंऊं कडीं न रहां दम तोरे, से विसरी की वेइए॥११॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, गाल-बात, आए-है, थोरडी-थोड़ी सी, की-क्यों, हेडी-यह, वडी-भारी, केइए-करते हैं, आंऊं-मैं, कडीं न-कभी भी नहीं, रहां-रह सकती हूँ, दम-पल मात्र, तोरे-आपके बिना, से-वह, विसरी-भूल, की वेइए-कैसे गये।

**अर्थ-** इन तीनों इच्छाओं को पूर्ण करने की यह बात तो बहुत छोटी सी है। आपने इसे इतना भारी क्यों कर दिया? मैं तो कभी भी आपसे एक पल भी अलग नहीं रह सकती। आप इस बात को क्यों भूल जाते हैं?

**मूँके कुछाइए निद्रमें, तूं पाण जागे थो।**

**जे बांझाइए मूं वलहा, त तो इस्क अचे डो॥१२॥**

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझसे, कुछाइए-बुलाते, निद्र-नींद के, में-बीच में, तूं-तुम, पाण-आप, जागे-जाग्रत, थो-हैं, जे-जो, बांझाइए-कलपाते हैं, मूं-मुझे, वलहा-प्यारे, त तो-तब तो, अचे-आता है, डो-दोष।

**अर्थ-** हे प्रियतम! मैं माया की नींद में हूँ तो आप मुझे बुला रहे हैं, जबकि आप तो जाग्रत हैं। यदि आप मुझे बिलखाते (कलपाते) हैं, तो आपके प्रेम (इश्क) में दोष

लगता है।

**भावार्थ-** नींद में तो बेसुधि रहती है। ऐसी अवस्था में यदि किसी को अपने आत्म-स्वरूप का बोध न हो, तो भला उसका क्या दोष है? प्रेमी (आशिक) अपने प्रेमास्पद (माशूक) का बिलखना सहन नहीं कर सकता। यदि ऐसी स्थिति बनती है, तो यह निश्चित है कि इसके प्रेम में कहीं न कहीं कमी (दोष) है। श्री इन्द्रावती जी इसी युक्ति को इस मुकदमे में प्रस्तुत कर रही हैं।

तूं भाइयूं बेठयूं मूं कंने, माधा मूं नजर।

जे दिल हिनीजा न्हारिए, त हे विलखे थ्यूं रे वर॥१३॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, भाइयूं-जानते हैं, बेठयूं-बैठी हैं, मूं-मेरे, कंने-पास में, माधा-आगे, नजर-सामने, जे-जो, हिनीजा-इनके, न्हारिए-देखिए, त हे-तो यह,

विलखे थ्यूं-तड़प रही हैं, रे-बिना, वर-पति।

**अर्थ-** आप तो यही जानते हैं कि मेरी अँगनायें मेरी नजरां (दृष्टि) के सामने ही मेरे आगे, पास में बैठी हुई हैं। किन्तु यदि आप इनके दिल (हृदय) की ओर देखें, तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि ये तो आपका प्रेम न मिलने से बिलख रही हैं (जोर-जोर से रो रही हैं)।

**भावार्थ-** परमधाम में वहदत (एकत्व) और इश्क होने से वहाँ विरह का रोना-धोना तो नहीं हो सकता, किन्तु इस ब्रह्माण्ड में आत्माओं का जीव विरह की जिस स्थिति से गुजरता है, आत्मा उसे द्रष्टा होकर देखती है और उसका बोध परात्म के दिल को होता है, जिसका भाव उनके चेहरे पर भी देखा जाता है। इसी तथ्य के अनुकूल सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने कहा था कि "शाकुण्डल और शाकुमार के मूल तन परमधाम में हँस

रहे हैं, क्योंकि इन्होंने अभी दुःख की लीला नहीं देखी है।" सखियों के बिलखने को भी इसी सन्दर्भ में देखना चाहिए।

**हिक लेखे मूं न्हारियो, मूं न्हाए गुन्हे जो पार।**

**त रूसी रहे मूंसे वलहो, मूंके करे गुन्हेगार॥१४॥**

**शब्दार्थ-** हिक-एक, लेखे-हिसाब से, न्हारियो-देखा, न्हाए-नहीं है, गुन्हे जो-दोषों का, पार-शुमार, त-तो, रूसी-गुस्से होकर, रहे-रहे हैं, मूंसे-मुझसे, वलहो-प्रियतम, मूंके-मेरे को, करे-करके, गुन्हेगार-दोषित।

**अर्थ-** हे प्रियतम! मैंने एक हिसाब (ऑंकलन) लगाकर देखा तो मुझे यह ज्ञात हुआ कि मेरे दोषों (गुनाहों) की तो कोई सीमा ही नहीं है। इसलिये मैं सोचती हूँ कि सम्भवतः आप मुझे अपराधी जानकर मुझसे रूठे हुए हैं।



**द्रष्टव्य-** हास-परिहास (हँसी-मजाक) की भाषा में श्री इन्द्रावती जी का यह कथन बहुत ही मनमोहक है।

**अंई विचारे न्हारजा, आंहिजे मूंहजा वैण।**

**तांजे असी विसरयां, त पण आंहिजा सैण॥१५॥**

**शब्दार्थ-** अंई-आप, विचारे-विचार करके, न्हारजा-देखिए, आंहिजे-आपके, मूंहजा-मुखारविंद से, वैण-वचन, तांजे-कदाचित्, असी-हम, विसरया-भूल गये, त-उस पर, पण-भी, आंहिजा-आपके, सैण-सज्जन।

**अर्थ-** आप अपने मुखारविन्द से कहे हुए वचनों का विचार करके देखिए। कदाचित् यदि हम सभी माया में भूल भी गयी हैं, तो भी (किन्तु) आप तो हमारे प्रियतम (पति) हैं।

**भावार्थ-** "पति" शब्द का अर्थ होता है- पालन करने

वाला। इसी प्रकार "प्रियतम" का अर्थ होता है – प्रेम करने वाला। प्रियतम या पति की शोभा को धारण करने वाला यदि अपनी प्रियतमा या अपनी अर्धांगिनी का परित्याग करता है, तो वह निश्चित रूप से दोषयुक्त कहा जायेगा। श्री इन्द्रावती जी इसी युक्ति को प्रस्तुत कर रही हैं। धनी के कहे हुए वचन वाणी में निहित हैं, जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि "तुम रुहें मेरे तन हो।" क्या कोई अपने ही तन का परित्याग करता है?

**मूँके इलम डेई पांहिजो, केइए खबरदार।**

**से न्हारिम जडे सहूरसे, त कांध आंऊं न गुन्हेगार॥१६॥**

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझे, डेई-देकर, पांहिजो-अपना, केइए-किया, खबरदार-जाग्रत, से-वह, न्हारिम-देखा, जडे-जब, सहूरसे-विचार कर, त-तो, कांध-हे

प्रियतम, आंऊं-मैं, न-नहीं हूँ।

**अर्थ-** हे धनी! आपने मुझे अपना तारतम ज्ञान देकर सावधान कर दिया है। जब मैं आपकी ब्रह्मवाणी को गहन चिन्तन की दृष्टि से देखती हूँ तो यह स्पष्ट होता है कि मैं दोषी नहीं हूँ।

**भावार्थ-** अंग-अंगी, प्रिया-प्रियतम का वैसे ही एक समान स्वरूप होता है, जैसे सूर्य और उसकी किरणों तथा सागर और उसकी लहरों का होता है। यदि स्वयं अक्षरातीत निर्दोष हैं, तो उनकी अँगरूपा अँगनाओं को किस आधार पर दोषी ठहराया जा रहा है?

धणी तो डिंनी निद्रडी, ते विसरया सभ की।

जीं नचाए तीं नचियूं, कुरो करियूं अस्सीं॥१७॥

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, तो-आपने, डिंनी-दिया,

निद्रडी-नींद, ते-तो, विसरया-भूले, सभ की-सब कुछ, जीं-जैसे, नचाए-नचाते हैं, तीं-वैसे, नचियूं-नाचती हूँ, कुरो-क्या, करियूं-करें, अस्सीं-हम।

**अर्थ-** मेरे प्राणाधार! आपने हमें माया की नींद दे दी है, जिसमें हम सब कुछ भूल गयी हैं। अब तो आप जैसा नचाते हैं, वैसे ही हम नाचती हैं। इसके अतिरिक्त हम और कर भी क्या सकती हैं।

**भावार्थ-** "जैसे आप नचायेंगे, वैसे ही हम नाचेंगी" का कथन एक मुहाविरा है, जिसका तात्पर्य है - जैसा आपका निर्देश होगा, हम वैसा ही करेंगी।

अस्सां इस्क निद्रडी विसारियो, अची मय हिन रांद।

इस्क तोहिजो डिखारियो, पस मूंहजा कांध॥१८॥

**शब्दार्थ-** अस्सां-हमारा, निद्रडी-नींद में, विसारियो-

भुलाया, अची-आकर, मय-बीच में, हिन-इन, रांद-  
खेल के, तोहिजो-आपके, डिखारियो-देखाया, पस-  
देखिए, मूंहजा-मेरे, कांध-प्रियतम।

**अर्थ-** हे प्रियतम! इस खेल में आने पर माया की नींद  
ने हमारे इश्क (प्रेम) को हमसे भुला दिया, अर्थात् हम  
अपने प्रेम से अलग हो गयी हैं (प्रेम को भूल गयी हैं)।  
किन्तु देखिए कि इस नींद (माया) में आने के कारण हमें  
आपकी तारतम वाणी प्राप्त हुई, जिससे हमें आपके इश्क  
की पहचान हो गयी।

तनडा असांजा तो कंने, पण दिलडा असांजा कित।

से की फिकर न करयो, के हाल मूंहजो चित॥१९॥

**शब्दार्थ-** तनडा-शरीर, असांजा-हमारा, तो-आपके,  
कंने-पास है, पण-परन्तु, दिलडा-दिल, असांजा-

हमारा, कित-कहाँ है, से-वह, की-क्यों, फिकर-विचार, करयो-करते हैं, के हाल-कैसा हाल है, मूंहजो-मेरे, चित-चित्त की।

**अर्थ-** हमारा मूल तन तो आपके पास मूल मिलावा में ही है, किन्तु हमारा दिल कहाँ है? इस बात की चिन्ता आप क्यों नहीं करते कि हमारे चित्त (दिल) का हाल (दशा) क्या है?

**भावार्थ-** स्वप्न देखने वाले या विचारों में गहराई से डूबे हुए व्यक्ति का तन और दिल (द्रव्य रूप से) तो वहीं होता है, किन्तु उसका प्रतिबिम्बित या भावात्मक रूप कहीं और क्रियाशील रहता है। जब तक यह प्रक्रिया चलती रहती है, तब तक उसे यही पता होता है कि वह वहाँ है जहाँ के भाव में वह डूबा हुआ है। उस समय उसे अपने मूल तन या दिल का जरा भी भान नहीं होता।

स्वप्न के टूटने या विचार-सागर से अलग होने पर ही उसे अपनी वास्तविकता का अहसास होता है कि अरे! मैं तो यहीं पर था। ठीक यही स्थिति इस खेल की भी है।

जिस प्रकार, स्वप्न या विचारों में खोया हुआ व्यक्ति कभी हँसता है, तो कभी रोता है, और कभी चिन्तित या भयभीत दिखायी देता है, उसी प्रकार परात्म का तन अपने प्रतिबिम्बित (स्वाप्निक) तन द्वारा इस खेल में है, जिसे आत्मा या सुरता का तन कहा गया है। उसका दिल भी आत्मा के इसी तन में कार्य कर रहा है और जीव की दुःख से भरी लीला को देखकर उसका अनुभव कर रहा है। इसी को दुःख देखना कहा गया है। निःसन्देह परात्म या आत्मा का तन दुःख का भोग तो नहीं कर रहा है, किन्तु दिल अवश्य उस दुःख की लीला को देख रहा है। इस चौपाई तथा आगे की चौपाइयों में यही बात दर्शायी

गयी है।

डुखडा न डिसे आकार, दिलडा डुख पसंन।

से डुख डिसे दिल रांदमें, डुख न बकामें तन॥२०॥

**शब्दार्थ-** डुखडा-दुख, डिसे-देखता, आकार-शरीर, दिलडा-दिल ही, डुख-दुःख, पसंन-देखता है, से-वह, रांदमें-खेल में, बका-अखण्ड, तन-शरीर को।

**अर्थ-** शरीर कभी दुःख को नहीं देखता है। दुःख को दिल ही देखता (अनुभव करता) है। हमारा दिल इस खेल में दुःख को देख रहा है। अखण्ड परमधाम के तनों में कोई दुख नहीं है।

**भावार्थ-** शरीर को साधन बनाकर ही दिल सुख या दुःख का अनुभव करता है। निर्जीव शरीर की आँखें या जिह्वा कोई भी कार्य नहीं कर सकतीं। इसी प्रकार हमारी



परात्म के दिल ने ही प्रतिबिम्बित रूप में आत्मा का स्वरूप धारण किया है और उसके माध्यम से इस संसार की दुःखमयी लीला को देख रहा है।

**दिल असांजा सोणेमें, से था डुख पसंन।**

**से पसो था नजरों, जे गुजरे दिल रूहन॥२१॥**

**शब्दार्थ-** असांजा-हमारा, सोणे-स्वप्न, से था-वह है, पसंन-देखता, पसो था-देखते हैं, नजरों-नेत्रों से, जे-जो, गुजरे-बीत रही हैं, दिल-दिल में, रूहन-सखियों के।

**अर्थ-** हमारा दिल (प्रतिबिम्बित रूप से) इस स्वप्न के संसार में है और इस दुःख भरी लीला को देख रहा है। सखियों के दिल में जो दुःख की लीला देखी जा रही है, उसे आप भी अपनी दृष्टि से देखकर सहन कर रहे हैं,

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में शिकायत भरे अन्दाज में यह कथन किया गया है कि आप हमारे दिल को दुःख देखते हुए कैसे सहन कर पा रहे हैं? आशिक तो अपने माशूक को किसी भी स्थिति में दुःख का अनुभव करने ही नहीं देता।

डिंनी असांके निद्रडी, इस्क न रई सांजाए।

आं जागंदे प्यारयूं पांहिज्यूं, तो डिन्यूं की भुलाए॥२२॥

**शब्दार्थ-** डिंनी-दिया, असांके-हमको, निद्रडी-नींद, रई-रही, सांजाए-पहचान, आं-आपके, जागंदे-जागते हुए, प्यारयूं-सखियों, पांहिज्यूं-अपनी को, तो-आपने, डिन्यूं- दिया, की-क्यों, भुलाए-भुला दिया।

**अर्थ-** आपने हमें इस माया की नींद में डाल दिया ,

जिससे हमें आपके और अपने इश्क की पहचान नहीं रह गयी है। आप तो जाग्रत हैं, फिर भी आपने अपनी प्यारी अँगनाओं को क्यों भुला दिया?

**डोह न अचे सुतडे, जागंदे मथें डोह।**

**असीं दुख डिसूं आं डिसंदे, की चोंजे आसिक सो॥२३॥**

**शब्दार्थ-** डोह-दोष, अचे-आता है, सुतडे-सोते हुए, मथें-ऊपर हैं, असीं-हम, डिसूं-देखते हुए, आं डिसंदे-आपके देखते हुए, की चोंजे-कैसे कहिए, आसिक-प्रेमी, सो-वह।

**अर्थ-** सोने वालों को दोष नहीं लगता, जागने वाले को ही दोषी ठहराया जाता है। यदि आपके देखते हुए ही अर्थात् आपके सामने ही हम सब अँगनायें दुःख देखती हैं, तो आप आशिक (प्रेमी) कैसे कहलायेंगे?

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में श्री महामति जी ने प्रबल युक्तियों और तर्कों से अपने पक्ष को प्रस्तुत किया है। आगे की चौपाइयों में भी यही स्थिति है।

**से की विचार न करयो, वडो आंजो इस्क।**

**मासूक केयां रूहन के, को न भजो असांजी सक॥२४॥**

**शब्दार्थ-** से-वह, की-क्यों, करयो-करते हैं, वडो-भारी, आंजो-आपका, केयां-करके, रूहन के-सखियों की, को-क्यों, भजो-मिटाने हो, असांजी-हमारी।

**अर्थ-** जब आपका इश्क बड़ा है, तो आप इस पूर्वोक्त बात का विचार क्यों नहीं करते ? आपने तो हम आत्माओं को अपनी प्रियतमा (माशूक) कहा है। फिर भी इस सम्बन्ध में उठने वाले हमारे संशयों को क्यों नहीं मिटा देते?

**भावार्थ-** आशिक वही है, जो अपने मासूक से अपने दिल में कोई पर्दा न करे। सनंध ३६ / ५६ में कहा गया है-

जिन कोई कहे पट बीच में, मासूक और आसिक।

कबू आसिक परदा न करे, यों कहया मासूक हक।।

इसी प्रकार श्रृंगार २० / १०३ का कथन है-

आसिक मासूक दो अंग, दोऊ इस्कें होत एक।

तो आसिक मासूक के दिल को, क्यों न कहे गुझ विवेक।।

श्री महामति जी को धाम धनी से यही प्रेम भरी शिकायत है कि आपकी अर्धांगिनी होते हुए भी हम दुःख क्यों देख रही हैं? इस सम्बन्ध में उठने वाले हमारे संशयों को आप दूर क्यों नहीं करते? इसका तात्पर्य यह है कि आप आशिक कहलाकर भी हमसे कुछ न कुछ पर्दा (छिपाव) अवश्य रखते हैं।

आसिक न्हारे नजरे, मासूक बेठो रोए।

हेडी कडे उलटी, आसिक से न होए॥२५॥

**शब्दार्थ**— न्हारे—देखते, नजरे—नेत्रों से, बेठो—बैठी, रोए—रोवे, हेडी—ऐसी, कडी—कभी, होए—होती है।

**अर्थ**— इस तरह की असम्भव सी (उल्टी) बात कभी भी घटित नहीं हो सकती कि आशिक (प्रेमी) की दृष्टि के सामने ही उसकी प्रियतमा (प्राणेश्वरी) रोती रहे।

**भावार्थ**— आशिक के रोम-रोम में माशूक की छवि बसी होती है। वही उसके जीवन का आधार है, प्राणेश्वरी है। किन्तु यदि वह रोती रहे और आशिक चुपचाप देखता रहे, तो यह निश्चित है कि वह आशिक नहीं है।

रोम रोम बीच रमि रहया, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग॥

किरंतन ९९/१७

इस प्रकार के कथन द्वारा श्री इन्द्रावती जी ने श्री राज जी के प्रेम को चुनौती दे दी है।

**मूंजां लाड कोड पारणजा, आं सिर सभ मुद्दार।**

**डिए डोह असांके, जे अस्सां सुध न सार॥२६॥**

**शब्दार्थ—** मूंजा-मेरे, कोड-हर्ष, पारण-पूर्ण करने, जा-का, आं-आपके, सिर-ऊपर, सभ-सम्पूर्ण, मुद्दार-अख्तियार, डिए-देते हैं, डोह-दोष, असांके-हमको, जे-जो, अस्सां-हमको, सुध-होश, सार-खबर।

**अर्थ—** हे प्रियतम! मेरे प्रेम और आनन्द की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने का सारा उत्तरदायित्व आपके ही ऊपर है। जब हमें इस संसार में किसी प्रकार की सुध ही नहीं है, तो आप हमें दोषी क्यों बना रहे हैं?

मूँके इलमें चयो भली पेरे, कोए न्हाए डोह रुहन।

केयो थ्यो सभ कांध जो, असीं सभ मंझ इजन॥२७॥

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझे, इलमें-ज्ञान ने, चयो-कहा, भली-अच्छी, पेरे-तरह, कोए-कोई, न्हाए-नहीं है, केयो-किया, थ्यो-हुआ, कांध जो-प्रियतम का, असीं-हम, मंझ-बीच, इजन-आज्ञा के।

**अर्थ-** तारतम वाणी से मुझे यह बात अच्छी तरह से विदित हो गयी है कि इस खेल में हमारा कोई भी दोष नहीं है। श्री राज जी ही सब कुछ करने वाले हैं। हम सभी उनके हुक्म (आदेश) के अधीन हैं।

इस्क बंदगी या गुणा, से सभ हथ हुकम।

रांद कारिए निद्रमें, हित केहो डोह अस्सां खसम॥२८॥

**शब्दार्थ-** बंदगी-प्रार्थना, गुणा-दोष, से-वह, हथ-



हाथ, रांद-खेल, कारिए-करते, हित-यहाँ, केहो-कौन।

**अर्थ-** हे धाम धनी! चाहे हम प्रेम या भक्ति की राह अपनायें अथवा दोषों (गुनाहों) से भर जायें, सब कुछ आपके आदेश (हुक्म) से ही होना है। जब आपने नींद में ही यह खेल दिखाया है, तो ऐसी स्थिति में हमारा क्या दोष है?

बेसक डिंने इलम, जगाया दिल के।

इलम न पुज्जे रूहसी, सभ हथ हुकम जे॥२९॥

**शब्दार्थ-** बेसक-निःसन्देह, डिंने-देकर, जगाया-जाग्रत किया, दिल के-दिल को, न पुज्जे-नहीं पहुँचता है, रूहसी-आत्मा तक, सभ हथ-सम्पूर्ण हाथ में, हुकम जे-आदेश के।

**अर्थ-** इसमें कोई संशय नहीं है कि आपकी तारतम वाणी ने हमारे दिल को जगा दिया है, किन्तु यह ज्ञान हमारी आत्मा तक नहीं पहुँचता। यह सब कुछ आपके हुक्म (आदेश) के अधीन है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब जीव की दुःखमयी लीला को आत्मा और परात्म का दिल देख सकता है, तो जीव को प्राप्त होने वाला ज्ञान आत्मा तक क्यों नहीं पहुँच सकता?

संक्षेप में इसका समाधान इस प्रकार है-

जीव को तारतम वाणी का जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह श्रवण-पठन के साधन द्वारा चिन्तन-मनन से प्राप्त होता हैं। अपने अन्तःकरण (हृदय) द्वारा वह ज्ञान जीव ग्रहण कर लेता है। आत्मा अपने दिल द्वारा संसार के सुख-दुःख की मात्र द्रष्टा है, भोक्ता नहीं। चिन्तन-मनन, जप,

तप, साधना, विरह आदि जीव का विषय है, आत्मा का नहीं। आत्मा की लीला मात्र प्रेममयी है। जीव जब चिन्तन-मनन द्वारा ज्ञान प्राप्त कर विरह की राह अपनाता है, तो द्रष्टा के रूप में आत्मा का दिल प्रेम मार्ग पर उसी प्रकार चल पड़ता है जिस प्रकार वायु के संयोग से मन्द पड़ी हुई अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। प्रेम का प्राण ज्ञान है और ज्ञान का प्राण प्रेम है। आत्मा में जो ज्ञान अवतरित होता है, वह प्रेम द्वारा प्रियतम से ही प्राप्त होता है। जीव का दिल परिक्रमा, सागर, एवं श्रृंगार ग्रन्थ का अध्ययन करके युगल स्वरूप एवं परमधाम की सम्पूर्ण शोभा का वर्णन तो कर सकता है, किन्तु उसे वास्तविक अनुभूति नहीं होती। अनुभूति या प्रत्यक्ष दर्शन प्रेम (इश्क) द्वारा होता है, जो आत्मा का विषय है। यदि मात्र पढ़ने से ही दर्शन हो जाता, तो प्रेममयी चितवनि

की कोई भी आवश्यकता नहीं होती। परात्म को जिस सुख की अनुभूति होती है, उसका अति अल्प अंश ही आत्मा द्वारा जीव को प्राप्त हो पाता है। इसी प्रकार जीव को शाब्दिक ज्ञान की जो अनुभूति होती है, उसका आत्मिक ज्ञान सम्बन्धी अंश ही आत्मा को प्राप्त हो पाता है। उसकी चेतना धाम धनी को जानने लगती है और प्रेम में डूबकर वाणी का यथार्थ (बातिनी) ज्ञान प्राप्त कर लेती है।

ए मेहेर देखो मेहेबूब की, तुमको पढ़ाए आप खसम।

सागर १३/५३

हक बातन की बारीकियां, सो हक के दिए आवत।

ना सीखे सिखाए ना सोहबतें, हक मेहेरें पावत॥

सिनगार ३/१२

के कथन इसी सन्दर्भ में हैं। यही कारण है कि अनपढ़

परमहंसों के पास मारिफत का ज्ञान होता है, जबकि शुष्क हृदय वाले वाचक ज्ञानी मात्र शब्दजाल में ही उलझे रहते हैं। उन्हें मारिफत की सुगन्धि भी नहीं मिलती। जिस प्रकार चुम्बकीय लोहा मात्र लोहे के टुकड़ों को ही आकर्षित कर सकता है, लकड़ी के बुरादे को नहीं, उसी प्रकार परात्म का दिल आत्मा के रूप में उसके दिल से इस मायावी दुःख की लीला को मात्र देखता है, करता या भोक्ता नहीं है। वह मात्र प्रेम में डूबकर अपने प्राण प्रियतम को देख सकता है। उसके दिल में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का ज्वार उस तरह से नहीं उठ सकता, जिस प्रकार जीव के दिल में उठा करता है। इसी प्रकार जीव भी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की अग्नि में जलता तो है, किन्तु वह प्रेमाग्नि में उस प्रकार नहीं जल सकता जिस प्रकार आत्मा जलती

है। तारतम वाणी को पढ़कर जीव मारिफत (परमसत्य) को ज्ञान के मात्र कह सकता है, उसे अपने जीवन में चरितार्थ नहीं कर सकता। आत्मा शब्दों के जाल को मात्र द्रष्टा होकर देखती है और प्रेम में डूबकर प्रियतम से मारिफत के इल्म को स्वतः ही प्राप्त कर लेती है। इसे ही इस चौपाई में इन शब्दों में व्यक्त किया गया है कि आपका इल्म दिल तक तो पहुँचता है, किन्तु आत्मा तक नहीं पहुँचता है।

**रुहसी पुजी न सगे, आयो न्हाएमें इलम।**

**जा सहूर करियां इलम, त हित जरो न रे हुकम॥३०॥**

**शब्दार्थ-** रुहसी-आत्मा तक, पुजी-पहुँच, सगे-सकता है, आयो-आया, न्हाए-झूठ के, में-बीच में, इलम-ज्ञान, सऊर-विचार, करियां-करते हो, इलम-

ज्ञान से, त-तो, हित-यहाँ, जरो-किंचित् भी, न-नहीं, रे-बिना, हुकम-आज्ञा के।

**अर्थ-** आपका तारतम ज्ञान इस नश्वर जगत् में आया है, जो आत्मा तक नहीं पहुँचता। यदि तारतम वाणी से विचार करते हैं, तो यहाँ आपके हुकम (आदेश) के बिना और कुछ है ही नहीं।

**भावार्थ-** "हुकम के बिना कुछ भी न होने" का अभिप्राय यह है कि बिना धनी के आदेश के कुछ भी कार्य नहीं हो सकता।

जे की केयो से हुकमें, से हुकम आं हथ थेयो।

हिक जरो रे तो हुकमें, आए न कोए बेयो॥३१॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, की-कुछ, केयो-किया, से-वह, हुकमें-हुकम ने, से-वह, हुकम-हुकम, आं-आपके,

हथ-हाथ, थेयो-हुआ, हिक-एक, जरो-जरा भी, रे-बिना, तो-आपके, हुकमें-हुक्म के, आए-है, न-नहीं, कोए-कोई, बेयो-दूसरा।

**अर्थ-** यहाँ जो कुछ भी कार्य होता है, वह सब कुछ आपके हुक्म से ही होता है। वह आदेश आपके हाथ में है। इस संसार में आपके हुक्म के बिना दूसरा कुछ भी नहीं है।

**भावार्थ-** धनी के हुक्म से ही सब कुछ होता है। इस प्रकार धनी के हुक्म की महत्ता को दर्शाने के लिए आलंकारिक रूप से ऐसा कहा गया है कि "हुक्म के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं", जबकि इस जागनी लीला में जोश, इल्म, इश्क आदि का अस्तित्व तो है ही, किन्तु इनमें भी धनी का आदेश (हुक्म) ही कार्य कर रहा है।



तो केयो से थेयो, तो केयो थिए थो।

थींदो से पण तो केयो, तो रे कित्त न को॥३२॥

**शब्दार्थ-** तो-आपने, केयो-किया, से-वह, थेयो-हुआ, तो-आपका, केयो-किया, थिए-होता, थो-है, थींदो-होगा, से-वह, पण-भी, तो-आपका, केयो-किया, तो-आपके, रे-बिना, कित्त-कहीं, न-नहीं है, को-कोई।

**अर्थ-** आपने जो किया, वही हुआ। जो करते हैं वही होता है, और भविष्य में जो करेंगे वही होगा। आपके बिना कहीं भी कोई नहीं है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के चौथे चरण का आशय यही है कि धनी से ही सबका अस्तित्व है। उनकी छत्रछाया से अलग होकर कोई भी कुछ भी नहीं है।

तेहेकीक मूं ई बुझियो, मूंके बुझाई तो इलम।

थेयो थिएथो जे थींदो, से हल-चल सभ हुकम॥३३॥

**शब्दार्थ-** तेहेकीक-निश्चय, मूं-मैंने, ई-इसी तरह से, मूंके-मेरे को, बुझाई-समझाया, तो-आपके, इलम-ज्ञान ने, थेयो-हुआ, थिएथो-होता है, जे-जो, से-सो, हलचल-हिलना, चलना, सभ-सम्पूर्ण, हुकम-आज्ञा से।

**अर्थ-** आपकी तारतम वाणी ने मुझे समझाया और मुझे इस बात का निश्चय हो गया कि अब तक जो कुछ भी हुआ है, वर्तमान में हो रहा है, और भविष्य में भी जो होगा, सभी कुछ आपके आदेश (हुकम) की ही छत्रछाया में होगा।

एहडो वडो मूं धणी, को न न्हारिए संभारे।

वैण सुणाइए वलहा, मूं सामों न्हारे॥३४॥

**शब्दार्थ-** एहडो-ऐसे, वडो-बुजरक, मूं-मेरे, धणी-प्रियतम, न-नहीं, न्हारिए-देखते, संभारे-याद करके, वैण-वचन, सुणाइए-सुनाओ, वलहा-प्यारे, मूं-मेरे, सामों-सामने, न्हारे-देखो।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम! आप तो इतने महान हैं, फिर भी मेरी याद करके मेरी ओर क्यों नहीं देखते हैं? आप मेरी तरफ अपनी प्रेम भरी दृष्टि से देखिए और मुझे प्यार की मीठी-मीठी बातें सुनाइये।

धणी को न करयो मूं दिलजी, आंऊं अटकां थी हिन गाल।

तूं पुजे सभनी गालिएं, आंऊं की तरसां हिन हाल॥३५॥

**शब्दार्थ-** धणी-प्रियतम, को-क्यों, करयो-करते हो, दिलजी-दिल की, आंऊं-मैं, अटकां थी-अटक रही हूँ, हिन-इन, गाल-बात पर, तूं-पहुँचते, सभनी-सब,

गालिएं-बातों से , आंऊं-मैं, की-क्यों, तरसां-तरस रही, हिन-इन, हाल-दशा में।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप मेरे दिल की इच्छाओं को पूर्ण क्यों नहीं करते हैं? मैं इसी बात पर बार-बार अटक जाती हूँ। आप तो प्रत्येक दृष्टि से सामर्थ्यवान् हैं, फिर भी मुझे इस अवस्था में रखकर क्यों तरसा रहे हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई के दूसरे चरण में कथित "अटकने" का भाव है- सोचने के लिये विवश हो जाना।

जे आंऊं मंगां सहूर में, तांजे मंगां बे अकल।

लाड सभे तो पारण, जे अचे मूंजे दिल॥३६॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, मंगां-माँगू, तांजे-कदाचित्, मंगां-माँगू, बे-बिना, अकल-बुद्धि के , लाड-प्यार, सभे-सम्पूर्ण, तो-आप, पारण-पूर्ण करो , जे-जो,

अचे-आवे, मूंजे-मेरे।

**अर्थ-** अब तो आप ही बताइये कि मैं आपसे सोच - विचारकर माँगू या भाव में बेसुध होकर। यह तो निश्चित है कि मेरे हृदय में प्रेम की जो भी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें पूर्ण करने वाले एकमात्र आप ही हैं।

दिल चाहे मूं हिकडी, को न पारिए लख गुणी।

तूं की लिके मूंह थी, तो जेडो मूं धणी॥३७॥

**शब्दार्थ-** चाहे-चाहता है, मूं-मेरा, हिकडी-एक, को-क्यों, न-नहीं, पारिए-पूर्ण करा, लख-लाखों, गुणी-तरह, तूं-आप, की-क्यों, लिके-छिपते हो, मुंह थी-मेरे से, तो-आप, जेडो-जैसे, मूं-मेरे, धणी-प्रियतम।

**अर्थ-** यदि मैं आपसे अपनी एक इच्छा की पूर्ति कराना चाहती हूँ, तो आप उसे लाखों गुना करके क्यों नहीं पूरा

करते हैं? आप मेरे सर्वस्व हैं, प्राण प्रियतम हैं, फिर भी मुझसे क्यों छिप रहे हैं?

**भावार्थ-** समर्पण के साथ-साथ अधिकार पाने की मधुर अभिव्यक्ति इस चौपाई की विशेषता है। अगली चौपाई में भी यही भाव है।

आंऊं धणियांणी तोहिजी, मूं घर अर्स अजीम।

मूं कोडयूं उमेदूं वडियूं, तूं तेयां कोड गण्यूं को न डियम॥३८॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, धणियांणी-अर्धांगिनी, तोहिजी-आपको, मूं-मेरा, घर-निवास स्थान, अर्स अजीम-परमधाम में है, कोडयूं-करोड़ों, उमेदूं-चाहनाएँ, वडियूं-भारी, तूं-आप, तेयां-उससे भी, कोड गण्यूं-करोड़ों गुणा, को-क्यों, न-नहीं, डियम-देते हो।

**अर्थ-** हे प्रियतम! मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ और आपका

परमधाम ही मेरा घर है। मेरे हृदय में प्रेम की करोड़ों बड़ी-बड़ी इच्छाएँ उठती रहती हैं। आप उन्हें करोड़ों गुना करके क्यों नहीं पूरा कर देते?

**भावार्थ-** प्रेम की गहराई अनन्त है और अक्षरातीत की महिमा भी अनन्त है। यदि आत्मा के हृदय में प्रेम की करोड़ों इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, तो धाम धनी की गरिमा के अनुकूल यही उचित होगा कि वे उसे करोड़ों गुना करके पूरा करें। श्री महामति जी की यह प्रबल युक्ति प्रियतम अक्षरातीत से अपने प्रेम का अधिकार माँगने के लिये सबको प्रेरित करती है।

तो भायो हे उमेदूं मगंदयूं, नयूं नयूं दिल धरे।

हिन जिमी न द्रापंदयूं, आंऊं डींदुस कीय करे॥३९॥

**शब्दार्थ-** तो-आप, भायो-जानते हो, हे-यह,

मगंदयूं-माँगेगी, नयूं नयूं-नई नई, दिल-दिल में, धरे-  
धारण कर, हिन-इस, जिमी-पृथ्वी में कोई भी, न-  
नहीं, द्रापंदयूं-तृप्त हुआ , आंऊं-मैं, डींदुस-देऊं,  
कीय-कैसे, करे-करके।

**अर्थ-** आप इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि  
माया के खेल में ब्रह्मसृष्टियाँ अपने दिल में नयी -नयी  
इच्छाएँ लेकर उसे पूरी कराना चाहेंगी। इस संसार में जब  
आज दिन तक कोई भी तृप्त नहीं हुआ , तो मैं किस  
प्रकार इनकी इच्छाओं को पूरी करूँ?

हेडो जाणी दिल में, पेरोई ढंके द्वार।

न की सुणाइए गालडी, न की डिए दीदार॥४०॥

**शब्दार्थ-** हेडो-ऐसा, जाणी-जानकर, दिल में-दिल  
में, पेरोई-पहले ही, ढंके-बन्द किया, द्वार-दरवाजा,



न-नहीं, की-कुछ, सुणाइए-सुनाते हो, गालडी-बातें,  
की-कुछ, डिए-देते हो, दीदार-दर्शन।

**अर्थ-** आपने पहले से ही ऐसा जानकर परमधाम का दरवाजा बन्द करवा लिया है। अब न तो आप मुझे प्रेम भरी बातें सुनाते हैं और न ही दर्शन देते हैं।

**भावार्थ-** दरवाजा बन्द करने का कथन आलंकारिक है। यहाँ लौकिक द्वार से कुछ भी लेना-देना नहीं है। परमधाम और युगल स्वरूप के दर्शन पर रोक लग जाना ही दरवाजे का बन्द होना है।

ते दर ढंके मूरजो, असां अंखे कंने डिंने पट।

तो भायों घुरंदयूं घणी परे, बेठो जाणी बट॥४१॥

**शब्दार्थ-** ते-तिस वास्ते, दर-दरवाजा, ढंके-बन्द किया, मूरजो-मूल का, असां-हमारे, अंखे-आँखों,

डिंने-दिया, पट-पर्दा, तो-आप, भायों-जानते हो, धुरंदयूं-माँगेगी, धणी-बहुत, परे-तरह से, बेठो-बैठे, जाणी-जान के, बट-पास ही।

**अर्थ-** इसलिये आपने हमारी आँखों और कानों पर पर्दा डालकर प्रारम्भ से ही दरवाजा बन्द कर दिया, क्योंकि आप जानते हैं कि ये मेरे पास में बैठकर अनेक तरह से माँगती ही रहेगी।

**भावार्थ-** मूल मिलावा में बेसुधि (फरामोशी) है। वहाँ न तो इस समय सखियाँ अपने कानों से कुछ सुन सकती हैं और न ही आँखों से देख सकती हैं। इसे ही पर्दा डालना कहा गया है। इस चौपाई में दरवाजा बन्द करने का तात्पर्य बातचीत और दर्शन न हो पाना है।

रुहें हिन जिमीय में, द्रापे न के भत।

ई जाणी लिके मूंह थी, हियडो केयां सखत॥४२॥

**शब्दार्थ-** रुहें-ब्रह्मात्माएँ, हिन-इन, जिमीय में-पृथ्वी में, द्रापे-अघाती, न-नहीं, के-किसी, भत-तरह से, ई-ऐसी, जाणी-जान के, लिके-छिपते हो, मूंह थी-मुझसे, हियडो-हृदय, केयां-किया, सखत-कठोर।

**अर्थ-** हे धनी! आपने यह पहले ही जान लिया कि आत्मायें इस संसार में किसी भी प्रकार से तृप्त नहीं हो सकेंगी। इसलिये आपने अपने हृदय को कठोर बना लिया और मुझसे छिप गये।

**भावार्थ-** इस चौपाई में अति मधुर उलाहने द्वारा अपने विरह के भावों को व्यक्त किया गया है।

हे पट डिसी मूं न्हारिम, उमेद न आसा कांए।

जगाइए ते वखत, मथां डिंने डींह पुजाए॥४३॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, पट-पर्दा, डिसी-देख के, मूं-मैंने, न्हारिम-विचार किया, उमेद-चाहना, न-नहीं, आसा-कामना की, कांए-कुछ भी, जगाइए-जगाया, ते-उस (तिस), वखत-समय में, मथां-ऊपर, डिंने-दिए, डींह-दिन, पुजाए-आ गया।

**अर्थ-** इस पर्दे को देखकर मैं समझ गयी कि अब मेरी इच्छाओं के पूर्ण होने की कोई आशा नहीं है। आपने जगाया भी उस समय है, जब ऊपर (धाम) जाने का समय आ गया है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में परोक्ष रूप से सुन्दरसाथ के लिये ही सम्बोधन है, क्योंकि श्री महामति जी (मिहिरराज जी) का तन तो आज भी ध्यानावस्था में श्री

गुम्मट जी में विराजमान है। अन्तर्धान की लौकिक लीला करने के पश्चात् भी उन्होंने एक वर्ष तक महाराजा छत्रशाल जी एवं अन्य ब्रह्ममुनियों के साथ प्रत्यक्ष रूप से वार्ता की। अन्ततोगत्वा कुछ सांसारिक लोगों के व्यवधान (बाधा डालने एवं दुष्प्रचार) के कारण उन्होंने उस मार्ग को बन्द करवा दिया, जिससे होकर ब्रह्ममुनि श्री महामति जी के पास पहुँचते थे। इसके पश्चात् वे ध्यान की गहन अवस्था में डूब गये।

सामान्यतः यौवन के आवेग में अध्यात्म की ओर लोगों का ध्यान कम ही जाता है। लगभग ४०-४८ वर्ष की अवस्था के पश्चात् इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होने लगती है और कामनाओं का ज्वार भी थमने लगता है। अध्यात्म के चरम लक्ष्य तक प्रायः इसी उम्र में पहुँचा जाता है। श्री महामति जी के हृदय की यही पीड़ा है कि यदि यह

अवस्था किशोरावस्था की समाप्ति या यौवन के प्रारम्भ में ही प्राप्त हो जाती, तो आध्यात्मिक जीवन का पूरा आनन्द लिया जा सकता है। ४०-४५ वर्ष की उम्र के पश्चात् लोगों की उम्र प्रायः आधी (२५-६०) ही रह जाती है।

वस्तुतः इस चौपाई द्वारा सांकेतिक रूप से सब सुन्दरसाथ को यह शिक्षा दी गयी है कि वे अपने जीवन की यौवनावस्था में ही तारतम वाणी का ज्ञान प्राप्त कर प्रेममयी चितवनि में डूबें तथा ब्राह्मी (परमहंस) अवस्था को प्राप्त करें। इस रूढ़िवादी मानसिकता का परित्याग करने की नितान्त आवश्यकता है कि जब वृद्धावस्था आयेगी, तब हम ज्ञान-ध्यान में लगेंगे। गौतम बुद्ध और आदिशंकराचार्य ने तो यौवन काल में भी आध्यात्मिकता की उच्च अवस्था प्राप्त कर ली थी। परमहंस महाराज श्री

राम रतन दास जी ने भी कम आयु में ही अपने धाम हृदय में धनी को प्राप्त कर लिया था।

**मूं घर अर्स अजीम, नूरजमाल मूं कांध।**

**लाड पारण मूंहजा, मूं कारण केई रांद॥४४॥**

**शब्दार्थ-** मूं-मेरा, कांध-प्रियतम है, पारण-पूर्ण करने को, मूंहजा-मेरा, केई-किया, रांद-खेल।

**अर्थ-** हे धनी! मेरा घर परमधाम है और आप ही मेरे प्रियतम हैं। आपने इस खेल को तो मेरे लिये ही बनाया है, ताकि आप मेरे प्रति अपने प्रेम को पूर्ण रूप से दर्शा सकें।

**तो इलम चयो लाड पारींदो, ते में सक न कांए।**

**जे जे भतें मूं न्हारियो, इलमें सभे डिंनी पुजाए॥४५॥**

**शब्दार्थ-** तो-आपके, इलम-ज्ञान ने, चयो-कहा, पारींदो-पूर्ण करेंगे, ते में-उसमें, सक-संशय, न-नहीं, कांए-कुछ भी, जे जे-जिस जिस, भतें-तरह से, मूं-मैंने, न्हारियो-देखा, इलमें-ज्ञान ने, सभे-सब, डिंनी-दिया, पुजाए-पहुँचाए।

**अर्थ-** आपका तारतम ज्ञान कहता है कि आप हमारे प्रति अपने प्रेम को पूर्ण करेंगे, अर्थात् हमारी इच्छाओं को पूरा करेंगे। इस सम्बन्ध में कोई भी संशय नहीं है। मैंने जिस-जिस दृष्टि से देखा, उसे आपकी तारतम वाणी ने पूरा कर दिया।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में यह जिज्ञासा होती है कि यहाँ किस-किस दृष्टि या प्रकार से देखने का प्रसंग है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि आत्मा



की दृष्टि के मात्र दो ही लक्ष्य हैं- १. खेल २. परमधाम।  
 बेसुधि में आत्मा जीव के माध्यम से खेल को देखती है,  
 तो तारतम ज्ञान से जाग्रत होकर प्रेम द्वारा परमधाम को  
 देखती है। कभी वह संसार को अत्यन्त दुःखमयी रूप में  
 देखती है, तो कभी प्रियतम के सुख की लज्जत देने वाला  
 मानती है।

सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।

सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सों करो विचार॥

सागर १२/३०

का कथन इसी सन्दर्भ में है।

इसी प्रकार धाम धनी को भी देखने का उसका अलग-  
 अलग दृष्टिकोण (नजरिया) है। कभी तो वह अपने  
 प्रियतम को शाहरग (प्राणनली) से भी अधिक निकट  
 मानती है, तो कभी परमधाम में मानती है। कभी विरह में

तड़पाने वाला मानती है, तो कभी एक बार ही रिझाने (साद करने) पर दस बार जी-जी करने वाला मानती है। कभी तो वह सर्वस्व समर्पण कर देती है कि जब आप दिखायेंगे मैं तभी देखूँगी, तो कभी दीदार न देने पर गिले-शिकवों की झड़ी लगा देती है। हकीकत की दृष्टि से कभी वह स्वयं को उनकी अँगना बनकर आशिक या माशूक के रूप में प्रस्तुत करती है, तो कभी मारिफत की दृष्टि से धनी के स्वरूप में स्वयं को समाहित कर अपने अस्तित्व को ही मिटा देती है।

पण हित अची इलम अटक्यो, जे कडी न अटके कित।

मूं न्हारे न्हारे न्हारियो, त अची अटक्यो हित॥४६॥

शब्दार्थ— पण-परन्तु, हित-यहाँ, अची-आकर, अटक्यो-सँकुच गया, जे-जो, कडी-कभी, अटके-

सँकुचता, कित-कहीं भी , मूं-मैंने, न्यारे-देख, न्हारियो-देखा, त-तो, अची-आकर, अटक्यो-सँकुचा गया है, हित-यहाँ पर।

**अर्थ-** परन्तु आपका तारतम ज्ञान यहाँ आकर अटक गया, जो कभी भी कहीं नहीं अटकता। मैंने बारम्बार देख-देख कर देखा तो यही स्पष्ट हुआ कि आपका ज्ञान यहाँ आकर अटक गया है।

**भावार्थ-** अटकने का तात्पर्य है- उत्तर न दे पाना या सँकुचित हो जाना। तारतम वाणी का कथन है कि श्री राज जी अपनी अँगनाओं की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। यदि ऐसा है, तो वे दीदार देकर प्रेम भरी बातें क्यों नहीं करते?

इस प्रश्न का उत्तर तारतम वाणी में भी स्पष्ट रूप से नहीं है। यहाँ इसी को अटकना कहा गया है।

हित डोह न कोए इलमजो, न की डोह विचार।

हे घुंडी तोहिजे हुकम जी, सा छुटे न कांधा धार॥४७॥

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ पर, डोह-दोष, न-नहीं, की-कुछ, डोह-दोष, विचार-सोचने का, हे-यह, घुंडी-पेंच, तोहिजे-आपके, हुकम जी-आज्ञा की है, सा-वह, छुटे-छूटती, न-नहीं, कांधा-धनी के, धार-सिवाय।

**अर्थ-** यहाँ आपके तारतम ज्ञान का न तो कोई दोष है और न (हमारे) विचारों का दोष है। यह पेंच (गाँठ) तो आपके आदेश का है, जो आपके बिना अन्य किसी से भी नहीं खुल सकता।

**भावार्थ-** माया का यह ब्रह्माण्ड विधान (नियम) से बँधा हुआ है। यद्यपि धाम धनी के दीदार एवं वार्ता का द्वार सबके लिये खुला हुआ है, किन्तु इसके लिये कुछ कसौटियाँ हैं। जो उन कसौटियों पर जितना खरा सिद्ध

होता है, धनी के दर्शन एवं प्रेम भरी वार्ता के सुख की उतनी ही उपलब्धि उसे हो पाती है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये धनी का हुक्म होना अनिवार्य होता है, किन्तु धनी का हुक्म (आदेश) तो तभी होगा जब आत्मा अपने जीव को उस कसौटी पर खरा सिद्ध कर सके। यही हुक्म (आदेश) की गाँठ है, जो धनी की मेहर से ही खुलती है तथा आत्मा का जीव इस अग्नि-परीक्षा में तपकर स्वयं को शुद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। संक्षेप में कसौटी की कुछ शर्तें निम्नलिखित हैं—

१. मारफत देवे इस्क, इस्के होए दीदार।

इस्के मिलिए हक सों, इस्के खुले पट द्वार॥

सिनगार २५/८६

२. जो पेहेले आप मुरदे हुए, तो दुनियां करी मुरदार।

हक तरफ हुए जीवते, उड़ पोहोंचे नूर के पार॥

सिनगार २४/९५

३. मारया कहा काढ़या कहा, और कहा हो जुदा।

एही मैं खुदी टले, तब बाकी रह्या खुदा॥

खिलवत २/३०

इस चौपाई से पूर्व की ४६वीं चौपाई का भी समाधान यहाँ हो गया है।

गाल गुझांदर ई थेई, तूं पांणई जांणे।

हे गुझ्यूं गाल्यूं तो रे, के के चुआं हांणे॥४८॥

**शब्दार्थ-** गाल-बातें, गुझांदर-छिपी हुई, ई-ऐसी, थेई-हुई है, तूं-आप, पांणई-आप ही, जांणे-जानते हो, हे-यह, गुझ्यूं-बातें, तो रे-आप के बिना, के के-किसको, चुआं-कहूँ, हांणे-अब।

**अर्थ-** इस प्रकार की ये गुह्य बातें हैं, जिन्हें आप स्वयं ही जानते हैं। इन छिपी हुई बातों को आपके अतिरिक्त मैं अन्य किससे कहूँ।

तूं धणी मूं इस्क जो, तूं धणी सहूर इलम।

तूं धणी वतन रूहजो, हे गुझ के के चुआं खसम॥४९॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, धणी-प्रियतम, मूं-मेरे, इस्क जो-प्रेम के हैं, तूं-आप ही, सहूर-विचार, इलम-ज्ञान के, धणी-प्रियतम, वतन-धाम के हो, रूहजो-आत्मा के हो, हे-यह, गुझ-छिपी बातें, के के-किन को, चुआं-कहूँ, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** आप मेरे इस्क के प्रियतम हैं और ज्ञान के भी प्रियतम हैं, अर्थात् ज्ञान और प्रेम की दृष्टि से आप ही मेरे सर्वस्व हैं। परमधाम की अँगनाओं के आप ही

प्राणवल्लभ हैं। इन गुह्य (रहस्यमयी) बातों को मैं आपके सिवाय और किससे कहूँ।

**सिकाए-सिकाए मूँहके, को द्रजंदो-द्रजंदो डिए।**

**लाड मगंदयूं रांदमें, तो अटके ई हिए॥५०॥**

**शब्दार्थ-** सिकाए-बिलखाकर, मूँहके-मुझको, को-क्यों, द्रजंदो-डराकर, डिए-देते हो, लाड-प्यार, मगंदयूं-माँगती हूँ, रांदमें-खेल के बीच में, तो-तिस वास्ते, अटके-रुक रही हूँ, ई-इससे यहाँ, हिए-हृदय से।

**अर्थ-** आप मुझे बिलखा-बिलखाकर, डरा-डराकर क्यों दे रहे हैं? मैं आपसे इस खेल में प्रेम माँगती हूँ। इसे देने में आप संकोच क्यों करते हैं?

**भावार्थ-** हास्य भरे मधुर प्रेम की गहन स्थिति को इस



चौपाई में प्रस्तुत किया गया है, जिसका रस कोई विरला ही ले पाता है।

**हिक वडो मूँके अचरज, मूँजा लाड पारीने की।**

**मूँके जगाए मंगाइए डियणके, मथां पुजाइए डींह॥५१॥**

**शब्दार्थ—** हिक-एक, वडो-भारी, मूँके-मुझको, अचरज-ताज्जुब है, मूँजा-मेरा, लाड-प्यार, पारीने-पूर्ण करोगे, की-कैसे, मूँके-मुझको, जगाए-जाग्रत करके, डियणके-देने को, मथां-ऊपर, पुजाइए-पहुँचाये, डींह-दिन भी।

**अर्थ—** मुझे इस बात का बहुत आश्चर्य हो रहा है कि आप मेरे प्रति किस प्रकार अपने लाड (प्यार) को पूर्ण करेंगे। आपने अपना प्रेम देने के लिये ही मुझे जगाया और मुझसे मँगवाया, किन्तु इस समय तो धाम चलने का

समय आ गया है।

**भावार्थ-** इस मानवीय जीवन में बीता हुआ पल कभी लौटकर नहीं आता। समय की प्रतिबद्धता की शिक्षा इस चौपाई में स्पष्ट रूप से दी गयी है। वाणी-चिन्तन तथा चितवनि की प्रक्रिया में "आज नहीं कल" के ऊपर चलने वाले सुन्दरसाथ को इस चौपाई में परोक्ष रूप से सिखापन दी गयी है। यद्यपि प्रेम की गहनतम् उपलब्धि को कुछ घड़ियों में भी पाया जा सकता है, किन्तु आत्मा की स्वाभाविक इच्छा उसमें अधिक से अधिक समय तक रहने की होती है। यहाँ यही तथ्य स्पष्ट किया गया है।

रांद डिखारिए उमेद के, जगाइए लाड पारण।

विलखाइए सुणन वैण के, रूआं दीदार कारण॥५२॥

**शब्दार्थ-** रांद-खेल, डिखारिए-दिखाया, उमेद के-चाह को, जगाइए-जाग्रत किया, लाड-प्यार, पारण-पूर्ण करने, विलखाइए-तलफा रहे हो, सुणन-सुनने, वैण के-वचन को, रुआं-रोती हूँ, दीदार-दर्शन, कारण-वास्ते।

**अर्थ-** आपने हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये ही माया का यह खेल दिखाया है और हमसे प्रेम करने के लिये हमें जगाया है। अब आप हमें अपनी मीठी-मीठी बातें सुनाने के लिये क्यों बिलखा रहे हैं तथा दीदार देने में रुला रहे हैं।

**भावार्थ-** फूट-फूटकर रोने को बिलखना कहते हैं, जबकि केवल रोने की अवस्था में मुख से आवाज निकलना आवश्यक नहीं है।

कांध उमेदूं वडियूं, मूं दिल में थो पाइए।

धणी पांहिजे डोह के, मूं मोहां थो चाइए॥५३॥

**शब्दार्थ-** कांध-प्रियतम, उमेदूं-चाहनायें, वडियूं-भारी, मूं-मेरे, दिल में-दिल में, थो-हो, पाइए-उत्पन्न कराते, धणी-प्रियतम, पांहिजे-अपने, डोह के-दोषों को, मूं-मेरे, मोहां थो-मुख से है, चाइए-कहलवाते।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! पहले तो आप मेरे दिल में बड़ी-बड़ी इच्छायें उत्पन्न करते हैं, पुनः उसे पूरी न करके अपने दोषों को मुझसे ही कहलवाते हैं।

आंऊं पण द्रजंदी, न डियां आंके डोह।

बंग पांहिजो पांणई, मूं मोहां चाइए थो॥५४॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, पण-भी, द्रजंदी-डरती हूँ, न-नहीं, डियां-देऊँ, आंके-आपको, डोह-दोष, बंग-

दोष, पांहिजो-अपना, पांणई-आप ही, मूं-मेरे, मोंहां-  
मुख से, चाइए-कहलवाते, थो-हो।

**अर्थ-** मैं भी इस बात से डरती हूँ कि मैं आपको दोषी  
न बनाऊँ, किन्तु स्वयं आप ही मेरे मुख से दोष  
कहलवाते हैं।

**तोबा-तोबा करियां, जिन भुलां चुकां हांण।**

**हल्लां धणी जे हुकमें, जीं सुख भाइए पांण॥५५॥**

**शब्दार्थ-** तोबा-त्राहि, तोबा-त्राहि, करियां-करती हूँ,  
जिन-मत, भुलां-भूलो, चुकां-चूको, हांण-अब, हल्लां-  
चलो, धणी जे-प्रियतम को, हुकमें-आज्ञा में, जीं-  
जिससे, भाइए-जानो, पांण-आप।

**अर्थ-** हे प्रियतम! अपनी भूलों के लिये मैं बारम्बार  
प्रायश्चित्त करती हूँ। अब कभी भूल-चूक नहीं होगी। अब

मैं सर्वदा ही आपके आदेश (हुक्म) में चलूँगी, जिससे आप सदैव ही खुश रहें।

**भावार्थ-** इस चौपाई में प्रेम की स्वाभाविक झिक-झिक के पश्चात् स्वयं को समर्पित कर देने की वास्तविक स्थिति का मनोरम चित्रण है।

पेरो हुई गाल कौलजी, थेई थींदी सभ चोयम।

द्रजां चोंदे अगरी, जीं न अचे दिल पिरम॥५६॥

**शब्दार्थ-** पेरो-पहले, हुई-भई, कौलजी-कहने की, थेई-हुई, थींदी-होगी, सभ-सम्पूर्ण, चोयम-कही हुई, द्रजां-डरती हूँ, चोंदे-कहते, अगरी-अधिक, जीं-जिससे, अचे-आवे, दिल-दिल में, पिरम-प्रियतम के।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! पहले तो केवल कहने की बात थी, जो मैंने कही है। तारतम वाणी में आपके द्वारा कही

हुई सारी बातें अवश्य ही सत्य सिद्ध हुई हैं और भविष्य में भी होंगी। अब अधिक कहने से मैं डरती हूँ जिससे कि आपको बुरा न लगे।

**भावार्थ-** इस चौपाई में श्री महामति जी ने अपनी समर्पण भावना को दर्शाया है कि मेरे द्वारा कही हुई बातें तो मेरे हृदय की पुकार हैं, किन्तु आपके द्वारा ब्रह्मवाणी में कही हुई बातें ही अक्षरशः सत्य हैं। यथार्थतः, सिन्धी ग्रन्थ के अन्दर श्री महामति जी के कथन रूप में सब सुन्दरसाथ को सिखापन है।

**कौल फैलजी वही वेई, हांणे आई मथे हाल।**

**हांणे कुछण मुकाबिल, हित हल्ले न अगरी गाल॥५७॥**

**शब्दार्थ-** कौल-कहने की, फैलजी-चलने की, वही-व्यतीत हो, वेई-गई, हांणे-अब, मथे-ऊपर, हाल-

रहनी, कुछण-बोलती हूँ, मुकाबिल-सामने, हित-यहाँ, हल्ले-चलती, अगरी-अधिक।

**अर्थ-** कथनी और करनी की सब बातें तो बीत गयी हैं। अब तो सिर पर रहनी की बात आ गयी है। अब तो आपके सामने आकर ही सब बातें कहनी हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी बात नहीं चलेगी।

घणों द्रप भुल चुक जो, ही हकजी खिलवत।

सचो रचे सच से, भुल न हल्ले हित॥५८॥

**शब्दार्थ-** घणों-बहुत, द्रप-डर, जो-को, ही-यह, हकजी-प्रियतम की, खिलवत-मूल मिलावा, सचो-साँचा, रचे-आनन्दित, सच से-साँच से, भुल-भूलन, हल्ले-चलती है, हित-यहाँ।

**अर्थ-** हे धाम धनी! मैं अपनी भूल-चूक के कारण



बहुत डरती हूँ, क्योंकि यह खिलवत (मूल मिलावा) सच्चे न्याय की जगह है। आप ऐसे सच्चे न्यायाधीश हैं, जो सत्य से ही आनन्दित होते हैं। आपके इस धाम में झूठ चल ही नहीं सकता।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी सच्चे न्यायाधीश श्री राज जी से सच्चे न्याय की गुहार लगा रही हैं। उनका विवाद इस बात पर है कि प्रियतम होने के नाते आप सभी सुन्दरसाथ को दर्शन क्यों नहीं देते। आगे की चौपाई में भी यही प्रसंग है।

इलम पांहिजो डेई करे, मूँके रोसन तो केई।

त झोडो करियां कांध से, विच रांद में बेही॥५९॥

**शब्दार्थ-** पांहिजो-अपना, डेई करे-देकर, मूँके-मुझे, रोसन-जाहिर, तो-आपने, केई-किया, त-तो, झोडो-

झगड़ा, करियां-करती हूँ, कांध से-धनी से, विच-बीच में, रांद जे-खेल के, बेही-बैठकर।

**अर्थ-** मेरे प्राणप्रियतम! आपने मुझे अपना तारतम ज्ञान देकर मेरे हृदय को अखण्ड ज्ञान से प्रकाशित कर दिया है। यही कारण है कि मैं इस मायावी जगत में सुन्दरसाथ को दर्शन देने के लिये आपसे झगड़ा कर रही हूँ।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी को प्रियतम का दीदार होता ही है। इसलिये वे प्रेम भरे शब्दों में विवाद कर रही हैं, ताकि सभी को उनकी तरह ही श्री राज जी का दर्शन मिले।

तोहिजे इलमें आंऊं सिखई, गिडम वकीली सभन।

मूंजो एतबार सभनी, आयो तोहिजी रूहन॥६०॥

**शब्दार्थ-** तोहिजे-आपके, इलमें-ज्ञान से, आंऊं-मैंने, सिखई-सीख लिया, गिडम-लई, सभन-सबकी, मूंजो-मेरा, एतबार-विश्वास, आयो-आया, तोहिजी-आपकी, रूहन-आत्माओं की।

**अर्थ-** आपके तारतम ज्ञान से ही मैंने सभी अँगनाओं की ओर से वकालत करना सीख लिया है। आपकी सभी सखियों को मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास है।

**दावो मूंजो या रूहन जो, सभनी बटां आंऊं।**

**आंऊं गुझ जाणां सभ तोहिजी, की पेर डिए पांऊं॥६१॥**

**शब्दार्थ-** दावो-हुज्जत, मूंजो-मेरा, या-अथवा, रूहन जो-ब्रह्मसृष्टियों की, बटां-तरफ से, आंऊं-मैं हूँ, गुझ-छिपी, जाणां-जानती हूँ, सभ-सम्पूर्ण, तोहिजी-आपकी, की-कैसे, पेर-पीछे, डिए-देते हैं, पांऊं-चरण

कमल।

**अर्थ-** अब मुकदमा चाहे मेरी ओर से हो अथवा आत्माओं की ओर से, सबकी तरफ से वकील मैं ही हूँ। मैं आपकी सभी गुह्य बातों को जानती हूँ। अब आप अपने पैर पीछे क्यों करते हैं अर्थात् खिसकते क्यों हैं?

**द्रष्टव्य-** पीछे खिसकने का कथन हास्य भाव में किया गया है। इसका तात्पर्य है, स्वयं को पीछे हटाना।

**खिलवत जाणां अर्स जी, कौल फैल हाल असल।**

**तोजी गुझ न रही कां मूंह थी, दावो तो मूं विच अदल॥६२॥**

**शब्दार्थ-** जाणां-जानती हूँ, अर्स जी -धाम का, असल-मूल से, तोजी-आपकी, गुझ-छिपी, रही-रहो, कां-कुछ, मूंह थी-मेरे से, दावो-हुज्रत, तो-आपकी, मूं-मेरी, विच-बीच, अदल-मूल से है।

**अर्थ-** मैं परमधाम के मूल मिलावा की कथनी, करनी, और रहनी (दशा) की सभी बातों को यथार्थ रूप से जानती हूँ। आपकी कोई भी गुह्य बात मुझसे अब छिपी नहीं रह गयी है। इसलिये न्यायालय में मुकदमा अब मेरे और आपके बीच में है।

**भावार्थ-** तारतम वाणी से श्री महामति जी को परमधाम के उस परमसत्य (मारिफत के इल्म) का बोध हो चुका है, जिसका बोध अब तक निज घर में भी नहीं था। इश्क, निस्बत, और वहदत की मारिफत को जानने के पश्चात् तो दावे के साथ उनका कथन है कि मुझसे अब आपकी कोई भी बात छिपी नहीं है।

तूं सचो तो गाल्यूं सच्यूं, अने सचो तो हलण।

मूं तो दावो सरे सचजो, झल्यम सचो दावन॥६३॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, सचो-सच्चा, तो-आपकी, गाल्यूं-बातें, सच्यूं-सच्ची, अने-और, हलण-चलना है, मूं-मेरी, सरे-सामने, सचजो-सच का, झल्यम-पकड़ा, दावन-पल्ला।

**अर्थ-** आप सच्चे हैं, आपकी सारी बातें भी सच्ची हैं, तथा आपका व्यवहार भी सच्चा ही है। मेरा और आपका दावा सच्चे विधान (नियम, कानून) का है। मैंने भी केवल सत्य का ही पल्ला (दामन) पकड़ रखा है, अर्थात् मुझे एकमात्र सत्य का ही सहारा है।

**तूं सचा सच गालाइज, सच बोलाइज मूं।**

**सच दावो सच साहेद, सच जांणे सभनी सचा तूं॥६४॥**

**शब्दार्थ-** तूं-आप, गालाइज-बातें हैं, बोलाइज-बुलाते हैं, मूं-मुझसे, साहेद-साक्षी, जांणे-जानते हैं,

सभनी-सभी।

**अर्थ-** आप सच्चे हैं, इसलिये आपकी बातें भी सच्ची हैं। मुझसे भी आप सत्य ही कहलाइए। मेरा दावा भी सच्चा है तथा प्रस्तुत (पेश) की गयी साक्षियाँ भी सच्ची हैं। सभी सुन्दरसाथ भी सच्चे हैं और वे इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं कि सच के स्वरूप आप प्रियतम का न्याय भी सच्चा (सत्य) ही होगा।

हिन न्हाए के केइए सच, जे हित आया सचा पांण।

मूंसे सच को न करिए, मूंजा सचडा सेण सुजांण॥६५॥

**शब्दार्थ-** हिन-इन, न्हाए के-झूठ को, केइए-किया, सच-अखण्ड, जे-जो, हित-यहाँ, आया-आये, पांण-हम, मूंसे-मुझसे, को-क्यों, करिए-करते, मूंजा-मेरे, सचडा-सच्चा, सेण-प्रियतम, सुजांण-सर्वज्ञ।

**अर्थ-** मेरे सर्वसमर्थ सच्चे प्रियतम्! आप इस नश्वर संसार को सत्य (अखण्ड) कर दीजिए, क्योंकि हम ब्रह्मसृष्टियाँ (सच्ची) इस झूठे संसार में आयी हैं। इस माँग को पूर्ण करने की सच्ची बात आप मुझसे क्यों नहीं करते हैं?

**जोर असां से को करिए, जडे आई गाल सरे।**

**सोई सचो अमीन, जो सची गाल करे॥६६॥**

**शब्दार्थ-** जोर-जोर, असां से-हमसे, को-क्यों, करिए-करते, जडे-जब, गाल-बात, सरे-सामने, सोई-वही, सचो-सच्चा, अमीन-न्यायाधीश।

**अर्थ-** जब बात संविधान (कानून) की आयी है, तो आप हमें अपनी शक्ति क्यों दिखाते हैं (जोर जबरदस्ती क्यों करते हैं)। सच्चा न्यायाधीश तो वही होता है, जो



हमेशा सच्ची बातें ही करता है।

**भावार्थ-** यहाँ यह बात दर्शायी गयी है कि सुन्दरसाथ तो इस मायावी खेल में असहाय अवस्था में है और अक्षरातीत जाग्रत होने से सर्वसमर्थ हैं, किन्तु परमधाम के मूल सम्बन्ध से वे धनी के अर्धांग हैं और उन्हें दीन-हीन समझकर बलपूर्वक दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अर्धांगिनी तो अपने प्रियतम की आह्लादिनी शक्ति (प्राणेश्वरी) होती है। उसके साथ अपनी सर्वशक्तिमानता का प्रदर्शन करके अपनी बात को दबाव से मनवा लेना कदापि उचित नहीं है।

पांण चाइए नालो हक, बेओ तो नाम रेहेमान।

आंऊं मांगां हक पडूत्तर, मूँके डे मेहेरबान॥६७॥

**शब्दार्थ-** पांण-आप, चाइए-कहलाते हैं, नालो-नाम

से, हक-सत्य, बेओ-दूसरा, तो-आपका, रहेमान-दया के सागर, आंऊं-मैं, मंगां-माँगती हूँ, पडूत्तर-जवाब, मूँके-मुझे, डे-दीजिए।

**अर्थ-** आप स्वयं को सत्य नाम वाले कहलाते हैं, अर्थात् आपका नाम सत्य (सच्चा) है। आपका दूसरा नाम दया का सागर (रहमान) है। हे कृपा सागर मेहरबान! मैं आपसे एक ही उत्तर माँगती हूँ। आप उसे अवश्य दीजिए।

**भावार्थ-** परब्रह्म का स्वरूप अनादि और अखण्ड है, इसलिये उनके नामों को सत्य माना जाता है। कालमाया के सभी पदार्थ नश्वर हैं, इसलिये इनके नाम भी झूठे कहे जाते हैं।

सचा सचो मूँके रसूल, मथे सच अदल।

मूं सचो दावो दोस से, सचडा थी मुकाबिल।।६८।।

**शब्दार्थ-** सचा-सच्चे हैं, मूँके-भेजा, रसूल-सन्देशवाहक, मथे-ऊपर, अदल-न्याय को, मूं-मेरा, दावो-हुज्रत, दोस से-प्रियतम से, सचडा-सच्चे, थी-हो, मुकाबिल-सामने।

**अर्थ-** आपने अपने सच्चे सन्देशवाहक (रसूल) को सच्चे न्याय में साक्षी देने के लिये भेजा। मेरा मुकदमा भी एक सच्चे दोस्त से (आपसे) है, इसलिये आप सच्चाई से ही सामने आइये।

**भावार्थ-** हदीसों में कहा गया है कि रसूल साहब को न्याय करने की शोभा नहीं है, बल्कि उनके द्वारा लाये गए धर्मग्रन्थ (कुरआन) में परमधाम एवं अक्षरातीत से सम्बन्धित जो साक्षियाँ मिली हैं, उनसे ब्रह्मसृष्टियों को

अद्वैत मार्ग के अवलम्बन में मार्ग दर्शन मिला है। हिन्दू पक्ष में यही भूमिका पुराण संहिता एवं माहेश्वर तन्त्र की है।

**तेहेकीक न्या असांहिजो, डोह आयो मथे कांध।**

**पण तोरो थ्यो तो हथ में, ते मूंजो हल्ले न मय रांद॥६९॥**

**शब्दार्थ-** तेहेकीक-निश्चय ही, न्या-नहीं है , असांहिजो-हमारा, डोह-दोष, आयो-आया, मथे-ऊपर, कांध-धनी, तोरो-हुकूमत, थ्यो-हुई, तो-आपके, हथ में-हाथ में, ते-तो, मूंजो-मेरा, हल्ले न-चलता नहीं, मय-बीच।

**अर्थ-** हे प्रियतम! निश्चित रूप से हमारी ओर से यही न्याय है कि इस मुकदमे में दोषी आप ही हैं , किन्तु आपके हाथ में ही न्याय की सत्ता है इसलिये इस

मायावी खेल में मेरा कुछ भी वश नहीं चलता है।

**भावार्थ-** सारा खेल श्री राज जी के दिल के हुक्म (इच्छा) से ही चल रहा है। ब्रह्मसृष्टियाँ तो मात्र उन कठपुतलियों की तरह हैं, जिनकी डोर कहीं और होती है और निर्देश पर नाचा करती हैं। इसी प्रकार, यद्यपि ब्रह्मसृष्टियों को खेल माँगने, धनी को भूलने, माया में भटकने आदि अनेक दोष अवश्य ही लगा दिये जाते हैं, किन्तु इन सबमें श्री राज जी का ही आदेश (हुक्म) कार्य करता है। श्री महामति जी द्वारा इसी तथ्य को उद्धृत किया जा रहा है कि जब सब कुछ कराने वाले आप ही हैं, तो दोषी भी आप ही हैं।

सरो सच साहेबजो, हित सचो हल्लणो हक।

हे कूडा काजी रांद में, भाइए करियां हिन माफक॥७०॥

**शब्दार्थ-** सरो-न्यायालय, साहेबजो-मालिक का, हित-यहाँ पर, हल्लणो-चलना है, हक-प्रियतम, हे-यह, कूडा-झूठा, काजी-न्याय करते हैं, रांद में-खेल में, भाइए-जानिए, करियां-करूँ, हिन-इनके, माफक-अनुसार।

**अर्थ-** यह सच्चे न्यायाधीश का न्यायालय है, जिसमें केवल सत्य ही चलना चाहिए। कहीं आप ऐसा तो नहीं सोच रहे हैं कि संसार के झूठे न्यायाधीशों की तरह मैं भी झूठा न्याय कर दूँ।

**भावार्थ-** यद्यपि अक्षरातीत स्वप्न में भी झूठा न्याय नहीं कर सकते, किन्तु प्रेम की नोक-झोंक में इसी प्रकार की शब्दावली प्रयोग की जाती है।

एहेडी हिन अदालत, आंऊं करण की डियां।

हे दावो तो मूं विच जो, सचडो मूंजो मियां॥७१॥

**शब्दार्थ-** एहेडी-ऐसा, हिन-इन, आंऊं-मैं, करण-करने, की-कैसे, डियां-देऊँ, हे दावो-यह दावा, तो-आपका, मूं-मेरे, विच जो-बीच का है, सचडो-सच्चा, मूंजे-मेरे, मियां-धनी।

**अर्थ-** मेरे सच्चे प्राणप्रियतम! इस प्रकार, ऐसा (झूठा न्याय) आपके न्यायालय में कैसे करने दूँगी अर्थात् कदापि नहीं होने दूँगी। यह मुकद्दमा तो मेरे और आपके बीच का है।

हाणे दाई मुदई बे जणां, जां मुकाबिल न हून।

तूं बेठो मथे तोरो गिनी, हे बेठयूं हिकल्यूं रून॥७२॥

**शब्दार्थ-** दाई-वादी, मुदई-प्रतिवादी, बे जणां-दो

जन, जां-जहाँ तक, मुकाबिल-सामने, हून-होवे, तूं-आप, बेठो-बैठिए, मथे-ऊपर, तोरो-हुकूमत, गिनी-लेकर, हे-यह (सखी), बेठ्यूं-बैठी, हिकल्यूं-अकेली, रून-रोती हूँ।

**अर्थ-** जब तक वादी-प्रतिवादी दोनों ही आमने-सामने न हों, तब तक निर्णय कैसे हो सकता है? आप परमधाम में न्याय का तराजू लेकर बैठे हैं और मैं इस संसार में अकेली बैठी हुई रो रही हूँ।

**भावार्थ-** मुकदमा करने वाला व्यक्ति "वादी" कहलाता है तथा जिस पर किया जाता है "प्रतिवादी" कहलाता है। "तोरो" (तोरई) शब्द का तात्पर्य होता है- न्याय रूपी तराजू या न्यायालय। इस चौपाई में "मैं" का आशय सभी सखियों से है, क्योंकि श्री इन्द्रावती जी उनकी प्रतिनिधि स्वरूपा हैं।



सिकां सडां दीदार के, बी सुणन के गाल।

मूं वजूद नासूत में, तूं धणी बका नूरजमाल॥७३॥

**शब्दार्थ-** सिकां-बिलखूँ, सडां-पुकारूँ, दीदार के-दर्शन को, बी-दूसरी, सुणन-सुनने, के-को, गाल-बातें, मूं-मेरा, वजूद-शरीर, नासूत में-संसार में, तूं-आप, धणी-प्रियतम, बका-अखण्ड।

**अर्थ-** हे धनी! मैं आपका दर्शन प्राप्त करने तथा आपकी प्यार भरी मीठी-मीठी बातों को सुनने के लिये बिलख रही हूँ तथा तरस रही हूँ। मेरा शरीर तो इस नश्वर जगत् में है, जबकि आप परमधाम में बैठे हैं।

**भावार्थ-** जिस प्रकार सर्वहारा वर्ग (गरीबों) का प्रतिनिधित्व करने वाला कम्युनिस्ट नेता अपने भाषण में स्वयं को गरीब कहता है जबकि वह स्वयं करोड़पति होता है, उसी प्रकार श्री इन्द्रावती जी ने सिन्धी ग्रन्थ में

अपने आपको धनी के दीदार एवं वार्ता के लिये बार-बार तरसने वाली तथा रोने वाली के रूप में वर्णित किया है। हमें ऐसा मानना चाहिए कि श्री महामति जी के शब्दों में सब सुन्दरसाथ की ही आवाज मुखरित हो रही है।

**भगो पण तूं न छुटे, मंगां हक नियाय।**

**सरो घुरे सच सभनी, या गरीब या पातसाह।।७४।।**

**शब्दार्थ-** भगो-भागते हुये, पण-भी, तूं-आप, न-नहीं, छुटे-बचेंगे, मंगां-माँगती हूँ, हक-सत्य, नियाय-न्याय, सरो-न्याय, घुरो-माँगती, सभनी-सबका।

**अर्थ-** यदि आप भागना भी चाहें, तो भी मैं आपको नहीं छोड़ूँगी। मैं आपसे सच्चा न्याय माँगती हूँ। चाहे कोई गरीब हो या सम्राट हो, सच्चा न्याय तो सभी को चाहिए।

सरे सच न्हार जे, हे जो सरो सुभान।

भोंणें भजंदो मूंहथी, पांण चाइए रेहेमान॥७५॥

**शब्दार्थ-** सरे-न्याय, सच-सच्चा, न्हार जे-देखना चाहिए, हे जो-यह जो, सरो-न्याय करता, सुभान-धनी, भोंणें-फिरते हैं, भजंदो-भागते, मूंहथी-मेरे से, पांण-आप, चाइए-कहलाते हैं, रेहेमान-दया के सागर।

**अर्थ-** हे धनी! आप न्याय करने वाले हैं, इसलिये अब आपका सच्चा न्याय देखना है। यद्यपि आप दया के सागर कहलाते हैं, फिर भी मुझसे भागे फिरते हैं।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी ने इस चौपाई में प्रेम की मीठी झिड़की दी है, जिसमें उन्होंने धनी से कहा है कि आप मुझसे इसलिये भागे फिरते हैं कि कहीं मेरे प्रेम - जाल में न फँस जाएँ।

मूं इलम खटाई तोहिजे, से भाइयां तोहिजा आसान।

तोके बंधो मूं रांद में, की छुटे भगो सुभान॥७६॥

**शब्दार्थ**— मूं—मुझको, इलम—ज्ञान ने, खटाई—जिताया, तोहिजे—आपके, से भाइयां—सो जानती, आसान—अहसान, तोके—आपको, बंधो—बाँध लिया, मूं—मैंने, रांद में—खेल में, की छुटे—कैसे छूटते हो, भगो—भागने से, सुभान—प्रिय, प्रियतम।

**अर्थ**— हे प्रियतम! आपके ज्ञान ने ही मुझे यह मुकदमा जिताया है, इसलिये मैं आपका एहसान मानती हूँ। मैंने आपको इस संसार में अपने प्रेम से बाँध लिया है। अब आप मुझसे भागकर कहाँ जायेंगे?

**भावार्थ**— प्रेम के विवाद रूपी मीठे फल का बहता हुआ रस इस चौपाई में दृष्टिगोचर हो रहा है। इसका रसास्वादन करने वाला निश्चित रूप से कोई भाग्यशाली

ही होता है।

आंऊं झल्ले ऊभी नियाके, हल्लण न डयां अहक।

मूं कंने जोर सरे इलम जो, मूं तोके खट्यो बेसक॥७७॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, झल्ले-पकड़कर, ऊभी-खड़ी, नियाके-न्याय का, हल्लण-चलने, न डयां-नहीं दूँगी, अहक-असत्य, मूं कंने-मेरे पास, जोर-शक्ति, सरे-सच्चे, इलम जो-ज्ञान की, मूं-मैंने, तोके-आपको, खट्यो-जीत लिया, बेसक-निश्चित रूप से।

**अर्थ-** मैं न्याय का दामन पकड़कर खड़ी हूँ। किसी भी स्थिति में झूठ का बल नहीं चलने दूँगी। मेरे पास आपके तारतम ज्ञान की सच्ची शक्ति है। निश्चित रूप से मैंने आपको जीत लिया है।

जे निया सामो न्हारिए, त पट न रखे दम।

त हक केई न्हारजे, हल्लाए हक हुकम॥७८॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, निया-न्याय से, सामो-सामने, न्हारिए-देखिए, त-तो, पट-पर्दा, न-नहीं, रखे-राखे, दम-क्षण मात्र, त-तब जो, हक-सच, केई- की तरफ, न्हारजे-देखिए तो, हल्लाए-चलता है, हक-प्रियतम का, हुकम-आदेश।

**अर्थ-** यदि न्याय की दृष्टि से देखें तो आपको एक पल के लिये भी मुझसे पर्दा नहीं करना चाहिए और यदि सत्य की दृष्टि से देखते हैं तो आपका सच्चा आदेश चलना चाहिए।

**भावार्थ-** सत्य, न्याय, और हुकम में वास्तविक सामञ्जस्य होना चाहिए। सत्य के आधार पर ही न्याय हो और उस न्याय के अनुसार ही प्रियतम का आदेश हो,

ऐसा श्री महामति जी की हार्दिक इच्छा है।

**सरो तोरो होए अदल, निया थिए तित।**

**हे गाल्यूं गुझांदर अर्स ज्यूं, कियां कढां गुहाई हित॥७९॥**

**शब्दार्थ-** सरो-न्यायालय, तोरो-कानून से न्याय, होए-होवे, अदल-सच, निया-न्याय, थिए-होता है, तित-तहाँ, हे गाल्यूं-यह बातें, गुझांदर-छिपी, अर्स ज्यूं-परमधाम की हैं, कियां-किसको, कढां-निकालूँ, गुहाई-साक्षी देने वाला।

**अर्थ-** यद्यपि न्याय तो परमधाम के न्यायालय में ही होना है, किन्तु जहाँ युक्तियाँ होती हैं वहीं न्याय होता है। परमधाम की ये गुह्य बातें हैं। प्रश्न यह है कि मैं इस नश्वर संसार में साक्षियाँ कहाँ से लाऊँ?

**भावार्थ-** ज्ञान और साक्षी के मेल से युक्ति का प्रकटन

होता है। बिना युक्ति के न्याय की आशा नहीं की जा सकती। श्री इन्द्रावती जी का आशय यह है कि इस मायावी संसार में अपने प्रेम को अखण्ड अधिकार सिद्ध करने के लिये मैं साक्षी कहाँ से लाऊँ?

**हित साहेद तूहीं तोहिजो, खिलवत में न बेओ।**

**जे बंग होए मूंह जो, से मूँजे सिर डेओ॥८०॥**

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ (धाम में), साहेद-साक्षी देने वाले, तूहीं-आप ही हो, तोहिजो-आपके, खिलवत में-एकांतवास में, न-नहीं, बेओ-दूसरा, जे बंग-जो दोष, होए-होवे, मूंह जो-मेरा, से-सो, मूँजे-मेरे, सिर-ऊपर, डेओ-देओ।

**अर्थ-** परमधाम के मूल मिलावा में आप और हम अँगनाओं के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है, इसलिये



आपकी ओर से साक्षी के रूप में आप स्वयं ही हैं। यदि मेरा कोई भी दोष सिद्ध होता है, तो उसे मेरे सिर पर अवश्य मढ़िए।

**भावार्थ-** मूल मिलावा में सखियों और धनी के अतिरिक्त कोई है ही नहीं, तो प्रेम की गुह्यतम बातों (अधिकार और कर्तव्य) के सम्बन्ध में साक्षी धनी के अतिरिक्त भला और कौन दे सकता है। यह पात्रता अक्षर ब्रह्म, जिबरील, इस्राफील, चतुष्पाद विभूति, आदिनारायण आदि किसी के भी पास नहीं है।

झोडो करियां कांध से, जे तो झोडाई।

तूं दाई तूं मुदई, हित तूंही गुहाई॥८१॥

**शब्दार्थ-** झोडो-झगड़ा, करियां-करती हूँ, कांध से-धनी से, जे-जो, तो-आपने, झोडाई-झगड़ा कराया,

तू-आप ही, दाई-वादी, तू-आप ही हो, गुहाई-साक्षी देने वाले।

**अर्थ-** हे धनी! जब आप झगड़ा कराते हैं, तो मैं करती हूँ। आप ही वादी (मुकदमा करने वाले) हैं तथा प्रतिवादी भी आप ही हैं। इस संसार में साक्षी देने वाले भी आप ही हैं।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी अपनी समर्पण भावना को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि मेरा तन-मन तो आपका ही है। आपकी प्रेरणा के बिना तो मैं साँस भी नहीं ले सकती, झगड़ा करना तो बहुत दूर की बात है।

**भोंणे लिकंदो मूंह थीं, आए नियां गाल घणी।**

**लाड कोड मंगां तो कने, अच मुकाबिल मूं धणी॥८२॥**

**शब्दार्थ-** भोंणे-फिरते, लिकंदो-छिपते, मूंह थी-

मुझसे, आए-आई, नियां-न्याय में, गाल-बात, घणी-  
 बहुत तरह, लाड-प्यार, कोड-हर्ष, मंगां-माँगती है, तो  
 कने-आपके पास, अच-आओ, मुकाबिल-सामने, मूं  
 धणी-मेरे प्रियतम।

**अर्थ-** आप मुझसे छिपते-फिरते हैं, जबकि न्याय की  
 दृष्टि से यह बहुत बड़ी बात है। मेरे प्रियतम! मेरे सामने  
 आइए। मैं आपसे प्रेम और आनन्द ही तो माँगती हूँ।

तांजे मुकाबिल न थिए, मूं थी छूटे न की।

पांण वतन बिंनीजो हिकडो, तूं मूंहजो पिरी॥८३॥

**शब्दार्थ-** तांजे-कदाचित्, मुकाबिल-सामने, न थिए-  
 नहीं होते हो, मूं थी-मुझसे, छूटे-छूट सकोगे, न-नहीं,  
 की-किसी तरह, पांण-अपना, वतन-निवास स्थान,  
 बिंनीजो-दोनों का, हिकडो-एक है, तूं-आप, मूंहजो-

मेरे, पिरी-प्रियतम हो।

**अर्थ-** यदि इस समय आप मेरे सामने नहीं आते हैं तो भी आप मुझसे छूट नहीं सकते, क्योंकि हम दोनों का घर तो एक ही है। इसके अतिरिक्त आप मेरे प्रियतम भी हैं।

**भावार्थ-** यह तो सर्वविदित है कि पति-पत्नी का घर एक ही होता है। ऐसी स्थिति में उनके अलग होने की कल्पना वैसे ही नहीं की जा सकती, जैसे सागर से लहरें एवं चन्द्रमा से चाँदनी अलग नहीं हो सकते।

तूं सचो धणी मूं सिर, तोके पुजां मय रांद।

लाड पाराइयां पांहिजा, तूं मूं सिर सचो कांध॥८४॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, सचो-सच्चे, धणी-प्रियतम, मूं-मेरे, सिर-ऊपर, तोके-आपको, पुजां-पहुँची, मय-

बीच, रांद-खेल में, लाड-प्यार, पाराइयां-पूर्ण करूंगी,  
पांहिजा-अपना, तूं-आप, मूं-मेरे, सिर-ऊपर हो,  
सचो-सच्चे, कांध-प्रियतम।

**अर्थ-** आप मेरे सच्चे प्रियतम हैं और मेरे शिर पर विराजमान हैं। मैं इस मायावी जगत् में भी आपको अवश्य पा लूंगी। मेरे अनादि प्रियतम! जब आप मेरे शिर पर विराजमान हैं, तो मैं आपका प्रेम भी अवश्य पाऊँगी।

**भावार्थ-** "शिर पर विराजमान होना" एक आलंकारिक कथन है। इसका तात्पर्य होता है- किसी महान व्यक्तित्व की छत्रछाया या सान्निध्यता में पल-पल बने रहना। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को सांकेतिक रूप में यह शिक्षा दी गयी है कि वे अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को बसाने के लिये कटिबद्ध हो जाएँ। श्री महामति जी ने तो अपने धाम धनी को पा ही लिया है, जो श्रीमुखवाणी के

इन कथनों से स्पष्ट होता है—

संई तूं मेरी बाई रतन, मोहे मिले छबीले लाल।

करी मुझे सोहागनी, अब मैं भई निहाल॥

प्रकास हिंदुस्तानी २८/११

अब मिल रही महामती, पिउ सों अंगों अंग।

अछरातीत घर अपने, ले चले हैं संग॥ किरंतन ४६/७

आंऊं धणियांणी तोहिजी, डे तूं मूं जी रे अंग।

मूं मुए पुठी जे डिए, हे केडी निसबत संग॥८५॥

**शब्दार्थ—** आंऊं—मैं, धणियांणी—अर्धांगिनी, तोहिजी—आपकी, डे तूं—देओ आप, मूं—मेरे, जी रे—जीते जी, अंग—शरीर में, मूं—मेरे, मुए—अन्त के, पुठी—बाद, जे डिए—जो देओ, हे—यह, केडी—कैसा, निसबत—सम्बन्ध,

संग-संग।

**अर्थ-** मैं आपकी अर्धांगिनी हूँ। आप मुझे अपना दिल (हृदय) दीजिए। यदि मेरे शरीर त्याग के पश्चात् ही अपना दिल देंगे, तो मेरा आपका प्रिया-प्रियतम का कैसा सम्बन्ध।

**भावार्थ-** दिल देने का आशय है- अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम लुटा देना और स्वयं के अस्तित्व को मिटा देना। विरह की पराकाष्ठा (अन्तिम सीमा) में हृदय से इसी प्रकार के उद्गार उठते हैं कि क्या आप मेरे शरीर छोड़ने के पश्चात् ही दर्शन देंगे? षट्क्रतु ७/१८ में यह भाव इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

आपोपूं जोलो नाखिए आंख मीची, त्यारे तमने आवे सरम।  
यद्यपि इस चौपाई में स्वयं श्री इन्द्रावती जी द्वारा अवश्य कहा गया है, किन्तु परोक्ष रूप में सुन्दरसाथ के

लिये जोर देकर यह शिक्षा दी गयी है कि उन्हें आत्म – जाग्रति के लिये विरह की अग्नि में जलना ही पड़ेगा।

**लाड़ कोड़ सभे त परे, जे मूं से गडजे हित।**

**वडो सुख थिए साथ के, मंगां जांणी निसबत॥८६॥**

**शब्दार्थ-** लाड़-प्यार, कोड़-हर्ष, सभे-सम्पूर्ण, त परे-तो पूर्ण हों, जे-जो, मूं से-मुझसे, गडजे-मिलिए, हित-यहाँ ही, वडो-बड़ा, सुख-आनन्द, थिए-होवे, साथ के-सखियों को, मंगां-माँगती हूँ, जांणी-जान के, निसबत-सम्बन्ध।

**अर्थ-** हे धनी! यदि आप सुन्दरसाथ सहित मुझे दर्शन देकर मिलते हैं, तो प्रेम और आनन्द की हमारी सभी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी। इस प्रकार सुन्दरसाथ को बहुत अधिक आनन्द होगा। आपसे परमधाम का मूल सम्बन्ध



जानकर ही मैं ऐसी माँग कर रही हूँ।

**सची सांजाए तूं करिए, समरथ तूं सुजाण।**

**संग जाणी करियां लाडडा, डिंने छुटे मेहेरबान॥८७॥**

**शब्दार्थ-** सची-सच्ची, सांजाए-पहचान, तूं-आप, करिए-करते हो, समरथ-सर्वशक्तिमान, सुजाण-जानकार, संग-सम्बन्ध, जाणी-जान के, करियां-करती हूँ, लाडडा-प्यार, डिंने-देकर, छुटे-छूटोगे, मेहेरबान-दया के सागर।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप सर्वसमर्थ हैं। आपने तारतम वाणी से अपनी सच्ची पहचान मुझे दे दी है। मेहर के सागर! परमधाम का मूल सम्बन्ध जानकर ही मैं आपसे प्रेम करती हूँ। आप भी मुझे प्रेम देकर ही छूट सकेंगे, अर्थात् आपको मुझे अवश्य प्रेम देना पड़ेगा

(मुझसे प्रेम करना पड़ेगा)।

तूं मेहेबूब लाडो कांध मूं, चौडे तबके सुई निसबत।

हांणे लिके थो के गालके, लाड जाहेर मंगे महामत॥८८॥

**शब्दार्थ-** मेहेबूब-प्यार, लाडो-धनी, कांध-प्रियतम, मूं-मेरे, चौडे-चौदे, सुई-सुना, निसबत-सम्बन्ध, हांणे-अब, लिके थो-छिपते हैं, के-कौन, गालके-बात को, लाड-प्यार, जाहेर-जाहेर, मंगे-माँगती है, महामत-श्री इन्द्रावती जी।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप मेरे प्रिय पति हैं। इस सम्बन्ध को चौदह लोकों ने भी सुन लिया है। अब आप मुझसे किस बात के लिये छिप रहे हैं। महामति की आत्मा आपसे प्रत्यक्ष रूप में (खुलकर) प्रेम माँगती है।

**भावार्थ-** चौदह लोकों में ब्रह्मवाणी के फैले बिना

अक्षरातीत और महामति के सम्बन्ध का ज्ञान सबको होना सम्भव नहीं है, किन्तु यह लीला छठे दिन (सुन्दरसाथ द्वारा होने वाली जागनी) के पश्चात् ही होगी। इस चौपाई में इस प्रकार का कथन आलंकारिक है, जिसमें भविष्य में घटित होने वाली बात को वर्तमान काल में प्रस्तुत किया जाता है।

**मूं दुलहिन के जाहेर तो केई, मूं दुलहा जाहेर तूं थेओ।**

**पांहिज्यूं रूहें जाहेर तो केयूं, तो रे आए न को बेओ॥८९॥**

**शब्दार्थ—** मूं—मुझ, दुलहिन के—अर्धांगिनी को, जाहेर—जाहेर, तो—आपने, केई—किया, मूं—मेरा, दुलहा—प्रियतम, थेओ—हुआ, पांहिज्यूं—अपनी, रूहें—आत्माओं को, तो—आपने, केयूं—किया, तो रे—आपके बिना, आए—है, न—नहीं, को—कोई, बेओ—दूसरा।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आपने मुझे अपनी अँगना के रूप में जाहिर कर दिया और आप मेरे पति (प्रियतम) के रूप में उजागर (प्रकट) हो गये। आपने अपनी अँगनाओं को भी यह स्पष्ट कर दिया है कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी उनका प्रियतम नहीं है।

तू लज करिए केह जी, या अर्स तांजे हित।

तो निसबत असां से, बेओ कोए न पसां कित॥९०॥

**शब्दार्थ-** लज-शर्म, करिए-करते, केह जी- किसको, या-या, अर्स-घर में, तांजे-कदाचित, हित-यहाँ पर, तो-आपका, निसबत-सम्बन्ध, असां से-हमसे, बेओ-दूसरा, कोए-कोई, न-नहीं, पसां-देखती, कित-कहीं।

**अर्थ-** जब परमधाम में या इस संसार में आपका सम्बन्ध केवल हमसे है और हमारे बीच में अन्य कोई

दूसरा है ही नहीं, तो आप हमसे प्रेम करने में किससे लज्जा का अनुभव कर रहे हैं?

**आई चोदां तूं की घुरे, हिन न्हाए में लाड।**

**आंऊं त घुरां तो लगाई, हिनमें हुकमें डे स्वाड॥९१॥**

**शब्दार्थ-** आई-आप, चोदां-कहोगे, की-क्यों, घुरे-माँगती है, हिन-इन, न्हाए में-खेल में, आंऊं-मैं, त घुरां-तब माँगती हूँ, लगाई-लगाई है (साथ), हिनमें-इनमें, हुकमें-आदेश से, डे-देओ, स्वाड-लज्जत।

**अर्थ-** आप इस बात को कह सकते हैं कि तुम इस मायावी संसार में प्रेम क्यों माँगती हो? इसके उत्तर में मैं यही बात कहती हूँ कि आपकी लगायी हुई माया में मैं प्रेम इसलिये माँग रही हूँ, क्योंकि आपके आदेश से इसमें ही प्रेम का स्वाद मिलेगा।

**भावार्थ-** परमधाम में प्रेम का विलास है, स्वाद नहीं। जिस प्रकार, नमक का ढेला समुद्र में डूबकर उसकी गहराई को नहीं माप पाता, उसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियाँ भी धनी के अथाह प्रेम में डूबी होने के कारण उसकी (प्रेम की) वास्तविक पहचान नहीं कर सकी थीं। इस मोहमयी संसार में प्रेम है ही नहीं। इसलिये, तारतम वाणी द्वारा प्रेम की पहचान करने के पश्चात् श्री महामति जी की आत्मा (सभी आत्मायें) धनी से प्रेम चाहती है, ताकि उसका स्वाद (लज्जत) लिया जा सके। श्रीमुखवाणी में इसे इन शब्दों में व्यक्त किया गया है-

एक पातसाही अर्स की, और वाहेदत का इश्क।

सो दिखलावने रूहों को, पेहेले दिल में लिया हक॥

खिलवत ६/४३

असीं आयासी रांद में, त लाड मंगूं मय हिंन।

असीं की की डिसूं हिनके, आंई ईनी पसेजा जिन॥९२॥

**शब्दार्थ**— असीं—हम, आयासी—आये हैं, रांद में—खेल में, त—तो, मंगूं—माँगती हूँ, मय—बीच, हिंन—इन खेल में, असीं—हम, की की—कुछ कुछ, डिसूं—देखती, हिनके—इनको, आंई—आप, ईनी—इनको, पसेजा—देखो, जिन—मत।

**अर्थ**— हम सभी आत्मायें इस माया के खेल में आयी हुई हैं, इसलिये इस संसार में आपसे प्रेम माँग रही हैं। हमने तो इस माया को बहुत थोड़ा सा ही देखा है, किन्तु आप इसे मत देखिएगा।

आंई लज कंदा इनजी, त आं पण लगी ए।

आंके पण ए न छुटी, गिनी वेई असां के जे॥९३॥

**शब्दार्थ-** आंई-आप, लज-मर्यादा, कंदा-करते हो, इनजी-इनकी, त-तो, आं-आपको, पण-भी, लगी-लिपटी है, ए-यह, आंके-आपको, पण ए-भी यह, न छुटी-नहीं छूटी, गिनी-ले, वेई-गई, असां के-हमको, जे-जो।

**अर्थ-** क्या हमें लगने वाली यह माया आपको भी लग गयी है, जो आप हमारे सम्मुख आने में लज्जा का अनुभव कर रहे हैं? हमें तो यह माया घसीटकर अपने जाल में ले ही गयी है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह आपसे भी परमधाम में नहीं छूट पा रही है, जिसके कारण आप हमें दर्शन नहीं दे पा रहे हैं।

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में प्रेम के हास - परिहास का मुग्ध कर देने वाला चित्रण है। प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि वह सर्वशक्तिमान परब्रह्म को



भी अपनी सत्ता और गरिमा छिपाने के लिये विवश कर देता है। आगे की तीनों चौपाइयों में भी यही स्थिति है।

**हांणे हितरयूं गाल्यूं को करयो, को झोडो बधारयो।**

**हे झोडो सभे त चुके, जे असांजा लाड पारयो॥९४॥**

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, हितरयूं-इतनी, गाल्यूं-बातें, को-किसलिये, करयो-करते हो, को-क्यों, झोडो-झगड़ा, बधारयो-बढ़ाते हो, हे-यह, झोडो-झगड़ा, सभे-सम्पूर्ण, त चुके-तो निपटे, जे-जो, असांजा-हमारा, पारयो-पूर्ण करो।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! अब आप व्यर्थ में इतनी बातें क्यों करते हैं? झगड़े (विवाद) को क्यों बढ़ाते जा रहे हैं? यह झगड़ा तो अब तभी समाप्त होगा, जब आप हमारे प्रेम की इच्छा पूर्ण करेंगे अर्थात् हमसे प्रेम करेंगे।

**भावार्थ-** सिन्धी ग्रन्थ में वर्णित प्रेम को स्वप्न में भी लौकिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। जब पञ्चभूतात्मक शरीर का भान (आभास, अस्तित्व) समाप्त हो जाता है, वहाँ से प्रेम की पहली कक्षा प्रारम्भ होती है। अक्षरातीत के शब्दातीत प्रेम को मानवीय बुद्धि से यथार्थ रूप में नहीं समझा जा सकता।

**तूं कितेई भगो न छुटे, अर्स में मूं मांध।**

**लाड पाराइयां पांहिजा, पुजी पल्लो पांध॥९५॥**

**शब्दार्थ-** कितेई-कहीं, भगो-भागने से, न-नहीं, छुटे-छूट सकोगे, अर्स में-धाम में, मूं-मेरे, मांध-आगे, पाराइयां- पूर्ण कराती हूँ, पांहिजा-अपना, पल्लो-पल्ला, पांध-कपड़े का।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! परमधाम में तो आप मेरे सामने

से किसी भी प्रकार से भागकर नहीं बच सकेंगे (छूट पायेंगे)। मैं आपका पल्ला पकड़कर अपने प्रेम की इच्छा को पूर्ण कर लूँगी।

**भावार्थ-** "पल्ला पकड़ने" का कथन आलंकारिक है। किसी के वस्त्र (पटुका, जामा आदि) के आँचल (किनारे के भाग) को पकड़ लेने पर वह विवश होकर रुक जाता है, भाग नहीं सकता। पल्ला पकड़ने का यही आशय है।

अई कितेई छुटी न सगे, आंऊं किएं न छडियां आं।

महामत चोए मूं दुलहा, पार सघरा लाड असां॥९६॥

**शब्दार्थ-** अई-आप, कितेई-कहीं भी, छुटी-छूट, न-नहीं, सगे-सकते हैं, आंऊं-मैं, किएं-किसी तरह से, न-नहीं, छडियां-छोड़ूँगी, आं-आपको, चोए-कहते हैं, मूं-मेरे, दुलहा-प्रियतम, पार-पूर्ण करो, सघरा-सब,

लाड-प्यार, असां-हमारे।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम! अब आप कहीं भी मुझसे छूट नहीं सकेंगे। मैं आपको किसी भी प्रकार से नहीं छोड़ूँगी। अतः आपका प्रेम पाने की मेरे मन में जो भी इच्छायें हैं, उन्हें आप पूर्ण कीजिए।

**प्रकरण ॥७॥ चौपाई ॥३४१॥**

## बाब जाहेर थियणजा

### जाहेर होने का प्रकरण

इस प्रकरण में श्री श्यामा जी द्वारा दोनों तनों से होने वाली जागनी लीला एवं ब्रह्मसृष्टियों के इस खेल में जाहिर (प्रकट) होने का वर्णन है।

**रूह-अल्ला डिंन्यूं निसानियूं, जे लिख्यूं मय फुरमान।**

**से सभ मिडाए दाखला, करे डिंनाऊं पेहेचान॥१॥**

**शब्दार्थ-** रूह अल्ला-देवचन्द्र जी , डिंन्यूं-दिये, निसानियूं-उदाहरण, जे-जो, लिख्यूं-लिखे, मय-बीच, फुरमान-सन्देश के, से सभ-वह सम्पूर्ण, मिडाए-मिलापे, दाखला-दृष्टान्त, करे-कराए, डिंनाऊं-दर्श, पेहेचान-जानकारी।

**अर्थ-** सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने परमधाम, खेल

में ब्रह्मसृष्टियों के आने, तथा जागनी लीला के सम्बन्ध में जो पहचान दी थी, वह धर्मग्रन्थों में संक्षेप रूप से लिखी हुई है। मैंने उन सभी धर्मग्रन्थों की साक्षियों को मिला एक सत्य की पहचान करा दी है।

**भावार्थ-** फुरमान (फर्मान) शब्द का अर्थ होता है आदेश पत्र। धाम धनी के आदेश से जिन धर्मग्रन्थों का इस संसार में अवतरण हुआ है, वे सभी फुरमान ग्रन्थ ही माने जायेंगे। इसके अन्तर्गत कुरआन, वेद, भागवत्, पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र आदि आयेंगे।

न तां केर रांद केडी आए, हे रूहें को जांणे।

डियण असांके सुखडा, तो उपाइए पांणे॥२॥

**शब्दार्थ-** न तां-नहीं तो, केर-कौन, रांद-खेल, केडी-कैसी, आए-हैं, हे-यह, रूहें-सखी, को जांणे-

क्या जाने, डियण-देने, असांके-हमको, सुखडा-सुख,  
तो-आपने, उपाइए-उत्पन्न कराया, पांणे-आप ही।

**अर्थ-** अन्यथा इन आत्माओं को क्या मालूम कि यह कौन सा खेल है और हम कहाँ से आयी हैं? हमें पहचान का सुख देने के लिये ही तो आपने हमारे दिल में खेल देखने की इच्छा पैदा की।

**भावार्थ-** तारतम ज्ञान द्वारा ही सम्पूर्ण धर्मग्रन्थों के रहस्य विदित हुए हैं और प्रियतम के धाम, स्वरूप, लीला आदि का बोध हुआ है। यदि ऐसा नहीं हुआ होता, तो किसी को भी यह पता नहीं चल पाया होता कि हम कौन हैं और हमारा मूल घर कहाँ है।

न की जाणूं रांद के, आं दिल उपाई पांण।

डियण असांके सुखडा, हे दिलमें आईम जांण॥३॥

**शब्दार्थ-** न की-नहीं कुछ, जाणूं-जानती, रांद के-खेल को, आं-आपने, दिल-दिल में, उपाई-उत्पन्न कराई, पांण-आप ही, डियण-देने, असांके-हमको, आईम-आई, जांण-जानकारी।

**अर्थ-** हे प्रियतम! हम तो इस खेल के बारे में कुछ भी नहीं जानती थीं। हमें सुख देने के लिये यह बात आपके दिल में आयी।

**भावार्थ-** इस चौपाई में "यह बात" का आशय खेल दिखाने से है। धाम धनी ने अपने दिल में यह ले लिया कि मैं अपनी अँगनाओं को माया में भेजकर अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान कराऊँ, ताकि इन्हें और अधिक आनन्द मिल सके। "मेहर का दरिया दिल में लिया, तो रूहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा" का कथन इसी सन्दर्भ में है।



हे जा हित रांदडी, केइया असां कारण।

त असां की पसाइए दुखडा, असीं आयासी न्हारण॥४॥

**शब्दार्थ-** हे जा-यह जो, हित-यहाँ, केइया-किया, असां-हम, कारण-वास्ते, त-तो, असां-हमको, की-कैसे, पसाइए-देखाते हो, आयासी-आये हैं, न्हारण-देखने।

**अर्थ-** जब माया का यह खेल हमारे लिये ही बनाया गया है तो हमें दुःख क्यों होता है, जबकि हम तो मात्र देखने के लिये ही आयी हैं।

**भावार्थ-** जीव ही सुख-दुःख का भोक्ता है, जबकि आत्मा द्रष्टा है। जब तक आत्मा की दृष्टि शरीर और संसार में केन्द्रित होती है, तब तक वह जीव के दुःख को ही अपना दुःख मान लेती है, क्योंकि वह जीव भाव का परित्याग नहीं कर पाती। जाग्रत होने के पश्चात् ही दुःखों

के बन्धन से मुक्ति मिलती है।

केआंऊं वडी रांदडी, कागर मूक्यो की हित।

डियण साहेदी सभनी, लिख्या लखे भत॥५॥

**शब्दार्थ-** केआंऊं-करके, वडी-बड़ा, कागर-धर्मग्रन्थ, मूक्यो-भेजे, की-क्यों, हित-यहाँ, डियण-देने, साहेदी-साक्षी, सभनी-सब ग्रन्थों की, लिख्या-लिखा, लखे-लाखों, भत-तरह से।

**अर्थ-** हमारे लिए इतना बड़ा खेल बनाकर आपने धर्मग्रन्थों को क्यों भेजा ? इन धर्मग्रन्थों में सभी प्रकार की साक्षियों को देने के लिये आपने लाखों प्रकार से लिखा।

**भावार्थ-** सभी प्रकार की साक्षियों का आशय है- क्षर, अक्षर, और अक्षरातीत की पहचान, ब्रज, रास, जागनी

ब्रह्माण्ड की लीला, इश्क-रब्द आदि से सम्बन्धित साक्षियाँ। इन साक्षियों को अनेक धर्मग्रन्थों में, अनेक प्रकार की भाषाओं में, अनेक शैलियों में लिखा गया है। इसे ही लाखों प्रकार से लिखना कहा गया है। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार है, जिसका भाव है- बहुत प्रकार से लिखना। इस अलंकार में किसी तथ्य को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है।

**पाण केयां को पधरो, उपटे बका दर।**

**मूकियां रूह अर्स जी, डेई संडेहो कुंजी कागर॥६॥**

**शब्दार्थ-** पाण-आपने, केयां-किया, को-काहे को, पधरो-जाहेर, उपटे-खोल के, बका-अखण्ड, दर-दरवाजा, डेई-देकर, संडेहो-सन्देश, कुंजी-तारतम।

**अर्थ-** आपने अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोलकर

स्वयं को प्रकट (जाहिर) क्यों कर दिया ? आपने परमधाम से अपने सन्देशों के साथ श्यामा जी को भेजा, जिनके साथ वह तारतम ज्ञान आया, जिसमें धर्मग्रन्थों के रहस्यों को खोलने (स्पष्ट करने) की कला (चाबी, कुञ्जी) है।

**मांधा जणाया सभ के, डियण के आकीन।**

**ईंदो रब आलम जो, सभ कंदो हिक दीन॥७॥**

**शब्दार्थ-** मांधा-आगे से, जणाया-जानकारी की, सभ के-सब लोगों को, डियण के-देने को, आकीन-यकीन (ईमान), इंदो-आवेगा, रब-परमात्मा, आलम जो-संसार का, कंदो-करेंगे, हिक-एक, दीन-धर्म।

**अर्थ-** संसार के सभी लोगों को विश्वास दिलाने के लिये आपने साक्षी रूप इन ग्रन्थों से बता दिया कि समस्त

ब्रह्माण्ड के स्वामी परब्रह्म आने वाले हैं। वे सभी के लिये एक धर्म (श्री निजानन्द सम्प्रदाय) की स्थापना करेंगे।

**भावार्थ-** मूलतः धर्म एक ही है, जो सत्य है, शाश्वत है, और अनादि है। उस धर्म की शाखायें ही सम्प्रदाय या मत-पन्थ कहलाती हैं। निजानन्द सम्प्रदाय में निहित अखण्ड ज्ञान को सारा ससार योगमाया के ब्रह्माण्ड में ही स्वीकार करेगा।

**हिन जिमीमें पातसाही, कंदो चारीस साल।**

**चई खुटे पुंना कागर, जाहेर केयाऊं गाल॥८॥**

**शब्दार्थ-** हिन-इस, जिमीमें-पृथ्वी में, पातसाही-राज्य, कंदो-करेंगे, चारीस-चालीस, साल-वर्ष, चई-चारों, खुटे-तरफ, पुंना-पहुँचेंगे, कागर-सन्देश, जाहेर-प्रत्यक्ष, केयाऊं-करी सब, गाल-बातें।

**अर्थ-** श्री श्यामा जी इस संसार में चालीस वर्षों (वि.सं. १७३५-१७७५) तक अपना स्वामित्व दर्शायेंगी। इस प्रकार का सन्देश चारों दिशाओं में फैल गया है। इस बात को अब मैं उजागर (प्रकट) कर रही हूँ।

**असीं आया आंजे हुकमें, मंझ लैलत कदर।**

**सौ साल रख्या ढंकई, जाहेर केयां आखिर॥९॥**

**शब्दार्थ-** असीं-हम, आया-आये, आंजे-आपके, हुकमें-आज्ञा से, मंझ-बीच, लैलत-रात में, कदर-कुदरती, सौ-सौ, साल-वर्ष, रख्या-रखा, ढंकई-छिपा, जाहेर-जाहिर, केयां-किया, आखिर-अन्त समय।

**अर्थ-** आपके आदेश से हम आत्मायें भी इस मायावी

जगत की लैल-तुल-कद्र में आयीं। परमधाम की अनमोल निधि सौ वर्ष तक छिपी रही और अन्त में पद्मावती पुरी धाम में प्रकट हुई।

**भावार्थ-** लैल तुल कद्र का अर्थ होता है - इस प्रकार की वह लम्बी रात्रि, जिसमें परमधाम की आत्मायें और ईश्वरी सृष्टि श्री राज जी के आदेश से इस संसार में अवतरित हुईं। यह प्रसंग कुरआन के तीसवें पारे में वर्णित है।

वि.सं. १६३८ में श्री देवचन्द्र जी का जन्म हुआ। उनके अन्दर विराजमान होकर श्यामा जी ने वि.सं. १७१२ तक लीला की। पुनः जब उन्होंने दूसरा तन धारण किया, तो वि.सं. १७३८ तक वे रामनगर पहुँची। यहाँ से परमधाम की वाणी का प्रकाश फैलना प्रारम्भ हुआ और पन्ना जी में खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ के रूप में

पूर्ण हुआ। इसे ही सौ वर्ष (१६३८-१७३८) तक छिपा रहना कहा गया है।

हजार साल दुनीजा, सो हिकडो डींह रब जो।

से डींह रात बए गुजरया, कियां जाहेर रोज-फरदो॥१०॥

**शब्दार्थ-** हजार-हजार, साल-वर्ष, दुनीजा-संसार के, सो-वह, हिकडो-एक, डींह-दिन, रब जो-ब्रह्म का, से-सो, डींह-दिन, रात-रात्रि, बए-दोनों, गुजरया-व्यतीत हुए, कियां-किया, जाहेर-जाहिर, रोज-भविष्य।

**अर्थ-** संसार के हजार वर्ष के बराबर श्री राज जी का एक दिन होता है। इस प्रकार दिन और रात्रि दोनों के बीत जाने पर कल (फरदा रोज) फज्र का दिन जाहिर किया।



**भावार्थ-** कुरआन के दूसरे पारे में यह वर्णित है कि दुनिया के हजार वर्ष के बराबर खुदा का एक दिन होता है। इसी प्रकार अट्टाइसवें पारे में लिखा है कि दुनिया के १०० वर्षों के बराबर खुदा की एक रात्रि होती है। इस प्रकार १०००+१०० अर्थात् रसूल साहब के पर्दे में होने (संसार से जाने) के ११०० वर्ष बाद बारहवीं सदी में अखण्ड ज्ञान का प्रकाश फैलने का कथन है। इसे ही फारसी भाषा में फरदा रोज और अरबी में फज्र का दिन कहा गया है।

इस प्रकार के माप का कथन केवल ब्रह्मसृष्टियों को फज्र का समय बताने के लिये किया गया है, अन्यथा परमधाम के एक पल में ही यहाँ के करोड़ों वर्ष बीत जायेंगे।

सा कुंजी कागर मूं डेई, उपटे बका दर।

मूं गड्यूं से गिनी आइस, रूहें छते घर॥११॥

**शब्दार्थ-** सा-सो, कुंजी-हिकमत, कागर-धर्मग्रन्थ, मूं-मुझको, डेई-देकर, उपटे-खोले, बका-अखण्ड के, दर-दरवाजे, मूं-मुझको, गड्यूं-मिली, से-सो, गिनी-लेकर, आइस-आई, रूहें-सखियों को, छते-छत्रसाल के, घर-निवास।

**अर्थ-** आपने धर्मग्रन्थों के ज्ञान सहित तारतम ज्ञान की कुंजी मुझे दी और अखण्ड परमधाम का द्वार खोल दिया। मुझे जो आत्मायें मिली थीं, उन्हें लेकर मैं छत्रसाल जी के घर आ गयी।

मूं धणी जाहेर थेओ, दीन दुनी सुरतान।

गाल सुई सभनी, हिंदू मुसलमान॥१२॥

**शब्दार्थ-** मूं-मेरे, धणी-प्रियतम, जाहेर-जाहिर, थेओ-भये, दीन-धर्मों के, दुनी-संसार, सुरतान-बादशाह, गाल-बात, सुई-सुनी, सभनी-सबने, हिंदू-हिंदू, मुसलमान-मुस्लिम सहित।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम तथा संसार के सभी धर्मों के स्वामी (परब्रह्म) इस संसार में आ गये हैं। इस बात को हिन्दू-मुस्लिम सभी ने सुना।

**वडी रांद डिखारिए, असां वडयूं करे।**

**त पसूं वडाई अंखिएं, जे सभ दुनियां सई फिरे॥१३॥**

**शब्दार्थ-** वडी-बड़ा, रांद-खेल, डिखारिए-दिखाया, असां-हमको, वडयूं-बड़ा, करे-किया, त-तक, पसूं-देखूँ, वडाई-बड़ाई, अंखिएं-नेत्रों से, जे सभ-जो सब, सई-आदेश, फिरे-चले।

**अर्थ-** हे धाम धनी! आपने हमें इस संसार में महान गरिमा वाला बनाया है तथा माया के इस बहुत बड़े रहस्यमयी खेल को दिखाया है। मैं अपनी आँखों से इस शोभा को देखना चाहती हूँ, जिसमें सारी दुनिया आपके आदेश में चले।

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी (श्री महामति जी) के धाम हृदय में अक्षरातीत ने विराजमान होकर अपनी सारी शोभा दे रखी है और उन्हें हिन्दुओं में विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक, मुस्लिमों में आखरूल इमाम मुहम्मद महदी साहिब्बुज्जमाँ, और क्रिश्चियनों में Second Christ की शोभा से विभूषित किया है। बुद्ध गीता, Bible, और हदीसों के कथन "अक्षरातीत एषो वै पुरुषो बुद्ध उच्यते" तथा "And He will persuade all over the world" इस सत्य का उद्घोष कर रहे हैं। श्री इन्द्रावती

जी का कथन है कि जब सारा संसार मेरे धाम हृदय में विराजमान आप अक्षरातीत को अपना इष्ट मानने लगे, तब मैं अपने आपको धन्य-धन्य मानूँगी। वस्तुतः यह लीला योगमाया के ब्रह्माण्ड में होगी, जहाँ यह सारा ब्रह्माण्ड एक परब्रह्म की छत्रछाया को स्वीकार करेगा। वृक्षों, पत्थरों, मजारों, और नदियों के रूप में अपने-अपने काल्पनिक इष्टों की पूजा-भक्ति करने वाला यह संसार भला अक्षरातीत से प्रेम कैसे कर सकता है।

**पेरां कागर कई मूँके, आकीन डियण के सभन।**

**से निसान पुंना सभनी, केयां रांदमें रोसन॥१४॥**

**शब्दार्थ-** पेरां-पहले से, कागर-वेद शास्त्रादि, मूँके-भेजे, आकीन-विश्वास, डियण के-देने के लिये, सभन-सबको, से-सो, निसान-भविष्य के चिन्ह, पुंना-पहुँचे,

केयां-किया, रांदमें-खेल में, रोसन-जाहिर।

**अर्थ-** संसार के सभी लोगों को विश्वास दिलाने के लिये आपने पहले से ही कई धर्मग्रन्थों को भेज रखा था। धर्मग्रन्थों के वे सभी प्रमाण लोगों के पास पहुँच चुके हैं और उन्होंने इस संसार में आपको प्रकट (जाहिर) कर दिया है।

**भावार्थ-** हिन्दू धर्मग्रन्थ जैसे पुराण संहिता, माहेश्वर तन्त्र, बुद्धगीता, श्रीमद्भागवत्, भविष्य दीपिका, भविष्योत्तर पुराण, दशमग्रन्थ, कबीर-वाणी आदि में परब्रह्म के विजयाभिनन्द बुद्ध निष्कलंक स्वरूप में प्रकट होने का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन, हदीसों, तथा Bible के New Testament में भी यह तथ्य वर्णित है।

हे रोसन सभे पसी करे, असां दावो थेओ तोसे।

तांजे मुकाबिल न थिए, त आंऊं पल्लो पुजां के॥१५॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, रोसन-प्रत्यक्ष, सभे-सम्पूर्ण, पसी-देख, करे-करके, असां-हमारा, दावो-दावा, थेओ-हुआ, तोसे-आपसे, तांजे-आप जो, मुकाबिल-सामने, न-नहीं, थिए-होओ, त-तो, आंऊं-मैं, पल्लो-पल्ला, पुजां-पकड़ूँ, के-किनको।

**अर्थ-** इन सभी भविष्यवाणियों को देखकर ही आपके समक्ष (सामने, पास में) मेरा दावा है। यदि आप यह सब जानकर भी मुझे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देते हैं, तो आप ही बताइये कि मैं किसका पल्ला पकड़ूँ अर्थात् किसको अपना सर्वस्व स्वीकार करूँ।

तांजे मूं कूडी करिए, त हितरो कुजाडो के के।

त हेडा कागर सभनी, कुरे के लिखे॥१६॥

**शब्दार्थ-** तांजे-आपको, मूं-मुझको, कूडी-झूठ ही, करिए-करते हो, त-तो, हितरो-इतना, कुजाडो-काहे को, के के-किया, त-तो, हेडा-इतने, कागर-प्रमाण पत्र (चिट्ठी), सभनी-सबको, कुरे-काहे, के-को, लिखे-लिखे।

**अर्थ-** यदि आप मुझे ही झूठा सिद्ध करना चाहते हैं, तो इतना सब कुछ आपने किसके लिए किया? आपने इतने धर्मग्रन्थों में अपनी साक्षियाँ क्यों लिखी?

**भावार्थ-** श्री महामति जी के कथन का आशय यह है कि यदि आप सबको दर्शन देते हैं, तो सभी को विश्वास हो जायेगा कि अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म इस संसार में आये हैं, अन्यथा धर्मग्रन्थों की भविष्यवाणियाँ झूठी हो जायेंगी।



श्री महामति जी की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिये धाम धनी ने श्री पद्मावती पुरी धाम (पन्ना) में सबको उनके भावों के अनुसार ही दर्शन दिया। जब श्री महामति जी अपने मुखारविन्द से ज्ञान की अमृत धारा प्रवाहित करते थे, तो उनके धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी का आवेश ही परमधाम के युगल स्वरूप (श्री राज श्यामा जी), रास विहारी श्री कृष्ण, मुहम्मद साहब, या सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के रूप में दर्शन देता था।

सुर असुर सबों को पति, सब पर एकै दया।

देत दीदार सबन को सांई, जिनहूं जैसा चाह्या॥

किरंतन ५९/७

जे मूं कूडी करिए, त भले कूडी कर।

त पांहिजो नालो डेई, को लिखे कागर॥१७॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, मूं-मुझे, कूडी-झूठी, करिए-करना चाहते हैं, त-तो, भले-भले, कर-करो, त-तो, पांहिजो-अपना, नालो-नाम, डेई-देकर, को-क्यों, लिखे-लिखे, कागर-धर्मग्रन्थ (वेदादि)।

**अर्थ-** यदि आप मुझे झूठा ही सिद्ध करना चाहते हैं, तो कर लीजिए। यदि आपको ऐसा ही करना था, तो आपने अपने नाम से धर्मग्रन्थों में इतनी साक्षियाँ क्यों लिखीं।

**भावार्थ-** अपने नाम से लिखने का तात्पर्य है कि परब्रह्म के आदेश से परब्रह्म के ही प्रकट होने के बारे में लिखा जाना। जैसे कुरआन का अवतरण परब्रह्म (अल्लाह तआला) के जोश से हुआ है, और उसमें कियामत के समय (फरदा रोज) को सबको परब्रह्म के दर्शन प्राप्त होने का वर्णन है। ऐसा ही वर्णन पुराण संहिता एवं

माहेश्वर तन्त्र में भी है।

**पट अर्स अजीम जो, मुराई की उघाडे।**

**जे मूं कोठिए लिकंदी, त आंऊ को न अचां लिके॥१८॥**

**शब्दार्थ-** पट-पर्दा, अर्स अजीम जो-परमधाम का, मुराई-मूल से, की-क्यों, उघाडे-खोला, जे मूं-जो मुझको, कोठिए-बुलाओ, लिकंदी-छिपती, त आंऊ-तो मैं, को-क्यों, न-नहीं, अचां-आऊँ, लिके-छिप के।

**अर्थ-** आपने परमधाम का दरवाजा प्रारम्भ से ही क्यों खोल रखा है? यदि आप मुझे छिपकर बुलाते हैं, तो मैं छिपकर अकेले क्यों नहीं आऊँ?

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी सबको परमधाम के पच्चीस पक्षों एवं युगल स्वरूप की शोभा-श्रृंगार का

वर्णन सुनाया करते थे, ताकि उसको दिल में बसाकर  
सुन्दरसाथ जाग्रत हो सकें। श्रीमुखवाणी एवं बीतक  
साहिब में यह प्रसंग इस प्रकार वर्णित है—

सब सोभा देखों निज नजर, अपना वतन निजघर।  
धनी केहे केहे चित चढ़ाई, पर नैनो अजूं न देखाई॥

प्रकास हिंदुस्तानी ३/७

धनिएं आगूं अर्स के, कहे तीन चबूतर।  
दाहिनी तरफ तले तीसरा, हरा दरखत तिन पर॥

परिकरमा ३०/१६

भाव काढ़ दिखावहीं, सब चर्चा को रूप।  
बरनन करें श्री राज को, सुन्दर रूप अनूप॥

बीतक ११/१९

श्री महामति जी का आशय सब सुन्दरसाथ को युगल

स्वरूप एवं परमधाम का साक्षात्कार कराना है। इसलिये परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ के अवतरण के पश्चात् जब अन्तिम ग्रन्थ मारिफत सागर भी अवतरित हो गया, तो वि.सं. १७४८-१७५१ तक उन्होंने स्वयं गुम्मट जी की गुम्मटी में बैठकर चितवनि (ध्यान) की तथा सब सुन्दरसाथ को भी चितवनि करने के लिये प्रेरित किया। धाम चलने अर्थात् धाम देखने के प्रसंग वाले सभी कीर्तन इसी समय उतरे। स्वयं श्री इन्द्रावती जी (महामति जी) द्वारा चितवनि करना ही "अकेले" आना है तथा सुन्दरसाथ को भी उसमें लगाना "सबके साथ" आना है। "चलो चलो रे साथ, आपन जईए धाम" (किरंतन ८९/१) का कथन यही तथ्य दर्शाता है। इसी सिन्धी ग्रन्थ में १/४३ में उन्होंने स्पष्ट कहा है- "आऊं हेकली की थिया" अर्थात् मैं अकेली आप के पास कैसे

आऊँ?

एहेडी हुई तो दिलमें, त मूँके जाहेर को केइए।

इलम डेई मूं मंझ बेही, वैण वडा को कढे॥१९॥

**शब्दार्थ**— एहेडी—ऐसी, हुई—भई, तो—आपके, दिलमें—दिल के अन्दर, त—तो, मूँके—मुझको, जाहेर—जाहेर, को—क्यों, केइए—करी, इलम—ज्ञान, डेई—देकर, मूं—मेरे, मंझ—बीच, बेही—बैठकर, वैण—वचन, वडा—भारी, को—क्यों, कढे—निकाले।

**अर्थ**— हे धनी! यदि आपके दिल में ऐसी बात थी, तो आपने मुझे इतनी बड़ी शोभा और उत्तरदायित्व देकर संसार में जाहिर (प्रकट) क्यों कर दिया? आपने मेरे अन्दर विराजमान होकर अखण्ड ज्ञान का प्रकाश किया और मेरे मुख से ब्रह्मवाणी के रूप में बड़े—बड़े वचन क्यों

कहलवाये?

**भावार्थ-** श्री इन्द्रावती जी सब सुन्दरसाथ को धाम धनी का दीदार कराना चाहती हैं। उनका यही आशय है कि यदि आपको अकेले मुझे ही दर्शन देना है, तो आपने इतनी आत्माओं को मेरे पीछे क्यों लगा दिया? मेरे तन से ब्रह्मवाणी का अवतरण होने एवं जागनी का उत्तरदायित्व होने के कारण, सब सुन्दरसाथ मुझे ही आपका स्वरूप मानकर दीदार की आस लगाये बैठा है। इसलिये, अब तो आपको सामूहिक दर्शन देना ही पड़ेगा।

कोई तोके वैण विगो चोए, त से आंऊं सहां की।

मूं साहेदयूं सभ तोहिज्यूं, गिड्यूं मूर मुराई॥२०॥

**शब्दार्थ-** तोके-आपको, वैण-वचन, विगो-टेढे, चोए-कहे, त-तो, से-सो, आंऊं-मैं, सहां-सहन

करूँ, की-कैसे, मूं-मैंने, साहेदयूं-साक्षियाँ, सभ-सम्पूर्ण, तोहिज्यूं-आपकी, गीड्यूं-लई, मूर-मूल, मुराई-निज से।

**अर्थ-** आपके सम्बन्ध में यदि कोई कटु वचन कहता है, तो मैं उसे कैसे सहन कर सकती हूँ? इस खेल में आने से पहले परमधाम से लेकर अब तक की आपकी सभी साक्षियों को मैंने ग्रहण किया है।

**भावार्थ-** एक सर्वशक्तिमान, अनादि सत्ता के प्रति नतमस्तक तो संसार के सभी धर्मानुयायी हैं, किन्तु वे श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत के युगल स्वरूप को नहीं पहचान पाते और उन्हें कटु शब्दों से सम्बोधित करते हैं। श्री महामति जी को यह सह्य नहीं है कि कोई भी उनके धाम हृदय में विराजमान अक्षरातीत (श्री प्राणनाथ जी) के प्रति कटु भाषा का



प्रयोग करे। "यों कई छल मूल कहूं मैं केते, मेरो टोने ही को आकार। ए माया अमल उतारे महामत, ताको रंचक ना रहे खुमार॥" (किरंतन १२०/११) तथा "मुझे आदमी देखे इत" (बीतक ४७/११४) का कथन यह स्पष्ट करता है। क्यामतनामा में भी इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है—

इन मोती का मोल कह्यो न जाए, ना किनहूं कानों सुनाए।  
सोई जले जो मोल करे, और सुनने वाले भी जल मरे॥

बड़ा क्यामतनामा ८/५५

रुहअल्ला रोसन ज्यादा कह्या, दूजा अपना नाम।

एक बदले बंदगी हजार, ए करसी कबूल इमाम॥

बड़ा क्यामतनामा ९/६

परमहंस महाराज श्री युगल दास जी ने भी कहा है—

जो इस स्वरूप की श्रद्धा भाव से बन्दगी करेगा, उसे

एक बन्दगी का हजार गुना फल मिलेगा, और जो इस स्वरूप की निन्दा करेगा, उसे फरिश्ते दोजख में डालेंगे।

श्री प्राणनाथ जी को सन्तों, भक्तों, और कवियों की श्रेणी में रखने वालों से इस विषय पर गहन चिन्तन की अपेक्षा की जाती है।

**डेई लदुन्नी इलम, मूँके परी परी समझाइए।**

**को हेडयूं गाल्यूं मूं मुहां, दुनियां में कराइए॥२१॥**

**शब्दार्थ—** डेई—देकर, लदुन्नी—तारतम, मूँके—मेरे को, परी परी—तरह तरह से, समझाइए—समझाया, को—काहे को, हेडयूं—ऐसी, गाल्यूं—बातें, मुहां—मुख से, दुनियां में—जगत के बीच में, कराइए—कराई।

**अर्थ—** हे प्रियतम! आपने मुझे तारतम वाणी देकर तरह—तरह से समझाया कि तुम मेरी प्रियतमा हो। यदि

आपको दर्शन ही नहीं देना है, तो आपने मेरे मुख से तारतम वाणी में प्रेम की इतनी बड़ी-बड़ी बातें क्यों कहलायी हैं।

**सभ जोर पांहिजो डेई करे, मूँके कमर बंधाइए।**

**बाकी रे कम थोरडे, मूँके को अटकाइए॥२२॥**

**शब्दार्थ-** जोर-ताकत, पांहिजो-अपनी, डेई-दे, करे-कर, मूँके-मुझे, कमर-कमर, बंधाइए-बँधाई, रे-रहे, कम-कार्य, थोरडे-थोड़े, को-क्यों, अटकाइए-उरझा रखा।

**अर्थ-** आपने मुझे अपनी पूरी शक्ति देकर आत्मिक आनन्द के लिये तैयार कर दिया है। अब केवल थोड़ा सा ही काम बाकी है। उसी के लिये क्यों अटका रखा है?

**भावार्थ-** "कमर बँधाना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ

होता है— तैयार कर देना। इस चौपाई में यह बात दर्शायी गयी है कि धाम धनी ने तारतम वाणी का ज्ञान देकर हमें पूर्ण रूप से विश्वास (ईमान) और विरह के धरातल पर खड़ा कर दिया है। परमधाम में जिन रहस्यों को हम नहीं जानते थे, उसे भी बता दिया है, किन्तु दर्शन न देने और प्रेम की बातें न करने से ऐसा लगता है, जैसे थोड़ा सा काम धनी ने अभी अटका रखा है।

**जे न थिए मुकाबिल मूंहसे, थिए कम हिन वेर।**

**त हिंनी तोहिजे कागरें, पांण के सचो चोंदा केर॥२३॥**

**शब्दार्थ—** जे-जो, थिए-होते, मुकाबिल-सामने, मूंहसे-मेरे, थिए-है, हिन-इन, वेर-समय, त-तो, हिंनी-इन, तोहिजे-आपके, कागरें-तारतम ज्ञान को, पांण के-और आपको, सचो-सच्चा, चोंदा-कहेगा, केर-

कौन।

**अर्थ-** हमें दर्शन देने और बातें करने का यह काम तो इस समय अवश्य हो जाना चाहिए। यदि आप मेरे सामने नहीं आते हैं, तो आपके द्वारा भिजवाये गये धर्मग्रन्थों को पढ़कर आपको सच्चा कौन कहेगा।

**लाड असांजा रांदमें, तो पूरा सभ केयां।**

**जाहेर तो मुकाबिले, हितरे बंग रह्या॥२४॥**

**शब्दार्थ-** लाड-प्यार, असांजा-हमारा, रांदमें-खेल में, तो-आपने, पूरा-पूर्ण, सभ-सब, केयां-किया, मुकाबिले-सामने हैं, हितरे-इतना, बंग-बाकी, रह्या-रहा।

**अर्थ-** आपने इस माया के खेल में हमारी सभी इच्छाओं को पूर्ण किया है। अब केवल मेरे सामने आ

जाइए। बस इतनी सी कमी रह गयी है।

मूं हिये सल्ले अगियूं गालियूं, से वलहा कुरो चुआं।

सुन्दरबाई हल्ली विलखंदी, पण से कंने की न सुआं॥२५॥

**शब्दार्थ-** हिये-हृदय में, सल्ले-खटक रही है, अगियूं-पहले की, गालियूं-बातें, से-सो, वलहा-प्रियतम, कुरो-क्या, चुआं-कहूँ, सुन्दरबाई-श्री देवचन्द्र जी, हल्ली-चले, विलखंदी-रोते, पण-परन्तु, कंने-कानों से, की-क्या, सुआं-सुना।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! मेरे हृदय में पहले से ही बहुत सी बातें खटकती रहती हैं। उन्हें मैं आपसे कैसे कहूँ? श्यामा जी अपने पहले तन में रोती-रोती चली गयीं, किन्तु आपने उनकी बातों को अपने कानों से नहीं सुना।

**भावार्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी की इच्छा थी कि

जागनी कार्य सर्वप्रथम उनके तन से हो। इसलिये उन्होंने रो-रोकर सुन्दरसाथ से पत्र लिखवाये कि धाम धनी उनके तन से जागनी करवायें, किन्तु श्री राज जी ने उनके पत्रों का कोई भी उत्तर नहीं दिया। "विलख विलख वचन लिखे, सो ले ले रुहें पोंहोचाए" (सनंध ४१/२१) का यही भाव है।

**सुंदरबाई जे बखतमें, मायाएं वडा दुख डिना।**

**भती भती विलखई, हे डिसी दुखडा किंना॥२६॥**

**शब्दार्थ-** जे-के, बखतमें-समय में, दुख-दुःख, डिना-दिया, भती भती-तरह तरह से, विलखई-विलख रही हूँ, हे-यह, डिसी-देखकर, दुखडा-दुःख को, किंना-उलटे।

**अर्थ-** सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के समय में माया ने

उन्हें बहुत दुःख दिया था। इस उल्टे दुःखों को देखकर वे तरह-तरह से विलखती रहीं।

**भावार्थ-** जब श्री मिहिरराज जी अरब से लौटे, तो बाल बाई के दबाव में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने उनका प्रणाम स्वीकार नहीं किया। श्री मिहिरराज जी दुःखी मन से घर आ गये और कलाजी के पास दीवान हो गये। यद्यपि सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के विरह में श्री मिहिरराज जी ने चार वर्ष अवश्य व्यतीत किये, किन्तु धामगमन के समय सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को बहुत कष्ट हुआ। वही प्रसंग इस चौपाई में वर्णित है।

आंऊं पण हुइस डुखमें, पण न सांगाएम आंसे।

मूं बेखबरी न जाणयो, से तो हांणे हिये चढ़ाया जे॥२७॥

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, पण-भी, हुइस-हुई, डुखमें-



दुःख में, पण-परन्तु, सांगाएम-पहचान, आंसे-आप से, मूं-मैंने, बेखबरी-बिना खबर में, जाणयो-पहचाना, से-सो, तो-आपने, हांणे-अब, हिये-हृदय में, चढ़ाया-अंकित किया।

**अर्थ-** प्रणाम स्वीकार न किये जाने से दुःख तो मुझे भी हुआ, किन्तु उस समय मुझे आपके स्वरूप की पहचान नहीं थी। माया की बेसुधी में मैंने सद्गुरु महाराज के अन्दर बैठे हुए आपके स्वरूप को नहीं पहचाना। हब्शा में दर्शन देकर आपने अपनी पहचान को अब मेरे हृदय में अंकित कर दिया है।

उलट्यो आं कागर में, लिख्यो सुंदरबाई जो डो।

ते कागर न वांचयो, पण मूं पांहिजे कंने सुओ॥२८॥

**शब्दार्थ-** उलट्यो-उलटा, आं-आपने, कागर में-

सन्देश में, लिख्यो-लिखा, जो-का, डो-दोष, ते-वह, वांचयो-पढ़ा, पण-परन्तु, मूं-मैंने, पांहिजे-अपने, कंने-कानों, सुओ-सुना।

**अर्थ-** आपने कुरआन में उल्टे श्यामा जी को ही दोषी ठहरा दिया है। यद्यपि मैंने कुरआन पढ़ा तो नहीं है, किन्तु अपने कानों से सुना है।

**भावार्थ-** समर्पण की सीढ़ियाँ चढ़ने के पश्चात् ही प्रेम के महल में प्रवेश होना सम्भव है। प्रेम में "स्व" या "मैं" के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं होता, किन्तु श्री देवचन्द्र जी ने अपनी बन्दगी (भक्ति) के बदले में "जागनी" की शोभा माँगी, इसलिये उन्हें दोषी माना गया, क्योंकि प्रेम का बदला माँगना प्रेम को दोष लगाना है-

रुह अल्ला करी बंदगी, तिन में उनकी मैं।

तो गुनाह कह्या इन पर, इन मैं मांग्या हक पे॥

खिलवत ४/१०

श्यामा जी पर गुनाह लगने का प्रसंग कुरआन के सूरे युसुफ एवं तफसीर-ए-हुसैनी में इसी की व्याख्या में विशेष रूप से वर्णित है।

अन्य संसारी लोगों की तरह श्री महामति जी ने कुरआन को किसी मौलवी से पढ़ा नहीं, बल्कि कुछ अंशों को तफसीर-ए-हुसैनी के रूप में कायमुल्ला से दिल्ली में अवश्य सुना था। मन्दसौर में भी इब्राहिम से कुरआन का कुछ अंश सुना था। यहाँ पर यही प्रसंग है। खुलासा १५/५ में कहा गया है—

पढ़या नाहीं फारसी, ना कछु हरफ आरब।

सुन्या न कान कुरान को, पर खोलत माएने सब।।

इस चौपाई में कुरआन को न सुनने का जो कथन है, उसका आशय यह है कि जिस अक्षर-अक्षरातीत के बीच

में ९०,००० हरूफ बातें हुई थीं, वे दोनों ही श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं। कुरआन की आयतों को लाने वाला जिबरील भी अन्दर है तथा उसके रहस्यों को खोलने वाला जाग्रत बुद्धि का फरिश्ता इस्माफील भी है। ऐसी स्थिति में महामति जी को किसी भी मौलवी, मुल्ला, या अन्य किसी से पढ़ने-सुनने की कोई आवश्यकता नहीं थी। कुरआन के गुह्यतम भेद उनके धाम हृदय में स्वतः विद्यमान थे।

से दुख सह्या असां रांदमें, तांजे सेई डिए आखिर।

से पण चाडियां सिर मथे, त सेहेंदो हियो निखर॥२९॥

**शब्दार्थ-** से-सो, दुख-दुःख, सह्या-सहन किया, असां-हमने, रांदमें-खेल में, तांजे-आप, सेई-वही, डिए-देंगे, आखिर-अन्त में, पण-परन्तु, चाडियां-

चढ़ाती हूँ, मथे-ऊपर, त-वह, सेंहेंदो-सहता है,  
हियो-हृदय, निखर-कठोर।

**अर्थ-** इस प्रकार माया के इस खेल में हमने दुःखों को सहा है। सम्भवतः, यदि इसी प्रकार का दुःख अन्त समय तक भी सहन करना पड़े, तो वह भी शिरोधार्य है। मेरा यह कठोर हृदय उसे भी सहन कर लेगा।

**भावार्थ-** दुःखों को सहते-सहते हृदय मजबूत बन जाता है। इसे ही कठोर होना कहा गया है। कोमल हृदय भावुकता से भरा होता है। वह संकट के समय अधीर हो जाता है।

ते लाये घणों को चुआं, तोके सभ मालुम।

से सभ तोहिजे हुकमें, असां केयां कम॥३०॥

**शब्दार्थ-** ते-इस, लाये-लिये, घणों-बहुत, को-

किसलिये, चुआं-कहूँ, तोके-आपको, सभ-सब, मालुम-जानकारी है, तोहिजे-आपके, हुकमें-हुक्म से, असां-हमने, केयां-किये, कम-कार्य।

**अर्थ-** इसलिये अब मैं अधिक क्या कहूँ? आपको तो सब मालूम ही है। यहाँ पर सभी कार्य हम आपके आदेश (हुक्म) से ही करते हैं।

जे सौ भेरां आंऊं विसरई, त पण आंहिजा सेंण।

पस तूं हिये पांहिजे, जे तो चेया वैण॥३१॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, भेरां-समय, आंऊं-मैं, विसरई-भूल गई, त-तो, पण-भी, आंहिजा-आपकी, सेंण-सजनी (अर्धांगिनी), पस-देखो, तूं-आप, हिये-हृदय में, पांहिजे-अपने, जे-जो, तो-आपने, चेया-कहे, वैण-वचन।

**अर्थ-** यदि मैं सौ बार भी आपको भूल जाऊँ, तो भी मैं आपकी प्रियतमा (सजनी) हूँ, किन्तु आप अपने हृदय में विचार करके देखिए कि आपने हमें कौन सी बातें कही थीं।

**भावार्थ-** साजन (पति) का स्त्रीलिंग शब्द सजनी होता है। धाम धनी ने इश्क रब्द के समय जो कहा था, उसका संक्षिप्त रूप, संक्षेप में इस प्रकार है—

मैं तुमारे वास्ते, करोंगा कई उपाए।

ए बातें सब याद देऊँगा, जो करता हों इतदाए॥

खिलवत ११/२९

तुम रूहें मेरे नूर तन, सो वाहेदत बीच एक।

खिलवत १३/१२

मैं भेजों किताबत तुमको, सब इतकी हकीकत।

तुम कहोगे किन खसमें, भेजी किताबत॥

खिलवत ११/२०

मैं रुह अपनी भेजोंगा, भेख लेसी तुम माफक।

खिलवत ११/२६

हे पण कंदे गाल्यूं लाडज्यूं, तांजे विसरां थी।

संग जांणी मूरजो, थिए थी गुस्तांगी॥३२॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, पण-भी, कंदे-करते, गाल्यूं-बातें, लाडज्यूं-प्यार की, तांजे-कदाचित्, विसरां-भूलती, थी-हूँ, संग-सम्बन्ध, जांणी-जानकर, मूरजो-मूल का, थिए थी-होती है, गुस्तांगी-बेअदबी।

**अर्थ-** प्रेम-प्रीति की जो बातें मैं कर रही हूँ, सम्भवतः इसे मेरी भूल कहा जा सकता है, किन्तु परमधाम के मूल सम्बन्ध से ही मैं ऐसा करती हूँ। भले ही आप इसे मेरी धृष्टता (अशिष्टता) समझें।



हांणे जे करिए हेतरी, जीं जेडियूं सभे पसन।

कर सचा अची मुकाबिलो, सुख थिए असां रूहन॥३३॥

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, जे-जो, करिए-कीजिए, हेतरी-इतनी, जीं-जिससे, जेडियूं-सखियाँ, सभे-सब, पसन-देखें, कर-करो, सचा-सच्चा, अची-आकर, मुकाबिलो-सामना, थिए-होवे, असां-हम, रूहन-सखियों की।

**अर्थ-** अब कम से कम इतनी मेहर (कृपा) तो अवश्य कीजिए कि हम सभी सखियाँ आपका दर्शन कर लें। सच्चे दिल के साथ, अर्थात् टालमटोल न करते हुए, हमारे सामने आइए ताकि हम सभी आत्माओं को सुख प्राप्त हो।

हांणे निपट आए थोरडी, सुण कांध मूंह जी गाल।

डेई दीदार गाल्यूं कर, मूं वर नूरजमाल॥३४॥

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, निपट-निश्चय, आए-है, थोरडी-थोड़ी सी, सुण-सुनो, कांध-धनी जी, मूंह जी-मेरी, गाल-बातें, डेई-देकर, दीदार-दर्शन, गाल्यूं-बातें, कर-कीजिए, मूं-मेरे, वर-पति।

**अर्थ-** हे मेरे प्राणवल्लभ! मेरी बात सुनिए! मेरी यह बात बहुत छोटी सी है। आप मेरे पति (प्रियतम) हैं, इसलिये मुझे दर्शन दीजिए और प्रेम भरी बातें कीजिए।

**भावार्थ-** इस प्रकार प्रेम भरा अधिकार पूर्ण कथन वही कर सकता है, जो समर्पण की पराकाष्ठा (सर्वोच्च मन्जिल) पर पहुँचकर प्रेम में डूब गया हो। इस चौपाई में सुन्दरसाथ को इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये सांकेतिक रूप से प्रेरित किया गया है।

हांणे जे लाड असां जा, ब्या सचा जे पारीने।

मूं तेहेकीक आंझो तोहिजो, मूंके निरास न कंने॥३५॥

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, जे-जो, असां जा-हमारे, ब्या-दूसरे, पारीने-पूर्ण कीजिए, मूं-मुझे, तेहेकीक-निश्चय ही, आंझो-भरोसा, तोहिजो-आपका, मूंके-मुझको, कंने-करेंगे।

**अर्थ-** हमें दर्शन देने और प्रेम भरी बातें करने के अतिरिक्त आपने हमारे अन्य सभी दूसरे सच्चे लाड पूरे किये हैं। निश्चित रूप से मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे, अर्थात् दर्शन देंगे और मीठी-मीठी बातें भी करेंगे।

तूं पारीने उमेदूं वडियूं, असां ज्यूं तेहेकीक।

पण ते लांए थी विलखां, मथां आयो कौल नजीक॥३६॥

**शब्दार्थ-** तूं-आप, उमेदूं-चाहना, वडियूं-भारी, असां ज्यूं-हमारी, पण-परन्तु, ते लांए-इसलिए, थी-हूँ, विलखा-तड़पती, मथां-ऊपर, आयो-आया, कौल-वायदा, नजीक-पास ही।

**अर्थ-** निश्चित रूप से आप हमारी बड़ी-बड़ी इच्छाओं को पूर्ण करेंगे, किन्तु मैं इसलिये विलख रही हूँ कि धाम चलने का समय निकट आ गया है।

**भावार्थ-** स्वयं के प्रति कथन करके, सांकेतिक रूप से सुन्दरसाथ को इस चौपाई में यह शिक्षा दी गयी है कि उन्हें अपने शरीर की नश्वरता का ध्यान रखते हुए स्वप्न में भी आलस्य-प्रमाद के वशीभूत नहीं होना चाहिए और प्रियतम के दीदार के लिये पूर्ण रूप से प्रयत्नशील होना चाहिए।

तू थी धणी मुकाबिल, को रखे थोडे बंग।

मूं गिन्यूं साहेदयूं तोहिज्यूं, कई केयम दुनी से जंग॥३७॥

**शब्दार्थ-** मुकाबिल-सामने, को-क्यों, रखे-रखी, थोडे-थोड़ी सी, बंग-कमी, गिन्यूं-लेकर, साहेदयूं-साक्षियाँ, तोहिज्यूं-आपकी, कई-कई तरह, केयम-किया, दुनी से-संसार से, जंग-युद्ध।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप जरा मेरे सामने तो आइए। मेरी इस इच्छा को पूर्ण करने में आपने थोड़ी सी कमी क्यों छोड़ रखी है? आपके द्वारा धर्मग्रन्थों में दी हुई साक्षियों को लेकर मैंने इस संसार में अनेक ज्ञान-युद्ध किये हैं।

**भावार्थ-** सूरत, हरिद्वार, दिल्ली, उदयपुर, औरंगाबाद, रामनगर, पन्ना आदि में श्री महामति जी के साथ संसार के विद्वानों की जो ज्ञान-चर्चा हुई, उसे ही इस चौपाई में ज्ञान-युद्ध कहकर वर्णित किया गया है।

पोरयां तां सभ ईदा, सभ सची चोंदा से।

जे असां बेठे अचे दुनियां, जे की डिसूं रांद ए॥३८॥

**शब्दार्थ-** पोरयां-पीछे, तां-तो, सभ-सब, ईदा-आयेंगे, सची-सच्चा, चोंदा-कहेंगे, से-सो, जे-जो, असां-हमारे, बेठे-बैठे, अचे-आये, दुनियां-सांसारिक लोग, की-कुछ, डिसूं-देखा, रांद ए-यह खेल।

**अर्थ-** बाद में तो इस संसार के सभी लोग आपके चरणों में आयेंगे और अखण्ड ज्ञान की सच्ची बातें करेंगे। किन्तु यदि मेरे यहाँ रहते हुए ही सारी दुनिया आपके चरणों में आ जाती, तो मुझे ऐसा लगता कि मेरा इस खेल को देखना सार्थक हो गया है।

**भावार्थ-** योगमाया के ब्रह्माण्ड में सारी दुनिया एक परब्रह्म के प्रति आस्था रखेगी।

सब जातें मिली एक ठौर, कोई न कहे धनी मेरा और।

प्रकास हिंदुस्तानी ३७/११२

श्री महामति जी की हार्दिक इच्छा यही है कि इस जागनी ब्रह्माण्ड के रहते हुए छठे दिन की लीला तक सारा संसार यदि एक परब्रह्म के प्रति आस्थावान हो जाये, तो उन्हें बहुत अधिक आनन्द होगा। यह विशेष ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि छठे दिन की लीला भी श्री महामति जी की ही छत्रछाया में हो रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अखण्ड सुख देने की शोभा श्री महामति जी को ही है। "सारां के सुख कारने, तूं जाहेर हुई महामत" (कलस हिंदुस्तानी ९/३८) का कथन यही भाव प्रकट कर रहा है।

हितरो त आइम तेहेकीक, पोए मूं गाल सची सभ चोंदा।  
असां हल्ले पोस्यां, हथडा घणूं गोहोंदा॥३९॥

**शब्दार्थ-** हितरो-इतना, त-तो, आइम-है, पोए-पश्चात्, मूं-मेरी, गाल-बात, असां-हमारे, हल्ले-चले जाने के, पोख्यां-बाद में, हथडा-हाथ, घणूं-बहुत, गोहोंदा-पटकेंगे।

**अर्थ-** इतना तो पूर्ण रूप से निश्चित है कि इस संसार से मेरे चले जाने के बाद, यहाँ के सभी लोग मेरी बातों को सत्य कहेंगे। हमारे जाने के बाद जगत् के सभी लोग पश्चाताप में हाथ पटकते रहेंगे।

**भावार्थ-** इस चौपाई में संसार से चले जाने का तात्पर्य शरीर त्याग नहीं, बल्कि योगमाया में होने वाले न्याय की लीला से है। यद्यपि श्री महामति जी की अन्तर्धान लीला के पश्चात् जीव सृष्टि १०० वर्ष तक विरह में तड़पती रही, जिसे "तीसैं सृष्ट विष्णु सौ बरसे, प्रेमे पीवेगा सब्दों का सार" (किरंतन ५४/१६) तथा "अजाजील विरहा



आग जल" (बड़ा कयामतनामा ६/४२) में कहा गया है। किन्तु यह प्रसंग उन जीवों का है, जो श्री जी की शरण में आ चुके थे। योगमाया के ब्रह्माण्ड में तो चौदह लोक के सम्पूर्ण प्राणी एकत्रित होंगे और प्रियतम प्राणनाथ जी को न पहचान पाने के कारण पश्चाताप के आँसू बहायेंगे। सनन्ध ग्रन्थ में कथित उसकी एक छोटी सी झलक देखिए—

ज्यों ज्यों दुलहा देखहीं, त्यों त्यों उपजे दुख।

ऐसे मौले मेहेबूब सों, हाए हाए हुए नहीं सनमुख॥

खसम के आगे अब, क्यों उठावे सिर।

सब अंग आग जो हो रही, हाए हाए झालें उठे फेर फेर॥

यों आखिर आए सबन को, प्रगट भई पेहेचान।

तब कहे ए सुध सुनी हती, पर आया नहीं ईमान॥

सनन्ध २६/८, २६, ३४

पण असल पांहिजी गिरोमें, जा रुहअल्ला चई।

सकुमार बाई गडवी, अजां सा पण न्हार सई॥४०॥

**शब्दार्थ-** पण-परन्तु, पांहिजी-अपनी, गिरोमें-जमात में, जा-जो, रुहअल्ला-श्री देवचन्द्र ने, चई-कहा, गडवी-मिलेगी, अजां-अभी तक, सा-सो, पण-भी, न्हार-नहीं, सई-पहुँची।

**अर्थ-** श्यामा जी के कथनानुसार शाकुमार बाई (औरंगज़ेब की आत्मा) मिल तो गयी है, किन्तु वह अभी तक ब्रह्मसृष्टियों के समूह में सम्मिलित नहीं हो सकी है, अर्थात् तारतम ज्ञान का प्रकाश लेकर वह सुन्दरसाथ कहलाने की शोभा नहीं पा सकी है।

न तां कम सभ पूरो केयो, अने करिए पण थो।

कंने पण तेहेकीक, से पूरो आंझो आए तो॥४१॥

**शब्दार्थ-** न तां-नहीं तो, कम-कार्य, सभ-सम्पूर्ण, पूरो-पूर्ण, केयो-किये, अने-और, करिए-करते, पण-भी, थो-हैं, कंने-करेंगे, आंझो-भरोसा, आए-है, तो-आपका।

**अर्थ-** अन्यथा, आपने हमारे सभी कार्यों को पूर्ण किया है तथा वर्तमान में भी कर रहे हैं। हमें इस बात का पूरा विश्वास है कि आप निश्चित रूप से हमारे सभी कार्यों को पूर्ण करेंगे।

**महामत चोए मूं वलहा, तोसे करियां लाड कोड।**

**केयम गुस्तांगी रांदमें, जे तो बंधाई होड।।४२।।**

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, मूं-मेरे, वलहा-प्यारे, तोसे-आपसे, करियां-करती हूँ, कोड-हर्ष, केयम-करती हूँ, गुस्तांगी-बेअदबी, रांदमें-खेल में, जे-जो, तो-आपने,

बंधाई-कराई, होड-हुजत।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि मेरे प्रियतम! मैं आपसे बहुत ही (अनन्त) प्रेम करती हूँ। आपसे इतना अधिक बोलने की जो मैंने धृष्टता दिखायी है, वह आपके द्वारा मूल सम्बन्ध का दावा कराने पर ही कर सकी हूँ, अन्यथा मैं ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकती थी।

**प्रकरण ॥८॥ चौपाई ॥३८३॥**

## मारकंडजो दृष्टांत

### मारकण्डेय ऋषि का दृष्टान्त

श्रीमद्भागवत के स्कन्ध १२ अध्याय ८, ९ में मारकण्डेय ऋषि की कथा लिखी है कि किस प्रकार वे माया में स्वयं को भूल जाते हैं तथा भगवान नारायण उन्हें माया से निकालकर अपने चरणों में बिठा लेते हैं।

इस प्रकरण में उसी कथानक के दृष्टान्त से समझाया गया है कि ब्रह्मसृष्टियाँ भी माया में स्वयं को, निज घर को, तथा अक्षरातीत को भूल गयी हैं, और उन्हें जगाने के लिये स्वयं श्री राज जी श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर जागनी लीला कर रहे हैं। श्री महामति जी की आत्मा सभी ब्रह्मसृष्टियों की ओर से प्रतिनिधि (वकील) के रूप में धाम धनी से अपने मूल सम्बन्ध का अधिकार माँगती हैं। श्री महामति जी का

कथन सांकेतिक रूप से सभी आत्माओं के लिये है। यहाँ ध्यान रखने योग्य विशेष तथ्य यह है कि अपने प्रियतम से दर्शन आदि देने की वे जो माँग कर रही हैं, वह मात्र सुन्दरसाथ के लिये ही कर रही हैं। उनके धाम हृदय में तो प्रियतम प्राणनाथ विराजमान ही हैं।

**चई सुंदरबाई असां के, मारकंड जी हकीकत।**

**ईं दर थी आंके खोलियां, आंजी पण ईं बीतक॥१॥**

**शब्दार्थ—** चई—कहा, सुन्दरबाई—श्री देवचन्द्र जी ने, असां के—हमको, मारकंड जी—मारकण्डेय जी का, हकीकत—चरित्र, ईं—इसके, दर थी—द्वारा, आंके—तुमको, खोलियां—जाहिर करती हूँ, आंजी—तुम्हारी, पण—भी, ईं—इसी तरह, बीतक—वृत्तान्त है।

**अर्थ—** श्री महामति जी सुन्दरसाथ को सम्बोधित करते

हुए कहते हैं कि हे साथ जी! सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने मुझे मारकण्डेय ऋषि की कथा की वास्तविकता बतायी थी और कहा था कि उस उदाहरण से मैंने तुम्हें समझाया है। तुम्हारे साथ भी कुछ ऐसी ही घटना घटित हुई है।

**निमूनो मारकंड जो, चयो सुन्दरबाई भली भत।**

**सुकदेव आंदो आं कारण, हे जे पसो था हित॥२॥**

**शब्दार्थ-** निमूनो-दृष्टान्त, मारकंड-मारकण्डेय जी, जो-की, चयो-कहा, सुन्दरबाई-श्री देवचन्द्र जी ने, भली-अच्छी, भत-तरह से, सुकदेव-शुकदेव जी, आंदो-ल्याये, आं-तुम्हारे, कारण-वास्ते, हे जे-यह भी, पसो था-देखते हो, हित-यहाँ।

**अर्थ-** मारकण्डेय ऋषि का उदाहरण देकर सद्गुरु श्री

निजानन्द स्वामी ने हमें बहुत अच्छी तरह से बताया है। आप यह जो माया का खेल देख रहे हैं, उसे समझाने के लिये ही शुकदेव मुनि ने श्रीमद्भागवत् में मारकण्डेय ऋषि का यह कथानक वर्णित किया है।

**भावार्थ-** मारकण्डेय ऋषि के मन में इच्छा थी कि मैं माया भी देखूँ और भगवान नारायण के चरणों से अलग भी न होऊँ। उनकी इच्छा पूरी करने के लिये नारायण जी ने ताल के किनारे ही उन्हें माया की नींद में डुबो दिया और मायावी जगत की वास्तविकता का अनुभव कराया। जब भगवान ने उन्हें जाग्रत किया, तो माया के दुःख से वे चीख उठे तथा स्वयं को उन्होंने नारायण जी के चरणों में ही पाया।

इसी प्रकार परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ भी मूल मिलावा में धनी के चरणों में बैठकर इस खेल को देख रही हैं।



उनकी सुरता (आत्मा) इस मायावी संसार में जीवों के ऊपर बैठकर सुख-दुःख की लीला को देख रही हैं। उन्हें जगाने के लिए स्वयं अक्षरातीत ही श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में आये हुए हैं। ब्रह्मवाणी द्वारा ज्ञान से जाग्रत होकर उन्हें अपने मूल तन, युगल स्वरूप, तथा परमधाम का बोध होता है, तथा जब वे प्रेम में डूबकर इनका साक्षात्कार करती हैं तो मारकण्डेय ऋषि की तरह इन्हें भी संसार की निरर्थकता का अनुभव होता है।

जे की गुजरयो मारकंड के, विच जिमी हिन अभ।

से गुझ दिलजो निद्रमें, डिठो नारायणजी सभ॥३॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, की-कुछ, गुजरयो-बीता, मारकंड के-मारकण्डेय ऋषि को, विच-बीच, जिमी-पृथ्वी, हिन-इन, अभ-आसमान, निद्रमें-नींद में, सभ-

सम्पूर्ण।

**अर्थ-** भगवान नारायण ने मारकण्डेय ऋषि के दिल की उन सभी गोपनीय बातों को जान लिया, जो कुछ उन्होंने माया की नींद में इस धरती और आकाश के बीच में देखा था (अनुभव किया था)।

**भावार्थ-** नारायण की नींद से मोहित होकर मारकण्डेय ऋषि ने जो भी दृश्य देखा और उनके दिल ने जो कुछ दुःख का अनुभव किया, भगवान नारायण को वह सब कुछ यथार्थ रूप में मालूम था।

डेखारी नारायण जी, माया मारकंड के।

जे की डिठो रिखि निद्रमें, सभ चई नारायणजी से॥४॥

**शब्दार्थ-** डेखारी-दिखाया, नारायण जी-नारायण जी ने, माया-माया, मारकंड के-मारकण्ड जी को, जे-जो,

की-कुछ, डिठो-देखा, रिखि-ऋषि ने, निद्रमें-नींद में, सभ-सम्पूर्ण, चई-कहा, नारायणजी-नारायण जी ने, से-सो।

**अर्थ-** भगवान नारायण जी ने मारकण्डेय ऋषि को माया दिखायी। ऋषि ने माया की नींद में जो कुछ भी देखा, उसे नारायण जी से कहा।

**असी पण बेठा आं अगियां, निद्रडी डिंनी आं असां।**

**हे जा डिसो था निद्रमें, से कुरो खबर न्हाए आं॥५॥**

**शब्दार्थ-** असीं-हम, पण-भी, बेठा-बैठे हैं, आं-आपके, अगियां-आगे, निद्रडी-नींद, डिंनी-दिया, आं-आपने, असां-हमको, हे जा-यह जो, डिसो था-देखती हैं, निद्रमें-नींद में, से-सो, कुरो-क्या, खबर-जानकारी, न्हाए-नहीं है, आं-आपको।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे धनी! इसी प्रकार हम आत्मायें भी मूल मिलावा में आपके सामने बैठी हुई हैं। आपने हमारे ऊपर नींद का आवरण दे दिया है। आपकी अँगनाएं माया की नींद में जो कुछ भी देख रही है, क्या आपको उसकी जानकारी नहीं है?

**भावार्थ-** इस चौपाई का आशय यह है कि जब भगवान नारायण अपने भक्त मारकण्डेय ऋषि के दिल की सभी बातों को जानते हैं, तो अक्षरातीत होते हुए भी क्या आपको हमारे दिल की बातों का पता नहीं है?

**धनी** बेठा आयो विच में, सभ नजर में पाए।

असां दिलजी को न करयो, आंजे दिल में तां आए॥६॥

**शब्दार्थ-** धनी-प्रियतम, बेठा-बैठे, आयो-हैं, विच में-बीच में, सभ-सब, नजर में-नेत्रों के आगे, पाए-ले

करके, असां-हमारे, दिलजी-दिल की, को-क्यों, न-  
नहीं, करयो-करते हो, आंजे-आपके, दिल में-दिल में,  
तां-तो, आए-है।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप मूल मिलावा में हम सभी  
अँगनाओं को अपनी दृष्टि में लेकर बीच में बैठे हैं। हमारे  
दिल की इच्छाओं को आप पूर्ण क्यों नहीं करते? आपके  
दिल को तो हमारी इच्छाओं के बारे में अच्छी तरह से  
पता है।

असां दिलज्यूं गालियूं, से कुरो आं डिठ्यूं न्हाए।

से की आंई सहोथा, जे विलखण थिए असांए॥७॥

**शब्दार्थ-** असां-हमारे, दिलज्यूं-दिल को, गालियूं-  
बातें, से-सो, कुरो-क्या, आं-आपने, डिठ्यूं-देखा,  
न्याए-नहीं है, से-सो, की-क्यों, आंई-आप, सहोथा-

सहन करते हैं, जे-जो, विलखण-तलफना, थिए-होती है, असांए-हमको।

**अर्थ-** हमारे दिल की बातों को क्या आप जानते नहीं हैं? हम इस मायावी संसार में विलख रही हैं, फिर भी आप इसे सहन कैसे कर रहे हैं? यह बहुत ही आश्चर्य की बात है।

आंई बेठा सुणो गालियूं, असां के को विधें दिल ल्हाए।

को न करिए मूं दिलजी, आंजे दिलमें केही आए॥८॥

**शब्दार्थ-** आंई-आप, बेठा-बैठे, सुणो-सुनते हो, गालियूं-बातें, असां के-हमको, को-काहे, विधें-डारी, दिल-दिल से, ल्हाए-उतार, को-क्यों, करिए-करते हो, मूं-मेरे, दिलजी-दिल की, आंजे-आपके, केही-क्या, आए-हैं।

**अर्थ-** हे धनी! आप बैठे-बैठे हमारी बातों को सुनिए। आपने हमें अपने दिल से इस प्रकार क्यों निकाल रखा है? आप मेरे दिल की इच्छाओं को पूर्ण क्यों नहीं करते हैं?

**मारकंड माया मंझां, जडे किए न निकरी सगे।**

**तडे गिडाई रिखि के पांणमें, मंझ पेही मारकंड जे॥९॥**

**शब्दार्थ-** मारकंड-मारकण्डेय जी, माया-माया के, मंझां-बीच से, जडे-जब, किए-किसी तरह से, न-नहीं, निकरी-निकल, सगे-सके, तडे-तब, गिडाई-मिलाय लिया, रिखि के-मारकण्डेय ऋषि को, पांणमें-अपने बीच, मंझ-बीच में, पेही-पैठ के, मारकंड जे-मारकण्डेय ऋषि के।

**अर्थ-** मारकण्डेय ऋषि जब माया में से किसी भी

प्रकार से नहीं निकल सके, तो नारायण जी ने माया में प्रवेश किया और मारकण्डेय जी को जाग्रत किया (अपने में मिला लिया)।

**असां जा डिठी रांदडी, आंई पसी तेहजो सूल।**

**मूँके असां के फुरमान, हथ पांहिजे नूरी रसूल॥१०॥**

**शब्दार्थ-** असां-हम, जा-जो, डिठी-देखा, रांदडी-खेल, आंई-आप, पसी-देखकर, तेहजो-उनकी, सूल-तरह, मूँके-भेजा, असां के-हमारे लिये, फुरमान-सन्देश, हथ-हाथ, पांहिजे-अपने, नूरी-तेजस्वी, रसूल-सन्देशवाहक।

**अर्थ-** हमने माया का जो यह खेल देखा है, उसमें होने वाले कष्टों को आप जानते हैं। इसलिये, हमें परमधाम की साक्षी दिलाकर विश्वास कराने के लिये आपने



मुहम्मद साहब के हाथ कुरआन भिजवाया।

लखे भते लिखियां, कई इसारतें रमूजें।

सभ हकीकत मूकियां, भाइए मान किएं समझें॥११॥

**शब्दार्थ**— लखे—लाखों, भते—तरह से, लिखियां—लिखी हैं, कई—कई, इसारतें—सन्केत, रमूजें—रहस्यमयी, सभ—सम्पूर्ण, हकीकत—वर्णन, मूकियां—भेजा, भाइए—जानो, मान—मानपूर्वक, किएं—किसी तरह से भी, समझें—समझ लीजिए।

**अर्थ**— धर्मग्रन्थों (वेद—कतेब) में आपने परमधाम और अपनी पहचान को रहस्यमयी सन्केतों के रूप में अनेक (लाखों) प्रकार से लिखवाकर भेजा, ताकि किसी भी प्रकार से मानिनी अँगनाओं को समझ में आ जाये।

**भावार्थ**— लाखों प्रकार का कथन अतिशयोक्ति अलंकार

है। प्रेम में मान (स्वाभिमान) का भाव रखने वाली अँगनाओं को मानिनी कहते हैं।

पोए मूकियां रूह पांहिजी, जा असांजी सिरदार।

कुंजी आंणे अर्स जी, खोल्याई बका द्वार॥१२॥

**शब्दार्थ-** रूह-आत्मा, पांहिजी-अपनी, जा-जो, असांजी-हमारे, सिरदार-आगेवान है, कुंजी-चाबी (तारतम ज्ञान), आंणे-ल्याये, अर्स जी-धाम की, खोल्याई-खोल दिये, बका-अखण्ड के, द्वार-दरवाजे।

**अर्थ-** इसके पश्चात् आपने अपनी आनन्द स्वरूपा श्री श्यामा जी को भेजा है, जो हमारी प्रमुख (स्वामिनी) हैं। उन्होंने तारतम ज्ञान की कुञ्जी लाकर अखण्ड परमधाम का दरवाजा खोल दिया।

जे निसान्यूं फुरमानमें, से डिंनई सभ निसान।

सुन्दरबाई कई भतें, करे डिनाऊं पेहेचान॥१३॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, निसान्यूं-वर्णन, फुरमान-सन्देश के, में-बीच में है, डिंनई-दिये, सभ-सब, निसान-दृष्टान्त, सुन्दरबाई-श्री देवचन्द्र जी ने, कई-अनगिनती, भतें-तरह से, करे-किया, डिनाऊं-दिया, पेहेचान-जानकारी।

**अर्थ-** धर्मग्रन्थों (वेद-कतेब) में आपकी पहचान - सम्बन्धी जो साक्षियाँ थीं, सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने अनेक प्रकार से उन सबका बोध कराया।

ई चुआं आंऊं केतरो, अलेखे आईन।

बिनी कौल मिडी करे, डिंनऊं दृढ़ आकीन॥१४॥

**शब्दार्थ-** ई-इस तरह, चुआं-कहूँ, आंऊं-मैं, केतरो-

कितना, आईन-है, बिनी-दोनों (वेद-कतेब), कौल-वचन, मिडी-मिलाकर, करे-किया, डिनाऊं-दिया, द्रढ़-निश्चय, यकीन-ईमान।

**अर्थ-** इस तरह से मैं कितना कहूँ, आपकी बातें अनन्त हैं। आपने तारतम ज्ञान द्वारा वेद और कतेब दोनों के कथनों में एकरूपता दिखाकर (मिलाकर) अपने प्रति दृढ़ विश्वास (ईमान) दिलाया है।

**दिलडा असां जा जागया, पण पुजे ना रूहसी।**

**से हुकम हथ आंहिजे, हल्ले न असां जो की॥१५॥**

**शब्दार्थ-** दिलडा-दिल, असां जा-हमारा, जागया-जाग्रत हुआ, पण-परन्तु, पुजे-पहुँचता, ना-नहीं है, रूहसी-आत्मा तक, से-वह, हथ-हाथ, आंहिजे-आपके है, हल्ले-चलता, न-नहीं है, असां जो-हमारा,

की-कुछ भी।

**अर्थ-** आपके तारतम ज्ञान से हमारा दिल तो जाग गया है, किन्तु यह ज्ञान हमारी आत्मा तक नहीं पहुँचा। यह सब आपके आदेश (हुक्म) के हाथों में है। यहाँ पर हमारा कुछ भी वश नहीं चलता है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में उस अवस्था का वर्णन किया गया है, जब चिन्तन-मनन से तारतम वाणी का ज्ञान जीव अपने हृदय (दिल) में ग्रहण कर लेता है। आत्मा के दिल में यह ज्ञान प्रेम की अवस्था में ही आ पाता है, तभी परात्म का दिल उसे जान पाता है। सागर १०/४४ में कहा गया है-

अन्तस्करन आत्म के, जब ए रहया समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कुछ अन्तराए॥

अर्थात् प्रेममयी चितवनि में ही आत्मा के धाम हृदय में

तारतम ज्ञान का प्रवेश हो पाता है। आत्मा का दिल परात्म के दिल का प्रतिबिम्बित रूप है, इसलिये प्रेम की अवस्था में दोनों का स्वरूप एक हो जाता है। प्रेममयी चितवनि से रहित होने पर पढ़ा हुआ ज्ञान केवल जीव के दिल तक ही सीमित रह जाता है। परिणाम स्वरूप, परमधाम की रहनी (ब्राह्मी अवस्था) प्राप्त नहीं हो पाती। प्रेममयी चितवनि की राह धनी के हुक्म से ही प्राप्त हो पाती है।

**मारकंड जे दिलजी, सभ नारायण जी चई।**

**जडे याद डिंनी मारकंड के, तडे हिक दम निद्र न रई॥१६॥**

**शब्दार्थ-** मारकंड जे-मारकण्डेय जी के, दिलजी-दिल की, चई-समझाया, जडे-जब, याद-जानकारी, डिंनी-दिलाई, मारकंड के-मारकण्डेय जी को, तडे-तब,

हिक-एक, दम-क्षण भी, निद्र-नींद, न रई-नहीं रही।

**अर्थ-** भगवान नारायण ने मारकण्डेय जी को उनके दिल की सभी बातें बता दीं। जब मारकण्डेय जी को उनके पूर्व (वास्तविक) स्वरूप की याद दिलायी, तब एक क्षण में ही उनकी नींद समाप्त हो गयी।

**भावार्थ-** भगवान की माया में डूबकर मारकण्डेय जी अपने को अन्य (स्त्री) रूप में देखने लगे थे और कष्टों से बिलख रहे थे। उनके दिल ने अब तक माया का जो अनुभव किया था, उसे ही इस चौपाई में "दिल की बातें" कहकर वर्णित किया गया है।

**उडी वेई मारकंड के, निद्रडी कंदे विचार।**

**तोहे सुध असां न थिए, जे डिंनारुं उपटे द्वार॥१७॥**

**शब्दार्थ-** उडी-हट, वेई-गई, मारकंड के- मारकण्डेय

की, निद्रडी-नींद, कंदे-करते ही, विचार-समझन, तोहे-तिस पर भी, सुध-खबर, असां-हमको, न थिए- नहीं होती है, जे-जो, डिंनाऊं-दिये, उपटे-खोल, द्वार-दरवाजा।

**अर्थ-** नारायण जी के ज्ञान से विचार करते ही मारकण्डेय जी की नींद उड़ गयी। आपने तारतम ज्ञान द्वारा परमधाम के द्वार भी खोल दिये हैं, फिर भी हमें अपनी सुध नहीं हो पा रही है।

तो डिसंदे आंऊ विलखां, सभ सुध डिंनी आं हित।

वलहा याद अजां को न अचे, को डिंना हियडो सखत॥१८॥

**शब्दार्थ-** तो-आपके, डिसंदे-देखते, आंऊ-मैं, विलखां-तलफती हूँ, सुध-याद, डिंनी-दिया, आं-आपने, हित-यहाँ, वलहा-प्रियतम, अजां-अभी तक,



को-क्यों, अचे-आता है, को-क्यों, डिंना-दिया, हियडो-हृदय से, सखत-कठोर।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप देख रहे हैं कि मैं माया में बिलख रही हूँ। आपने हमें परमधाम की सारी सुध दी है, किन्तु आपने हमारे हृदय को पत्थर की तरह इतना कठोर क्यों कर दिया है? हमें अब आपकी याद क्यों नहीं आ रही है?

**भावार्थ-** इस चौपाई में सुन्दरसाथ को परोक्ष रूप में (पर्दे में) यह शिक्षा दी गयी है कि इस संसार में मायावी सुखों के लिये कभी भी नहीं रोना चाहिए, बल्कि मात्र धनी के विरह में ही रोना चाहिए। यही हमारी आत्म-जाग्रति का मुख्य साधन है। माया के बन्धनों में लिप्त रहने से हृदय पत्थर की तरह शुष्क एवं कठोर बन जाता है, जो हमें धनी के विरह-प्रेम से कोसों दूर कर देता है।

धणी मूंहजे धामजा, अई चओ करियां तीं।

असां के हिन रांदमें, मुझाए रख्या की॥१९॥

**शब्दार्थ-** मूंहजे-मेरे, धामजा-धाम के, अई-आप, चओ-कहिये, करियां-करूँ, तीं-वैसा, असां के-हमको, हिन-इन, रांदमें-खेल में, मुझाए-उलझाए, रख्या-रखा, की-क्यों।

**अर्थ-** हे मेरे धाम के धनी! अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? आपने हमें इस मायावी खेल में क्यों उलझा रखा है?

गाल मिठी वलहा, सुणाए डेखार धाम।

दीदार डेयम पांहिजो, मूं अंगडे थिए आराम॥२०॥

**शब्दार्थ-** गाल-बात, मिठी-मधुर, वलहा-प्यारे, सुणाए-सुनाकर, डेखार-दिखाइए, धाम-परमधाम,

डेयम-दीजिए, पांहिजो-अपना, मूं-मेरे, अंगडे-शरीर में, थिए-होवे।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप मुझे परमधाम दिखाइए एवं प्रेम भरी मीठी-मीठी बातें सुनाइए। आप अपना दर्शन (दीदार) दीजिए, जिससे मेरे दिल (हृदय, अंग) को शान्ति मिले।

**भावार्थ-** श्री महामति जी को परमधाम एवं युगल स्वरूप का साक्षात्कार हो चुका था, तभी तो उनके द्वारा परिक्रमा, सागर, एवं श्रृंगार ग्रंथ का अवतरण हुआ। "अब चितवन में कहत हों, जो देत साहेदी अकल" (परिकरमा १/३०) का यह कथन स्पष्ट रूप से दर्शन होने की बात को प्रमाणित करता है। इस प्रकार, यह सिद्ध है कि श्री महामति जी ने जहाँ भी दर्शन देने और बातें करने का कथन किया है, वह सांकेतिक रूप से सुन्दरसाथ के

लिये ही है। इस ग्रन्थ में उनकी भूमिका एक वकील के रूप में है, जो प्रायः अधिकतर प्रसंगों में सखियों की बात को अपनी ओर से कहती हैं।

**आंऊं चुआं बे केहके, तूं मूंजो धणी आइए।**

**तूं सुणी ई को करिए, ई वार वार को चाइए॥२१॥**

**शब्दार्थ-** आंऊं-मैं, चुआं-कहूँ, बे-दूसरे, केहके-किसको, तूं-आप ही, मूंजो-मेरे, आइए-हूँ, तूं-आप, सुणी-सुनकर, ई-ऐसी, को-क्यों, करिए-करते हैं, चाइए-कहलवाते हैं।

**अर्थ-** मैं आपके अतिरिक्त अन्य किससे अपनी बातें कहूँ? मेरे प्रियतम (पति) तो एकमात्र आप ही हैं? आप सुन करके भी ऐसा क्यों करते हैं? बार-बार क्यों कहलवाते हैं?

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण "आप सुन करके भी ऐसा क्यों करते हैं" का भाव यह है कि आप हमारी इच्छाओं को जानकर भी पूर्ण क्यों नहीं करते? क्या यह सब सुनकर भी आपका मौन धारण किये रहना और मेरी दृष्टि से दूर रहना आपको अच्छा लगता है?

**सुंदरबाईएं जे चयो, मूं दिल पण डिंनी गुहाए।**

**सभ गाल्यूं असां जे दिलज्यूं, धणी तो खबर सभ आए॥२२॥**

**शब्दार्थ-** सुन्दरबाईएं-श्री देवचन्द्र जी ने, जे-जो, चयो-कहा, मूं-मेरे, दिल-दिल ने, पण-भी, डिंनी-दिया, गुहाए-साक्षी, सभ-सब, गाल्यूं-बातें, असां जे-हमारे, दिलज्यूं-दिल की, तो-आपको, खबर-जानकारी, आए-है।

**अर्थ-** हे प्रियतम! सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने जो

कुछ कहा है, मेरे दिल ने भी उसकी साक्षी दी है कि उनका कथन अक्षरशः सत्य है। हमारे दिलों में जो भी बातें हैं, आपको तो निश्चित रूप से उनकी जानकारी रहती ही है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के "कथन" का तात्पर्य मारकण्डेय ऋषि का दृष्टान्त देकर आत्माओं को जाग्रत करने के सम्बन्ध में है।

हे गाल्यूं आंई डिसी करे, की मांठ करे रहो।

अर्स संग सारे करे, आंई विछोहा की सहो॥२३॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, गाल्यूं-बातें, आंई-आप, डिसी-देख, करे-करके, की-कैसे, मांठ-चुप, रहो-रहते हैं, अर्स-धाम का, संग-सम्बन्ध, सारे-सब, आंई-आप, की-क्यों, सहो-सहते हैं।

**अर्थ-** हे धनी! इन सब बातों को सुनकर (देखकर) भी आप इस प्रकार से चुप क्यों रहते हैं? परमधाम के हमारे मूल सम्बन्ध की सारी पहचान कराकर भी आप हमसे इस प्रकार का वियोग कैसे सहन कर रहे हैं?

**भावार्थ-** मूल सम्बन्ध की सारी पहचान का तात्पर्य है— हकीकत (सत्य) और मारिफत (परम सत्य) की दृष्टि से हमारे और आपके बीच निस्बत, वहदत, इश्क, और खिल्वत की क्या भूमिका है।

इस चौपाई में प्रेमपूर्ण हास्य का सुन्दर चित्रण किया गया है, जो इस प्रकार है—

आपने हमसे प्रिया-प्रियतमा का सम्बन्ध तो बता दिया है, किन्तु आप प्रेम करने वाले प्रियतम होकर भी किस प्रकार हमसे अलग रह पा रहे हैं, यह बहुत ही महान आश्चर्य की बात है? हमें माया में फँसा हुआ देखकर तो

हमारे लिये आपको तड़पना चाहिए तथा एक पल के लिये भी हमारी नजरों से ओझल नहीं होना चाहिए, तभी आप स्वयं को प्रियतम (प्रेमी, आशिक) कहलाने की सार्थकता सिद्ध कर पायेंगे (कहला सकेंगे), अन्यथा नहीं।

**अरस असांके विसरयो, अने विसरया तो कदम।**

**पण तो को संग विसारियो, की विसारियां खसम॥२४॥**

**शब्दार्थ-** अरस-निजधाम, असांके-हमको, विसरयो-भूल गये, अने-और, तो-आपके, पण-परन्तु, तो-आपने, को-क्यों, संग-सम्बन्ध, की-क्यों, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** यद्यपि माया की नींद के कारण हमने परमधाम को तथा आपके चरण कमल को भुला दिया है, किन्तु



आपने हमसे अपने मूल सम्बन्ध को ही कैसे भुला दिया? आप हमें क्यों भूल गये?

**दिलडो अर्स संग जो, असां मथां की लाथां।**

**पुकारींदे न न्हारियो, असां विच हेडी को पातां॥२५॥**

**शब्दार्थ-** दिलडो-दिल, अर्स-धाम के, संग जो-सम्बन्ध को, असां-हमारे, मथां-ऊपर से, लाथां-उतारा, पुकारींदे-पुकारने से, न न्हारियो-नहीं देखते हैं, असां-हमको, विच-बीच में, हेडी-ऐसा, पातां-डाला।

**अर्थ-** मेरे सर्वस्व! परमधाम में तो हमारा-आपका दिल का सम्बन्ध है, अर्थात् दोनों का दिल एक ही स्वरूप है। यह सब जानते हुए भी आपने हमें दिल से (सिर से) हटा दिया? अब तो मेरे द्वारा बार-बार पुकारने पर भी आप दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। हमारे-आपके बीच ऐसा क्या

हो गया है?

**भावार्थ-** "शिर से उतारना" एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ होता है- दिल से हटा देना या निकाल देना। इस चौपाई में व्यंग्यपूर्ण तरीके से अपने विरह की टीस (पीड़ा) को व्यक्त किया गया है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे धाम धनी! आपने मुझे अपने दिल से निकाला ही क्यों? क्या मैं परमधाम में आपकी हृदय स्वरूपा नहीं हूँ। दोनों दिलों के (मेरे और आपके) बीच इतनी दूरी कैसे बन गयी?

किते वेयूं हो गालियूं, जे अर्स विच केयूं।

तांजे असीं विसरया, आंके विसरी की वेयूं॥२६॥

**शब्दार्थ-** किते-कहाँ, वेयूं-गई, हो-वह, गालियूं-बातें, जे-जो, विच-बीच, केयूं-करी, तांजे-कदाचित्,

असीं-हम, विसरया-भूल गये, आंके-आपको, विसरी-भूल, की-कैसे, वेयूं-गई।

**अर्थ-** परमधाम से हमने जो एक-दूसरे को न भूलने (छोड़ने) की बातें की थीं, वे कहाँ चली गयीं? कदाचित् माया के प्रभाव से हमने उन बातों को भुला भी दिया, लेकिन आप तो जाग्रत हैं। आपने उन्हें कैसे भुला दिया?

**भावार्थ-** इश्क-रब्द के समय ही सखियों ने कहा था कि "सौ बेर देखो अजमाए के, ऐसी मोमिन करे न कोए" (खिलवत ११/३३)। इसी प्रकार श्री राज जी ने भी कहा था-

मैं रूह अपनी भेजोंगा, भेख लेसी तुम माफक।

देसी अर्स की निसानियां, पर तुम चीन्ह न सको हक॥

खिलवत ११/२६

मैं तेहेत कबाए तुमको रखे, कोई जाने न मुझ बिन।  
तुमको तब सब देखसी, होसी जाहेर बका अर्स दिन॥

श्रृंगार २९/७३

मैं छिपोंगा तुमसे, तुम पाए न सको मुझ।  
न पाओ तरफ मेरीय को, ऐसा खेल देखाऊं गुझ॥

खिलवत १६/३९

करियां गुस्तांगी वडियूं, पण हियडो चायो तोहिजो चए।  
जे मूं जगाए सामों न्हारियो, त मूं रूहडी की रहे॥२७॥

**शब्दार्थ-** करियां-करती हूँ, गुस्तांगी-धृष्टता, वडियूं-  
भारी, हियडो-हृदय, चायो-कहलाने से, तोहिजो-  
आपके, चए-कहते हैं, जगाए-जगाकर, सामों-सामने,  
न्हारियो-देखिए, त मूं-तो मेरी, रूहडी-आत्मा, की

रहे-कैसे रहे।

**अर्थ-** यद्यपि इस तरह की बातें करके मैं धृष्टता ही कर रही हूँ, किन्तु मेरे हृदय से वही बातें निकलती हैं जो आप कहलवाते हैं। यदि आप मुझे जाग्रत करके मेरी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखें, तो मैं (मेरी आत्मा) भला इस मायावी जगत् में कैसे रह सकती हूँ।

**चरई थी चुआं थी, जिन दुखे जो मूंहसे।**

**तो डिखारयो हिक तोहके, आंऊं चुआं बे केहके॥२८॥**

**शब्दार्थ-** चरई थी-दीवानी होकर, चुआं-कहती हूँ, जिन-मत, दुखे जो-दुःखी हो, मूंहसे-मुझसे, तो-आपने, डिखारियो-दिखाया, हिक-एक, तोहके-अपने को, आंऊं-मैं, चुआं-कहूँ, बे-दूसरे, केहके-किनको।

**अर्थ-** हे धनी! मैं आपके प्रेम में दीवानी होकर यह बात

कह रही हूँ कि आप मेरी इन बातों से दुःखी न होइए। जब आपने मुझे प्रियतम के रूप में अपनी पहचान दी है, तो आपके अतिरिक्त और कौन है जिससे मैं अपनी बातें कह सकूँ।

**भावार्थ-** आनन्द के सागर अक्षरातीत स्वप्न में भी दुःखी नहीं हो सकते, किन्तु प्रेम के भावातिरेक (भावों में डूबकर) में इसी प्रकार की भाषा कही जाती है। अगली चौपाई में भी इसी प्रकार का कथन है।

चंगी भली आइयां, चरई ते चुआं।

भुले चुके वैण निकरे, जिन डुखे जो मुआं॥२९॥

**शब्दार्थ-** चंगी-स्यानी, भली-अच्छी, आइयां-हूँ, चरई-दीवानी, ते-तो, चुआं-कहती हूँ, भुले-भूल से, चुके-दोषित, वैण-शब्द, निकरे-निकलते हैं, जिन-

मत, दुखे जो-दुःखी होना, मुआं-मुझसे।

**अर्थ-** वैसे तो मैं अच्छी भली हूँ (स्वस्थ हूँ), किन्तु आपके विरह में मैं पागलों जैसी बातें कह जाती हूँ। यदि भूलवश मुझसे कोई धृष्ट वचन निकल भी जाये, तो आप मुझे अपनी अर्धांगिनी समझकर दुःखी मत होइए।

ई करे विहारयां, हितरी पण न सहां।

त की घुरंदिस लाडडा, की पारीने असां॥३०॥

**शब्दार्थ-** ई-ऐसी, करे-करके, विहारयां-बैठाया, हितरी-इतना, पण-भी, न-नहीं, सहां-सहते हो, त-तो, की-कैसे, घुरंदिस-माँगू, लाडडा-प्यार को, की-कैसे, पारीने-पूर्ण करोगे, असां-हमारे।

**अर्थ-** इस प्रकार अब आपने मुझे चुप करके बिठा दिया है। आप तो मेरी इतनी सी बात भी सहन नहीं करते।

अब मैं आपसे किस प्रकार प्रेम माँगू? प्रेम की हमारी इच्छाओं को आप कैसे पूर्ण करेंगे?

**भावार्थ-** यहाँ व्यंग्यपूर्ण कथनों में गिले – शिकवे की भाषा प्रयुक्त की गयी है। श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि मेरी बार-बार की माँगों को आपने पूर्णतया अनसुना कर दिया है। इस प्रकार आपने मुझे चुप होकर बैठने के लिये विवश कर दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि आपमें हमारी प्रेम भरी माँगों की प्रार्थना को सुनने की भी सहनशक्ति नहीं है।

बिआ लाड मूं विसरया, पसी तोहिजो हाल।

न की डिए दीदार, न की सुणाइए गाल॥३१॥

**शब्दार्थ-** बिआ-दूसरे, लाड-प्यार, मूं-मुझे, विसरया-भूल गये, पसी-देखकर, तोहिजो-आपका,



हाल-हवाल, न-नहीं, की-कुछ, डिए-देते हो, दीदार-दर्शन, न-नहीं, की-कुछ, सुणाइए-सुनाते हो, गाल-बात।

**अर्थ-** आपकी इस अवस्था को देखकर तो मैं प्रेम की दूसरी इच्छाओं को भूल ही गयी हूँ। अब आप न तो कभी दर्शन देते हैं और न कभी बातें करते हैं।

तोके आंऊं न पसां, न की कंने सुणयां।

हितरो पण न थेयम, त बिआ केरा लाड मंगां॥३२॥

**शब्दार्थ-** तोके-आपको, आंऊं-मैं, न-नहीं, पसां-देखती हूँ, न-नहीं, की-कुछ, कंने-कानों से, सुणयां-सुनती हूँ, हितरो-इतना, पण-भी, न-नहीं, थेयम-होता है, त-तो, बिआ-दूसरे, केरा-कैसे, लाड-प्यार, मंगां-माँगू।

**अर्थ-** अब न तो मैं आपको देख पा रही हूँ और न आपकी बातों को सुन पा रही हूँ। जब आपसे इतना भी नहीं हो सकता, अर्थात् न तो आप दर्शन दे सकते हैं और न बातें कर सकते हैं, तो मैं आपसे दूसरे लाड (प्रेम, व्यवहार) कैसे माँग सकती हूँ।

**मंगा जाणी संगडो, जे तो देखारयो।**

**हाणो विच बेही सभ जगाइए, हाणो कारयूं को कारयो॥३३॥**

**शब्दार्थ-** मंगा-मांगती हूँ, जाणी-जानके, संगडो-संबन्ध, जे-जो, तो-आपने, डेखारयो-दिखाया, विच-बीचमें, बेही-बैठकर, सभ-सबको, जगाइए-जगाते हैं, हाणो-अब, कारयूं-बिनती, पुकार, को-क्यों, कारयो-कराते हैं।

**अर्थ-** आपने हमें परमधाम के जिस मूल सम्बन्ध की

पहचान करायी है, उसी सम्बन्ध के अधिकार से मैं आपसे माँगती हूँ। अब आप हमारे बीच में प्रत्यक्ष आकर (बैठकर) सबको जगाइए। अब हमसे बार-बार इस प्रकार की विनती क्यों कराते हैं।

**भावार्थ-** यद्यपि श्री राज जी श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर ही सबको जगा रहे हैं, किन्तु श्री इन्द्रावती जी का आशय यह है कि सब सुन्दरसाथ को भी ऐसा आभास होना चाहिए कि आप हम सबके साथ में हैं। "बीच में बैठने" का भाव सबके साथ होने से है। "हक नजीक सेहेरग से" का कथन अनुभव में भी होना चाहिए, मात्र कथन रूप गले का हार न बना रहे।

मंगां थी पण द्रजंदी, मूं मथां हेडी थेई।

हे सगाई निसबत, आंके विसरी की वेई॥३४॥

**शब्दार्थ-** मंगां थी-माँगती हूँ, पण-परन्तु, द्रजंदी-डरती हुई, मूं-मेरे, मथां-ऊपर, हेडी-ऐसी, थेई-हुई, हे-यह, सगाई-सगाई, शादी, निसबत-सम्बन्ध, आंके-आपको, विसरी-भूल, की-क्यों, वेई-गया।

**अर्थ-** मेरे साथ कुछ ऐसा गुजरा है कि भले ही मैं आपसे कुछ माँगती हूँ, किन्तु डरती हूँ। हमारी सगाई (शादी) और अखण्ड सम्बन्ध तो आपसे है। आप इसे क्यों भूल गये हैं?

**भावार्थ-** परमधाम में खेल माँगने के कारण ही इस माया में सबको दुःख देखना पड़ रहा है। श्यामा जी को भी माँगने के कारण दोष (गुनाह) लग गया। श्री इन्द्रावती जी को यही डर सता रहा है कि इस खेल में मेरे माँगने के कारण कहीं कुछ और अनर्थ न हो जाए।

मूँके निद्रडी विसारियो, पण तूं की विसारिए।

तो दिल से को उतारियूं, ही वार वार को चाइए॥३५॥

**शब्दार्थ-** मूँके-मुझे, निद्रडी-नींद ने, विसारियो-भुला दिया, पण-परन्तु, तूं-आपने, की-क्यों, विसारिए-भुलाया, तो-आपने, को-क्यों, उतारियूं-उतार दिया, ही-यह, चाइए-कहलाते हैं।

**अर्थ-** मुझे तो इस माया की नींद ने भुला दिया है, किन्तु आपने हमें क्यों भुला दिया ? आपने हमें अपने दिल से क्यों हटा दिया है ? ऐसा कहने के लिये आप हमें बारम्बार क्यों विवश करते हैं (हमसे कहलाते हैं) ?

**भावार्थ-** विरह की पीड़ा को इस चौपाई में शिकायत के स्वरों में व्यक्त किया गया है। दिल से उतार देना (हटा देना) इसी का अंश है।

हेडी घुंडी दिल में, की पाए बेठो पांण।

आंऊं कडीं न रहां दम तो रे, हेडी को करे मूं से हांण॥३६॥

**शब्दार्थ-** हेडी-ऐसी, घुंडी-गाँठ, की-क्यों, पाए-डालकर, बेठो-बैठे हैं, पांण-आप, आंऊं-मैं, कडीं-कभी भी, रहां-रह सकती हूँ, दम-क्षण भर, तो रे-आपके बिना, हेडी-ऐसी, करे-करते हैं, मूं से-मुझसे, हांण-अब।

**अर्थ-** आप अपने दिल में इस प्रकार गाँठ लगाकर क्यों बैठ गये हैं? मैं तो आपके बिना एक पल भी कभी नहीं रह सकती। अब आप मुझसे इस प्रकार का रूखा व्यवहार क्यों करते हैं?

**भावार्थ-** "दिल में गाँठ लगाना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- घृणा करना। श्री राज जी के लिये "घृणा" शब्द का प्रयोग कदापि नहीं किया जा सकता,

क्योंकि घृणा की उत्पत्ति मायावी जगत् में ही होती है। इस प्रकार, यहाँ दिल में गाँठ लगाने का तात्पर्य है – अपने दिल में अलगाव या प्रेम न करने की भावना रखना।

**मूं मथां हेडी को केइए, केहेडो आइम डो।**

**जे गाल होए आं दिलमें, से मूं मांधां को न कढो॥३७॥**

**शब्दार्थ-** मथां-ऊपर, हेडी-ऐसी, केइए-करते हैं, केहेडो-किनका, आइम-है, डो-दोष, जे-जो, गाल-बात, आं-आपके, मूं-मेरे, मांधां-आगे, कढो-निकालते हैं।

**अर्थ-** मेरे ऊपर अर्थात् मेरे प्रति ऐसा क्यों करते हैं? मेरा क्या दोष है? यदि आपके दिल में कोई बात है, तो आप उसे मेरे सामने ही क्यों नहीं कह देते?

**भावार्थ-** उपरोक्त दोनों चौपाइयों में व्यंग्यपूर्ण तरीके से अपने विरह की पीड़ा को व्यक्त किया गया है, जो बहुत ही मर्मस्पर्शी है।

**अगे सुन्दरबाई हल्लई, रोंदी कर-करंदी।**

**हांणे मूंसे ई को करयो, करे हेडी मेहेरबानगी॥३८॥**

**शब्दार्थ-** अगे-पहले, सुन्दरबाई-श्यामा जी, हल्लई-चले, रोंदी-रोते, कर-करंदी-कलपते, हांणे-अब, मूंसे-मुझसे, ई-ऐसा, करयो-करते हैं, करे-करके, हेडी-ऐसी।

**अर्थ-** पहले सुन्दरबाई (श्यामा जी) रोती-कलपती चली गयीं। अब मेरे साथ भी आप इस प्रकार का वैसा ही व्यवहार कर रहे हैं। कम से कम मेरे ऊपर तो मेहर कीजिए।



**भावार्थ-** श्री देवचन्द्र जी ने रो-रोकर सुन्दरसाथ से ६९ पातियाँ (पत्र) श्री राज जी के नाम से लिखवायी थीं कि धाम धनी उनके (श्री देवचन्द्र जी के) ही तन से सर्वप्रथम जागनी करवायें। जब सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी चर्चा करते थे, तो उनके धाम हृदय में विराजमान श्री राज जी अपने आवेश स्वरूप से श्री कृष्ण जी का रूप धारण कर तरह-तरह की लीलायें करते थे। सुन्दरसाथ द्वारा लिखे गये पत्र श्री कृष्ण रूपधारी श्री राज जी को दिये जाते थे। धाम धनी उन पत्रों को लेकर चुपचाप रख लेते थे, किन्तु उन्होंने किसी भी पत्र का उत्तर नहीं दिया। अन्ततोगत्वा सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी ने श्री मिहिरराज जी से भी पत्र लिखवाया। श्री राज जी की ओर से सांकेतिक उत्तर यही था कि जागनी श्री मिहिरराज जी के तन से ही होनी है, आपके तन से नहीं।

इस प्रकार श्री निजानन्द स्वामी जागनी कराने की शोभा के लिये रोते-कलपते अन्तर्धान हो गये।

इस चौपाई में श्री इन्द्रावती जी यही आशंका प्रकट कर रही हैं कि कहीं धाम धनी मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार न कर दें, जैसा उन्होंने श्यामा जी (श्री देवचन्द्र जी) के साथ किया था।

**मांधां डिखारई रांद रातमें, हांणे जाहेर केयां फजर।**

**हे गालियूं केयूं सभ मेहेरज्यूं, सा लाथाऊं की नजर॥३९॥**

**शब्दार्थ-** मांधां-आगे, डिखारई-दिखाया, रांद-खेल, हांणे-अब, जाहेर-प्रत्यक्ष, केयां-किया, फजर-सवेरा, गालियूं-बातें, सभ-सभी, मेहेरज्यूं-मेहर, सा-सो, लाथाऊं-उतारी।

**अर्थ-** आपने पहले ब्रज और रास का खेल अज्ञान

रूपी नींद (रात्रि) में दिया। अब आपने इस जागनी लीला में तारतम ज्ञान द्वारा उजाला (सवेरा) कर दिया है। ये सारी बातें आपकी मेहर से ही हैं। अब आपने मुझे अपनी प्रेम भरी नजरों से अलग क्यों कर दिया है?

**भावार्थ**— ब्रज में धनी की एवं निज घर की पहचान नहीं थी, इसी प्रकार रास में प्रियतम की पहचान तो थी किन्तु घर की पहचान नहीं थी, इसलिये इन दोनों लीलाओं को रात्रि की लीलायें कहा गया है। तारतम ज्ञान द्वारा घर, परात्म, एवं प्रियतम की पहचान हो गयी है। इसलिये, जागनी लीला को ज्ञान के उजाले की लीला कहा जाता है।

"प्रेम की नजरों से देखने" का तात्पर्य प्रेम करने से है।

हांणे जीं जांणे तीं मूं कर, पण बदल मूंहजो हाल।

तीं कर जीं पसां तोहके, जीं सुणियां मिठडी गाल॥४०॥

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, जीं-जैसे, जांणे-जानो, तीं-वैसा, मूं-मुझे, कर-कीजिए, बदल-बदलिए, मूंहजो-मेरी, कर-कीजिए, जीं-जैसे, पसां-देखूँ, तोहके-आपको, जीं-जिससे, सुणियां-सुनूँ, मिठडी-मधुर, गाल-बात।

**अर्थ-** हे प्रियतम! अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा ही मेरे प्रति व्यवहार कीजिए, किन्तु विरह की मेरी इस अवस्था को आप बदल दीजिए। अब आप कुछ ऐसा कीजिए कि मैं आपका दीदार कर सकूँ, आपकी प्रेम भरी मीठी बातें सुन सकूँ।

केडा वंजा के के चुआं, बिओ को न डिखारे हंद।

तूं बेठो मूं भर में, आंऊं केडा वंजा करे पंध॥४१॥

**शब्दार्थ-** केडा-कहाँ, वंजा-जाऊँ, के के-किसको, चुआं-कहूँ, बिओ-दूसरा, को-कोई भी, डिखारे-दिखाया, हंद-ठिकाना, तूं-आप, बेठो-बैठे हैं, भर में-पास में, केडा-किसके, वंजा-जाऊँ, करे-चलके, पंध-रास्ता।

**अर्थ-** अब मैं कहाँ जाऊँ? अपनी विरह-व्यथा को किससे-किससे कहूँ? आपने अपने अतिरिक्त अन्य कोई ठिकाना (आश्रय) ही नहीं दिखाया। जब आप मेरे पास में ही बैठे हैं, तो मैं चलकर किसके पास जाऊँ?

बट बेठा न सुणो, न की न्हारयो नेणन।

न पुजी सगां पांध के, न की सुणियां कनन॥४२॥

**शब्दार्थ-** बट-पास, बेठा-बैठे, न-नहीं, सुणो-सुनते हैं, की-कुछ, न्हारयो-देखती, नेणन-दृष्टि से, पुजी-पहुँच, सगां-सकती हूँ, पांध के-पल्ले को, की-कुछ, सुणियां-सुनती, कनन-कानों से।

**अर्थ-** मेरे धाम धनी! आप मूल मिलावा में बिल्कुल मेरे पास में ही बैठे हुए हैं, किन्तु मेरी आग्रह भरी बातों को आप नहीं सुनते हैं अर्थात् स्वीकार नहीं करते हैं। मैं अपने नेत्रों से आपको देख नहीं पा रही हूँ, न तो मैं आपका पल्ला पकड़ पा रही हूँ, और न ही अपने कानों से कुछ भी सुन पा रही हूँ।

**भावार्थ-** श्री राज जी जाग्रत होने से देखने, सुनने, एवं किसी भी लीला के लिये स्वतन्त्र हैं, किन्तु श्यामा जी सहित ब्रह्मसृष्टियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं।

मूंजा पुजे न हथ अंगडा, त रहां कीय करे।

कोठाइए कागर मूंकी करे, की बेहां धीरज धरे॥४३॥

**शब्दार्थ-** मूंजा-मेरा, पुजे-पहुँचता, अंगडा-अंग, त-तो, रहां-रहूँ, कीय-कैसे, करे-करके, कोठाइए-बुलाते हैं, कागर-सन्देश, मूंकी-भेज, करे-करके, की-कैसे, बेहां-बैठूँ, धीरज-शान्ति, धरे-धारण करके।

**अर्थ-** मूल मिलावा में मेरा हाथ आपके किसी भी अंग तक नहीं पहुँच पाता है। ऐसी स्थिति में आपके बिना कैसे रहूँ? इस माया के ब्रह्माण्ड में जब आप अपनी तारतम वाणी भेजकर मुझे बुला रहे हैं, तो मैं कैसे धैर्य बनाए रखूँ?

पेरो पांणे जांणी हिन के, हांणे करिए हल्लणजी बेर।

पुकारींदे न डेओ, पसण पांहिजा पेर॥४४॥

**शब्दार्थ-** पेरो-पहले, पांणे-आप ही, जांणी-जानकारी कराई, हिन के-इनको, करिए-करते हैं, हल्लण-चलने, बेर-देरी, पुकारींदे-पुकारने पर, डेओ-देते हैं, पसण-देखने, पांहिजा-अपने, पेर-चरण।

**अर्थ-** आपने पहले तो तारतम वाणी द्वारा अपनी पहचान दे दी और अब घर चलने में देरी कर रहे हैं। विरह भरी पुकार करने पर भी आप अपने चरणों का दीदार नहीं करने दे रहे हैं।

गाल निपट आए थोरडी, हेडी भारी को केइए।

सभनी गाले समरथ, पण दिल घुंडी केई रखिए॥४५॥

**शब्दार्थ-** गाल-बात, निपट-निश्चय, आए-है, थोरडी-थोड़ा, हेडी-ऐसी, भारी-बड़ी, केइए-करते हैं, सभनी-सब, गाले-बातों में, समरथ-सामर्थ्यवान हैं,



दिल-दिल में, घुंडी-दाँव (पेच), केई-क्यों, रखिए-रखा।

**अर्थ-** यह बहुत छोटी सी बात है, किन्तु आपने इसे बहुत भारी (विशेष, महत्वपूर्ण) क्यों बना रखा है? आप तो सभी तरह से पूर्ण सामर्थ्यवान् हैं, परन्तु आपने अपने दिल में गाँठ क्यों लगा रखी है?

आंई डुखोजा दिलमें, जडे चुआं घुंडी जो वैण।

पण की करियां की चुआं, मूं अडां न्हारयो न खणी नैण॥४६॥

**शब्दार्थ-** आंई-आप, डुखो-दुःखी, जा-होंगे, जडे-जब, चुआं-कहूँगी, घुंडी-आँकड़ी, वैण-वचन, की-क्या, करियां-करूँ, की चुआं-कैसे हुई, मूं-मेरे, अडां-तरफ, न्हारयो-देखते हैं, खणी-उठाते, नैण-आँख।

**अर्थ-** यदि मैं ऐसा कहूँ कि आपने अपने दिल में गाँठ

लगा रखी है, अर्थात् प्रेम न करने की दृढ़ भावना कर रखी है, तो आपको दुःख हो सकता है। किन्तु आप ही बताइये कि जब आप मेरी ओर अपने नेत्र उठाकर प्रेम भरी दृष्टि से देखते ही नहीं हैं, तो मैं क्या करूँ? अपनी विरह-व्यथा किससे कहूँ?

**जा पर चओ सा करियां, तूं पाण कराइए थो।**

**हे पण तूंही चाइए, मूं मथे की अचे डो॥४७॥**

**शब्दार्थ-** जा पर-जैसे, चओ-कहिए, करियां-करूँ, तूं-आप, पाण-आप ही, कराइए थो-कराते हैं, हे-यह तूंही-आप ही, चाइए-कहलाते हैं, मूं-मेरे, मथें-ऊपर, की अचे-कैसे आवे, डो-दोष।

**अर्थ-** आप जैसा कहिए, मैं वैसा ही करने के लिये प्रस्तुत हूँ। वस्तुतः आप स्वयं ही सब कुछ कराते हैं। यह

बात भी आप ही कहलवा रहे हैं, तो फिर मेरे शिर पर दोष क्यों ठहराया जा रहा है?

**हेडी रांद डिखारई, मय वर कोडी लख हजार।**

**की करियां की चुआं, मूंजा धणी कायम भरतार॥४८॥**

**शब्दार्थ-** हेडी-ऐसा, रांद-खेल, डिखारई-दिखाया, मय-बीच में, वर-क्लाका, उरझन, कोडी-करोड़ों, लख-लाखों, हजार-हजारों, की-क्या, करियां-करूँ, की-क्या, चुआं-कहूँ, मूंजा-मेरे, धणी-धनी, कायम-अखण्ड, भरतार-प्रियतम।

**अर्थ-** मेरे सर्वसमर्थ अखण्ड प्रियतम! आपने माया का ऐसा खेल दिखाया है, जिसमें हजारों, लाखों, और करोड़ों उलझने हैं। धनी! अब आप ही बताइए कि मैं क्या करूँ, किससे कहूँ?

जे अपार वराका तोहिजा, मूं हिकडी गंठ न छुटे।

लखे भते न्हारियां, तो रे जोडी कां न जुडे॥४९॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, वराका-वलाका, तोहिजा-आपके हैं, मूं-मुझसे, हिकडी-एक भी, गंठ-गाँठ, छुटे-छूटता है, लखे-लाखों, भते-तरह, न्हारियां-देखती हूँ, तो रे-आपके बिना, जोडी-जुड़ाई, कां-कैसे भी, जुडे-जुड़ती है।

**अर्थ-** इस संसार में आपके द्वारा दी गयी माया के अनन्त झंझट (पेच, बन्धन) हैं, जिनकी एक भी गाँठ को मैं छोड़ नहीं पा रही हूँ। मैंने लाखों प्रकार से विचार करके देखा, तो यही स्पष्ट हुआ कि आपके बिना किसी भी प्रकार निजधाम से आत्मिक दृष्टि जोड़ने पर भी जुड़ नहीं पाती है (बात नहीं बन पाती है)।

**भावार्थ-** धनी की कृपा के बिना, माया के बन्धनों की

एक भी गाँठ को न खोल पाने का कथन सभी सुन्दरसाथ के लिये है। इस चौपाई के चौथे चरण का अभिप्राय यह है कि धाम धनी की मेहर से ही माया के अनन्त बन्धनों से मुक्ति मिल पाती है और आत्मिक दृष्टि अपने प्राणप्रियतम से जुड़ पाती है।

**जे वराका लाहिए, त आंऊं बेठिस तरे कदम।**

**को न वराको कितई, ई आइम मूंजा खसम॥५०॥**

**शब्दार्थ-** जे-जो, वराका-वला का, लाहिए-उतारती हूँ, त-तो, आंऊं-मैं, बेठिस-बैठी हूँ, तरे-नीचे, कदम-चरणों के, को-कोई भी, न-नहीं है, वराको-उरझन, कितई-कहीं, ई-ऐसे, आइए-हो, मूंजा-मेरे, खसम-प्रियतम।

**अर्थ-** मेरे प्राणवल्लभ! आप ऐसे मेहर के सागर हैं कि

यदि आप मुझे माया के इन बन्धनों (झंझटों) से मुक्त कर देते हैं, तो ऐसा लगता है कि मैं तो मूल मिलावा में आपके चरणों में ही बैठी हुई हूँ। इस अवस्था में कहीं भी कोई झंझट (उलझन, पेंच) नहीं है।

**भावार्थ—** शरीर और संसार से जुड़ी हुई माया की असंख्य उलझने हैं, जिन्हें मात्र धाम धनी की मेहर ही दूर कर सकती है। जब आत्मिक दृष्टि माया से परे होकर अपने मूल स्वरूप (परात्म) एवं प्रियतम के युगल स्वरूप को देखती है, तो उस समय न संसार दिखता है और न उसके बन्धन दिखते हैं। "लगी वाली कछु और ना देखे, पिंड ब्रह्माण्ड वाको है री नाही" (किरंतन ९/४) का कथन भी यही भाव प्रकट करता है।

चुआं रूआं के न्हारियां, बेठो आइए मूं बट।

लाहिए दममें तूंहीं धणी, अंखे कंने जा पट॥५१॥

**शब्दार्थ**— चुआं—कहूँ, रूआं—रोए, न्हारियां—देखूँ तो, बेठो—बैठे, आइए—हो, मूं—मेरे, बट—पास में, लाहिए—उतारते हैं, दममें—क्षण में, तूंहीं—आप ही, धणी—प्रियतम, अंखे—नेत्र, कंने जा—श्रवण का, पट—पर्दा।

**अर्थ**— हे मेरे प्रियतम! यद्यपि मैं अपने हृदय की पीड़ा आपसे कहती हूँ और विरह में रोती भी हूँ, किन्तु जब मैं अपनी आत्मिक दृष्टि से देखती हूँ तो आप मूल मिलावा में मेरे पास ही बैठे हुए दिखायी देते हैं। यदि आप चाहें तो मात्र एक पल में ही हमारी आँखों और कानों के पर्दों को हटा सकते हैं।

**भावार्थ**— इस चौपाई में आँखों और कानों के पर्दे हटाने का तात्पर्य— आत्मिक आँखों और आत्मिक कानों के

ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाने से है। यहाँ पञ्चभौतिक तन की बाह्य इन्द्रियों (आँख और कान) से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

रुह नैनों दीदार कर, रुह जुबां हक सों बोल।

रुह कानों हक बातें सुन, एही पट रुह का खोल॥

सिनगार २५/६८

के कथन का संकेत इसी ओर है। आत्मा की प्रमुख इच्छा है— १. प्रियतम का दीदार २. प्रियतम से प्रेम भरी बातें करना। आत्मिक आँखों और आत्मिक कानों के ऊपर पड़े हुए माया के पर्दे को हटाते ही सुरता (आत्मिक दृष्टि) मूल मिलावा में पहुँच जाती है और प्रियतम अक्षरातीत को प्रत्यक्ष रूप से सामने बैठे हुए देखती है।



**सौ वराके हिकडी, गाल ई आइए।**

**मूंजो हल्ले न तिर जेतरो, हे पण चुआं थीं तोहिजे चाइए॥५२॥**

**शब्दार्थ-** सौ-सौ, वराके-बात की, हिकडी-एक, गाल-बात, ई-ऐसी, आइए-है, मूंजो-मेरा, हल्ले-चलता, तिर-जरा, जेतरो-जितना, हे पण-यह भी, चुआं थीं-कहती हूँ, तोहिजे-आपके ही, चाइए-कहलाने से।

**अर्थ-** "सौ बातों की एक बात" यहाँ यह हो गयी है कि इस मायावी खेल में मेरा कुछ भी (नाम मात्र भी) वश नहीं चलता है। यह बात भी मैं जो कह रही हूँ, आपके कहलाने से ही कह रही हूँ।

**भावार्थ-** "सौ बातों की एक बात" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है- सौ बातों का सारांश एक बात में प्रस्तुत करना। स्वयं के कथन को अक्षरातीत के आदेश

से कहा हुआ मानना यही दर्शाता है कि हृदय अब समर्पण के मधुर सरोवर में स्नान कर अहम् की दुर्गन्ध को हटा चुका है। यह चौपाई सभी के लिये प्रेरणादायी है।

**तूं बंधे तूं छुडाइए, तित बी काएं न गाल।**

**जीं फिराइए तीं फिरे, कौल फैल जे हाल॥५३॥**

**शब्दार्थ-** तूं-आप ही ने, बंधे-बाँधा, तूं-आप ही, छुडाइए-छुड़ाते हैं, तित-वहाँ, बी-दूसरी, काएं-कुछ, गाल-बात, जीं-जैसे, फिराइए-फिराते हो, तीं-वैसे ही, फिरे-फिरती हूँ, कौल-कहना, फैल-चलना, जे-जो, हाल-रहना।

**अर्थ-** हमें माया में बाँधना या छुड़ाना सब कुछ आपके ही हाथों में है। इसमें किसी और दूसरे की बात नहीं है, अर्थात् अन्य किसी में भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह

हमें माया में बाँध सके या बन्धे होने पर छुड़ा सके। आप ही हमारी कथनी, करनी, और रहनी को जिस दिशा में चाहते हैं, उधर घुमा देते हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में यह जिज्ञासा होती है कि जब श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से ही हमारी कथनी, करनी, और रहनी का निर्देशन होता है, तो इसमें हमारी आत्मा और जीव की भूमिका ही क्या है? जब धाम धनी सबके हैं और ब्रह्मवाणी सबके लिये समान शिक्षा दे रही है, तो सबकी करनी और रहनी एक समान क्यों नहीं हो जाती? यदि सबकी करनी और रहनी अलग-अलग है, तो अक्षरातीत के न्याय में भेदभाव क्यों?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश समान रूप से सम्पूर्ण पृथ्वी पर पड़ता है, किन्तु पृथ्वी की बनावट के अनुसार, जहाँ

विषुवत रेखा पर अधिक गर्मी पड़ती है तो कर्क रेखा के उत्तर तथा मकर रेखा के दक्षिण में कम गर्मी का अनुभव होता है। इसी प्रकार ध्रुव प्रदेशों में वर्ष भर बर्फ पड़ती है। इसके लिये सूर्य दोषी नहीं है, बल्कि पृथ्वी की बनावट दोषी है।

इसी प्रकार, अक्षरातीत की न्याय-दृष्टि में सभी समान हैं तथा प्रत्येक आत्मा की प्रेममयी प्रवृत्ति भी समान है। जीव के चित्त के अन्दर जन्म-जन्मान्तरों की जो वासनायें संग्रहित होती हैं, वे सत, रज, एवं तम के आधार पर मनोभावों को प्रेरित करती हैं और जीव अपनी इन्द्रियों से वैसा ही कार्य करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, जप, तप, अध्ययन, साधना, विरह आदि का सम्बन्ध जीव से ही है, आत्मा से नहीं। आत्मा इन सभी क्रियाओं को जीव के ऊपर विराजमान

होकर मात्र दृष्टा रूप में देखा करती है। जब तक जीव विरह की अग्नि में निर्मल होकर प्रेम की तरफ अपने कदम नहीं बढ़ाता है, तब तक आत्मा की कोई भी क्रियात्मक भूमिका नहीं होती।

यद्यपि ब्रह्मवाणी का ज्ञान सबके लिये समान है, किन्तु अपने-अपने स्वभाव और संस्कारों के अनुसार ही उसे जीव ग्रहण करता है और "करनी" में स्वयं को ढालता है। श्री मिहिरराज जी और बिहारी जी दोनों के अन्दर परमधाम की आत्मायें हैं और एक ही सद्गुरु की छत्रछाया में रह भी रहे हैं, फिर भी दोनों की कथनी, करनी, तथा रहनी अलग-अलग हैं क्योंकि श्री मिहिरराज जी के जीव ने कथनी और करनी की जो राह अपनायी उसे बिहारी जी का जीव नहीं अपना सका। परिणामस्वरूप, श्री मिहिरराज जी की आत्मा (इन्द्रावती जी) की जो रहनी

है, वह श्री बिहारी जी की आत्मा (रतन बाई जी) की नहीं हो सकी।

अपनी कथनी, करनी, एवं रहनी को भी श्री राज जी के आदेशानुसार होने का कथन इसलिये किया गया है, क्योंकि अहम् के पूर्णतया परित्याग किये बिना प्रेम या अध्यात्म का महल खड़ा नहीं हो सकता। अहम् का चोला (वस्त्र) ओढ़कर तो कथनी और करनी के क्षेत्र में पूर्ण सफलता नहीं पायी जा सकती। इस अवस्था में तो रहनी के क्षेत्र में एक कदम भी रखने की कल्पना नहीं की जा सकती। मोह-अहंकार के अनन्त सागर से उत्पन्न होने वाला जीव जब तक सर्वशक्तिमान, सकल गुण निधान अक्षरातीत के प्रति समर्पण नहीं करता, तब तक वह कथनी, करनी, और रहनी के वास्तविक लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। यही कारण है कि अपने हृदय की

समर्पण भावना को व्यक्त करने के लिये ही इस चौपाई में कहा है कि हे धनी! हमारी कथनी, करनी, और रहनी आप के आदेश से ही निर्धारित होती है।

**हांणे मोंह थीं मंगां मूं धणी, मूंजा सुणज सभ स्वाल।**

**महामत चोए मूं लाडडा, धणी पार तूं नूरजमाल॥५४॥**

**शब्दार्थ-** हांणे-अब, मोंह थीं-मुख से, मंगां-माँगती हूँ, मूं-मेरे, धणी-प्रियतम, मूंजा-मेरे, सुणज-सुनो, सभ-सब ही, स्वाल-प्रश्न, चोए-कहते हैं, मूं-मेरा, लाडडा-प्यार, धणी-धनी, पार-पूर्ण करो, तूं-आप, नूरजमाल-अक्षरातीत, धनी।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती है कि हे मेरे प्राणप्रियतम् अक्षरातीत! मेरी प्रश्न स्वरूपा इन प्रार्थनाओं को सुनिए। मैं स्वयं अपने मुख से माँगती हूँ कि आप मेरे

प्रति अपने प्रेम को पूर्ण रूप से दर्शाइये (लाड-प्यार पूर्ण कीजिए)।

प्रकरण ॥९॥ चौपाई ॥४३७॥



## आसिकजा गुनाह

आशिक (प्रेमी) ब्रह्मसृष्टियों द्वारा होने वाले गुनाह  
(दोष, अपराध)

इस प्रकरण में यह बात दर्शायी गयी है कि इस मायावी जगत् में परमधाम की उन आत्माओं से, जो स्वयं को धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली (आशिक) कहती थीं, कौन-कौन सी भूलें हुई हैं।

**सुणो रूहें अर्स जी, जा पांणमें वीती आए।**

**जेहेडी लटी पांण केई, एहेडी करे न बी कांए॥१॥**

**शब्दार्थ-** सुणो-सुनो, अर्स जी-परमधाम की, जा-जो, पांणमें-हम में, वीती-गुजरी, आए-है, जेहेडी-जैसे, लटी-उलटी, पांण-आपने, केई-करी, एहेडी-ऐसी, करे-करता, न-नहीं, बी-दूसरी, कांए-कोई भी।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे परमधाम की आत्माओं! माया के इस खेल में आने के बाद हमारे साथ जो घटित हुआ है, उसे सुनो। इस संसार में जो उल्टे-उल्टे काम हमने किए हैं, वैसे तो कोई भी नहीं करता।

**भावार्थ-** अपनी भूलों को दर्शाना एवं उसमें सुधार की प्रक्रिया का पालन करना ही महानता है और अध्यात्म के शिखर पर पहुँचने की कुञ्जी भी है। इस चौपाई में इन्हीं भावों को सुन्दरसाथ के सिखापन हेतु प्रस्तुत किया गया है।

चुआं तेहजो बेवरो, सुणजा कन डेई।

डिठम से सहूर से, सहूर आंई पण करेजा सेई॥२॥

**शब्दार्थ-** चुआं-कहती हूँ, तेहजो-उनका, बेवरो-निरूपण, कन-कान, डेई-देकर, डिठम-देखा, से-सो,

सहूर से-विचार कर, आंई-तुम, पण-भी, करेजा-करना, सेई-वही।

**अर्थ-** हे साथ जी! मैं अपनी भूलों का विवरण बता रही हूँ। इसे अपने दोनों कानों से सुनना। मैंने गहन चिन्तन करके ही ऐसा देखा है (पाया है)। आप भी इस विषय पर चिन्तन अवश्य कीजिए।

**भावार्थ-** कान (श्रवण) दो प्रकार के होते हैं-

१. बहिर्मुखी कान- जो शिर के दोनों ओर दायें-बायें होते हैं।

२. अन्तर्मुखी कान या अन्तःश्रवण- जीव या आत्मा के हृदय (दिल) को भी अन्तःश्रवण कहा जाता है, जो श्रवण, पठन, या मनन की ज्ञानधारा को आत्मसात् करता है। सामान्य भाषा में इसे हृदय के कान कहकर सम्बोधित किया जाता है।

बहिर्मुखी श्रवण तो मात्र इन्द्रियों के गोलक (स्थूल भाग) हैं। इनकी श्रवण शक्ति बुद्धि से जुड़ी होती है। यद्यपि बाह्यश्रवण और अन्तःश्रवण दोनों में ही बुद्धि का संयोग होता है, किन्तु बाह्यश्रवण में जीव मात्र दृष्टा की तरह होता है और अन्तःश्रवण में भावात्मक रूप से वह स्वयं सक्रिय हो जाता है। आत्मिक श्रवण का सम्बन्ध केवल चितवनि में ही होता है।

पोए जा दिल अचे पांहिजे, पांण करियूं सेई।

भुली रोए तेहेकीक, हथड़ा मथे डेई॥३॥

**शब्दार्थ-** पोए-पीछे, जा-जो, दिल-दिल में, अचे-आवे, पांहिजे-आपके, पांण-हम, करियूं-करेंगे, सेई-सोई, भूली-भूली हुई, रोए-रोती है, तेहेकीक-यथार्थ, हथड़ा-हाथ, मथे-ऊपर, डेई-देकर।

**अर्थ-** हे साथ जी! बाद में आपके दिल में जो भी बात आये, आप वही कीजिएगा। जिससे भूल होती है, वह निश्चित रूप से शिर पर हाथ रखकर अर्थात् प्रायश्चित में रोती ही है।

ते लाएं की भूल जे, आए हथ अवसर।

पोए को पछताए जे, पेरो हल्लजे न न्हारे नजर॥४॥

**शब्दार्थ-** ते लाएं-इसलिए, की-क्यों, भूल जे-भूलिए, आए-आया, हथ-हाथ में, पोए को-पीछे क्यों, पछताए जे-पश्चाताप कीजिए, पेरो-पहले, हल्लजे-चलिये, न-नहीं, न्हारे-देखकर, नजर-दृष्टि से।

**अर्थ-** इसलिये हाथ में आए हुए इस सुनहरे अवसर के समय हमें भूल नहीं करनी चाहिए। पहले ही हम सावधान होकर (दृष्टि खोलकर) क्यों न चलें, जिससे बाद में

पछताना न पड़े।

गिरो पांहिजी आसिक, चांऊं मंझ हिंनी।

जा पर पसां पांहिजी, त असां हे अकल के डिंनी॥५॥

**शब्दार्थ-** गिरो-सखियाँ, पांहिजी-अपने, आसिक-प्रेमी, चांऊं-कहलाती हैं, मंझ-बीच में, हिंनी-इनके, जा पर-ओर, पसां-देखिये, पांहिजी-अपनी, त असां-तो हमें, हे-यह, अकल-बुद्धि, के डिंनी-किसने दिया।

**अर्थ-** इस संसार में हम ब्रह्मसृष्टियाँ धनी की आशिक कहलाती हैं। पुनः जब मैं अपनी तरफ देखती हूँ, तो सोचती हूँ कि इस प्रकार की बुद्धि हमें किसने दी है?

खबर गिंनी धणीयजी, डिंनी लोकन के।

आसिक के हे उलटी, पांण के लगी जे॥६॥

**शब्दार्थ-** खबर-वृत्तान्त, गिनी-लेकर, धणीयजी-प्रियतम की, डिनी-दई, लोकन के-लोगों को, आसिक के-प्रेमी के, हे-यह, उलटी-उल्टी, पाण के-हमें, लगी जे-लगी जो।

**अर्थ-** धाम धनी के प्रेम से सम्बन्धित गुह्यतम बातों को संसार के लोगों (जीवों) से कहना आशिक कहलाने वाली आत्माओं के लिये अपराध है। निश्चित रूप से यह दोष हमारे ऊपर लगा है।

**भावार्थ-** मोहसागर से उत्पन्न होने वाले प्राणी परमधाम के शब्दातीत प्रेम की गुह्यतम बातों को सुनने के योग्य नहीं होते, क्योंकि उनका चिन्तन पिण्ड-ब्रह्माण्ड से आगे का नहीं होता। प्रेम एकनिष्ठ होता है। उसे सांसारिक लोगों के बीच में सार्वजनिक करना प्रेम की गरिमा का उपहास उड़ाना है। ब्रह्मवाणी के माध्यम से

मायावी जीवों को भी परमधाम के प्रेम का रहस्य प्राप्त हो गया है, जिसका दोष आत्माओं को लगा है।

**मिठो गुझ मासूक जो, आसिक के के न चोए।**

**पडोसन पण न सुणे, ई आसिक गुझी रोए॥७॥**

**शब्दार्थ-** मिठो-मिठा, गुझ-छिपा, मासूक जो-मासूक को, के के-किनको, चोए-कहते हैं, पडोसन-पड़ोसी, पण-भी, न सुणे-नहीं सुनता है, ई-ऐसे, गुझी-छिपकर, रोए-रोती है।

**अर्थ-** माशूक (श्री राज जी) की गुह्यतम बातों को आशिक (आत्मायें) कभी भी किसी से नहीं कहती। ब्रह्मसृष्टियाँ अपने प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार छिपकर रोती हैं कि पड़ोसी को भी सुनायी नहीं पड़ सकता।

**भावार्थ-** अपने आत्मिक साधनों (चक्षुओं, जिह्वा, और



श्रवणों) द्वारा जो कुछ भी अनुभव में आता है, वही धनी की गुह्य बातें हैं। जिस प्रकार ऊसर भूमि में बीज बोने पर भी वह अंकुरित नहीं होता है, उसी प्रकार अयोग्य लोगों से अपने अनुभव की चर्चा करने का परिणाम निरर्थक ही होता है। ऐसा करना प्रेम की पवित्र भावना का अपमान करना होता है। सुन्दरसाथ का बहुत निकटस्थ व्यक्ति ही पड़ोसी कहलाता है, जो भाई, बहन, मित्र, माता, पिता आदि के सम्बन्ध से जुड़ा होता है। प्रियतम का विरह इतना गोपनीय होना चाहिए कि अपने निकटतम सम्बन्धी को भी उसका ज्ञान न हो सके।

आसिक चोंजे तिनके, थिए पिरी उतां कुरबान।

सए भते मासूक जा, सुख गुझां गिने पांण॥८॥

शब्दार्थ— आसिक—प्रेमी, चोंजे—कहिये, तिनके—

तिनको, थिए-होवे, पिरी-प्रियतम, उतां-ऊपर,  
 कुरबान-न्यौछावर, सए-सौ, भते-तरह, मासूक जा-  
 प्रियतम का, गुझां-गुह्यतम, गिंने-लेवे, पांण-आप।

**अर्थ-** यथार्थ में आशिक (ब्रह्मसृष्टि) वही है, जो प्राणवल्लभ अक्षरातीत पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देवे और अपने प्रियतम के गुह्यतम सुखों का सौ प्रकार से रसपान करे।

जे कोडी पोन कसाला, त करे न के के जांण।

गिंनी कायम सुख धणीयजा, बोले ना के सांण॥९॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, कोडी-करोड़ों, पोन-पड़े, कसाला-दुःख, त-तो, करे-करते, न-नहीं, के के-किसी को, जांण-खबर, गिंनी-लेकर, कायम-अखण्ड, धणीयजा-प्रियतम का, बोले-कहें, ना-नहीं, के-किसी

से, सांण-खबर।

**अर्थ-** परमधाम की आत्मायें माया के करोड़ों कष्ट आने पर भी किसी से कुछ भी नहीं कहतीं। इसी प्रकार प्रियतम के अखण्ड सुखों को पाकर भी वह किसी से कुछ भी नहीं बतातीं।

**भावार्थ-** किसी के सामने अपने दुःखों का रोना रोने पर वह समाधान तो कर नहीं सकता, हँसी अवश्य उड़ायेगा। इसलिये ब्रह्मसृष्टि के लिये आवश्यक है कि वह माया के दुःखों के बारे में किसी से भी न कहे। इसी प्रकार, धनी से मिलने वाले अपने सुखों की चर्चा भी वह किसी से न करे।

गिनी गुझां सुख पिरनजा, रहे मंझ सैयन।

पांण गुझ मासूक जो, न बुझाए बियन॥१०॥

**शब्दार्थ-** गिनी-लेकर, गुझां-छिपा, पिरनजा-प्रियतम का, मंझ-बीच, सैयन-सखियों के, पाण-अपना, मासूक जो-प्रियतम का, बुझाए-कहावे, बियन-दूसरी को।

**अर्थ-** अन्य आत्माओं के बीच रहकर भी वह प्रियतम के गुह्य सुखों का रसास्वादन करती है, किन्तु अपने धनी के गुह्य सुखों को अन्य किसी भी आत्मा से नहीं कहती।

**भावार्थ-** परमधाम में एकदिली (वहदत) होने के कारण किसी के दिल की कोई भी बात किसी से छिपी नहीं रह सकती। यही कारण है कि परमधाम में प्रत्येक ब्रह्मसृष्टि अपने हृदय की सभी बातें दूसरों से कहती है, किन्तु कालमाया के ब्रह्माण्ड की स्थिति इससे भिन्न है। यहाँ आत्मायें भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले जीवों पर बैठी हुई हैं, जिनमें आपस में भी पूर्ण सौहार्द नहीं होता। कुछ समय

के लिये घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाने मात्र से अपने आत्मिक सुख की बातों को उनसे कहना प्रेम का अपमान करना है। एक की आत्मिक उन्नति को देखकर दूसरे में ईर्ष्या-द्वेष का भाव होना भी स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में घनिष्ठ से घनिष्ठ सुन्दरसाथ से भी अपने आत्मिक सुख की बातें नहीं कहनी चाहियें।

किन्तु ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त होने वाले परमहंसों में वहदत (एकदिली) की लज्जत (स्वाद) प्राप्त होती है, इसलिये वे एक-दूसरे की आध्यात्मिक स्थिति से परिचित होते हैं।

तिनी के पण न चोए, जे हिन सुखज्यूं आईन।

त चुआं कुजाडो तिनके, जे बाहेर धांऊं पाईन॥११॥

शब्दार्थ— तिनी के—उनको, पण—भी, न—नहीं, चोए—

कहती है, जे-जो, हिन-इन, सूखज्यूं-आनन्द की, आईन-है, त-तो, चुआं-कहूँ, कुजाडो-क्या, तिनके-उनको, बाहेर-जाहेर, धांऊं-पुकार, पाईन-करती है।

**अर्थ-** धनी का सुख लेने वाली ये आत्मायें उनको भी अपनी बातें नहीं बतातीं, जो स्वयं प्रियतम का सुख प्राप्त करने वाली हैं। किन्तु जो बाहर जाकर अर्थात् अन्य ईश्वरी सृष्टि या जीव सृष्टि से अपने आत्मिक सुख की बातें बताती हैं, उनकी नासमझी को मैं क्या कहूँ।

**मासूक कोठे पाण के, पाण भायूं हित रहूं।**

**गिनी गुझ सुख मासूक जो, दुनियां के चऊं॥१२॥**

**शब्दार्थ-** मासूक-प्रियतम, कोठे-बुलाते हैं, पाण के-अपने को, पाण-हम, भायूं-चाहते, हित-यहाँ, रहूं-रहना, मासूक जो-प्रियतम का, दुनियां के-संसार को,

चऊं-कहती हूँ।

**अर्थ-** श्री राज जी हमें परमधाम बुला रहे हैं, किन्तु हम इस झूठे संसार में रहना चाहते हैं। प्रियतम के गुह्य सुखों का अनुभव करके संसार वालों के सामने ढोल पीटा करते हैं (बताया करते हैं)।

**भावार्थ-** इस चौपाई में सुन्दरसाथ की उस अवस्था का चित्रण है, जिसमें संसार से अधिक और राज जी से कम लगाव होता है। धनी से जो कुछ आत्मिक सुख प्राप्त होता है, उसे दूसरों को बताने पर उसकी दृष्टि में अपना सम्मान बढ़ जाता है। इससे लोकेषणा से ग्रसित होकर अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों का ढिंढोरा पीटने की प्रवृत्ति पनपती है, किन्तु ऐसा करना अध्यात्म के सच्चे मार्ग से भटकना है।

कडीं आसिक हेडी न करे, कांध काठींदे पांहीं रहे।

सुख छडे बका धणीयजा, दुख कुफरमें पए॥१३॥

**शब्दार्थ-** कडीं-कभी भी, आसिक-प्रेमी, हेडी-ऐसा, न-नहीं, करे-करता है, कांध-प्रियतम के, काठींदे-बुलाते, पांहीं-पीछे, रहे-रहे, सुख-आनन्द, छडे-छोड़कर, बका-अखण्ड, धणीयजा-प्रियतम का, दुख-दुःख, कुफरमें-झूठ के बीच में, पए-रहे।

**अर्थ-** धनी की आशिक (आत्मा) ऐसा कभी कर ही नहीं सकती कि प्रियतम बुलायें और वह न जाए (पीछे रहे)। वह धनी के अखण्ड सुखों को छोड़कर इस दुःखमयी संसार में नहीं रह सकती।

**भावार्थ-** परात्म में वहदत होने के कारण सबकी जाग्रति एक साथ ही होनी है। इस प्रकार इस चौपाई में धनी के बुलाने पर परमधाम जाने का तात्पर्य है- तारतम



वाणी को आत्मसात् करके प्रेममयी चितवनि द्वारा संसार से परे हो जाना और अपने धाम हृदय में परमधाम एवं युगल स्वरूप को बसा लेना।

जे के वलहो होए मासूक, तेहजा वलहा लगे वैण।

से की डिए डुझणे, जे वलहो होए सैण॥१४॥

**शब्दार्थ-** जे के-जिनको, वलहो-प्यारा, मासूक-प्रियतम, तेहजा-तिनके, वलहा-प्यारे, लगे-लगे, वैण-वचन, से-सो, की-कैसे, डिए-देवे, डुझणे-दुश्मन को, जे-जिनको, वलहो-प्यारा, होए-होए, सैण-सजन।

**अर्थ-** जिसको अपने प्रियतम श्री राज जी (माशूक) से प्रेम होता है, उसे धनी के वचन अत्यन्त प्यारे लगते हैं। जिनको धनी प्यारे होते हैं, वह उनकी बातों को दूसरे संसारी लोगों से क्यों कहेगी।

आसिक कडीं न करे, हेडी अवरी गाल।

चोणों गुझ लोकन के, पाए विछोडो नूरजमाल॥१५॥

**शब्दार्थ-** आसिक-प्रेमी, कडीं-कभी भी, न-नहीं, करे-करता है, हेडी-ऐसी, अवरी-उलटी, गाल-बात, चोणों-कहे, गुझ-छिपा, लोकन के-लोगों को, पाए-पाकर, विछोडो-जुदागी, नूरजमाल-अक्षरातीत, धनी।

**अर्थ-** इस प्रकार की उल्टी बात ब्रह्मात्मा (आशिक) कभी भी नहीं कर सकती कि अपने प्रियतम से अलग होने पर उनकी गुह्य बातों को संसार के मायावी लोगों के सामने कहती फिरे।

आसिक गुझ मासूक जो, गिंने थी रोए रोए।

डिसो उंधी अकल आसिक जी, बिंजी बियन के चोए॥१६॥

**शब्दार्थ-** आसिक-प्रेमी, गुझ-छिपा, मासूक जो-

प्रियतम का, गिने थी-लेती है, रोए रोए-रो रोककर, डिसो-देखो, उंधी-उल्टी, अकल-बुद्धि, आसिक जी-आशिक की, बिंजी-जाके, बियन के-दूसरों को, चोए-कहे।

**अर्थ-** आत्मायें अपने प्रियतम के सुखों को विरह में रो-रोकर लेती हैं। हे साथ जी! देखिये आशिक कहलाने वाले हम सुन्दरसाथ की बुद्धि ऐसी उल्टी हो गयी है कि हम दूसरों (संसार वालों) के सामने अपने धनी की गुह्यतम बातें कहा करते हैं।

हे निपट निवरयूं गालियूं, थिएथ्यूं पांण हथां।

जेडी थेई रांदमें पांण से, हेडी थेई न के मथां॥१७॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, निपट-निश्चय, निवरयूं-निर्लज्जता की, गालियूं-बातें, थिएथ्यूं-होती हैं, पांण-आपने,

हथां-हाथों, जेडी-जैसी, थेई-हुई, रांदमें-खेल के बीच में, पाण से-आपन से, हेडी-ऐसी, थेई न-हुई नहीं, के मथां-किसी के ऊपर।

**अर्थ-** निश्चित रूप से ये निर्लज्जता भरी बातें हम लोगों से हो गयी हैं। इस संसार में जिस प्रकार की भूल हमसे हुई है, इस प्रकार की भूल आज तक किसी ने भी नहीं की है।

**भावार्थ-** प्रायः यही देखने में आता है कि इस संसार के लौकिक प्रेमी भी अपने प्रेम की गरिमा के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। वे अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी अपने प्रेम की लाज रखते हैं। किन्तु ब्रह्मसृष्टियों द्वारा धनी की गुह्यतम बातों को अपात्र लोगों के बीच में सार्वजनिक करना प्रेम को कलंकित करना है, भले ही उनके कल्याण करने की भावना से क्यों न किया गया

हो।

इसका आशय यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि खिल्वत, परिक्रमा, सागर, तथा श्रृंगार ग्रन्थ की चर्चा बन्द होनी चाहिए। सम्पूर्ण ब्रह्मवाणी के ज्ञानमय स्वरूप को उजागर (प्रकट) करना तो अनिवार्य है, किन्तु चौथी, पाँचवी आदि भूमिका की लीला एवं चितवनि में धनी के आत्मिक अनुभवों को जनसामान्य (प्रवाही समाज) के बीच में मंचों से घोषित करना प्रेम की गरिमा के पूर्णतया प्रतिकूल है।

**आसिक चाए पांण के, हेडी करे न कोए।**

**कोठी न वंजे कांधजी, सा निखर भाइजा जोए॥१८॥**

**शब्दार्थ—** आसिक—आशिक, चाए—कहा के, पांण के—आपको, हेडी—ऐसी, करे—करती, न—नहीं, कोए—कोई

भी, कोठी-बुलाने से, न-नहीं, वंजे-जावे, कांधजी-प्रियतम जी, सा-सो, निखर-अविश्वासी, भाइजा-जानो, जोए-औरत।

**अर्थ-** स्वयं को प्रियतम की आशिक कहलाने वाली आत्मा इस प्रकार की भूल कभी भी नहीं कर सकती। जो अपने प्रियतम के बुलाने पर भी न जाये, उसे निश्चित रूप से विश्वास के योग्य नहीं समझना चाहिए।

**भावार्थ-** इस चौपाई में धनी द्वारा बुलाये जाने का अर्थ है- ब्रह्मवाणी के द्वारा परमधाम की ओर मुड़ना। तारतम वाणी इस संसार में श्री राज जी का ज्ञानमय स्वरूप है। इसके द्वारा ही वे अपनी आत्माओं को परमधाम की ओर प्रेरित कर रहे हैं। जो तारतम वाणी को पढ़-समझकर भी धनी के प्रेम में डुबकी नहीं लगा सके, उसे परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने का क्या अधिकार है। निश्चय ही

यहाँ सुन्दरसाथ को इन कठोर शब्दों में चेतावनी दी गयी है कि ब्रह्मवाणी को मात्र कहने-सुनने से ही लक्ष्य पूर्ण नहीं होगा, बल्कि इस ब्रह्मवाणी को पढ़ने-सुनने के बाद जो धनी से प्रेम नहीं करेगा, उसे ईमान वाला कैसे कहा जा सकता है। प्रियतम के पास न जाने का आशय संसार में मग्न रहने से है।

**गुझ पिरी जो आसिक, कडी न के के चोए।**

**जे पोन कसाला कोडई, त वर मंझाई रोए॥१९॥**

**शब्दार्थ-** गुझ-छिपी, पिरी जो-प्रियतम का, आसिक-आशिक, कडी-कभी भी, न-नहीं, के के-किसी को, चोए-कहती है, जे-जो, पोन-पड़े, कसाला-दुःख, कोडई-करोड़ों, त-तो, वर-बाहेर, मंझाई-माहें ही, रोए-रोती है।

**अर्थ-** आशिक (आत्मा) कभी भी अपने प्रियतम की गुह्य बातों को किसी से नहीं कहती। यदि उसके ऊपर माया के करोड़ों कष्ट भी आ जायें, तो भी वह बाह्य दुःखों से विचलित न होकर अन्दर ही अन्दर विरह में रोती रहती है। किसी से कुछ भी नहीं कहती।

**भावार्थ-** इस दुःखमय संसार में प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी रूप से दुःख देखना ही पड़ता है। किन्तु यदि हम किसी के सामने अपना दुखड़ा रोते हैं, तो इसका यही अर्थ निकलता है कि हमारे ऊपर किसी ऐसे व्यक्तित्व की छत्रछाया नहीं है, जो हमारे दुःखों को दूर कर सके। हम दूसरों को अपना दुःख सुनाकर उनसे सहानुभूति पाने या अपने दुःखों को दूर करने की आशा बाँध लेते हैं। यह कार्य हमारे प्रेम को कलंकित करने वाला है। क्या अक्षरातीत हमारे दुःखों को दूर नहीं कर



सकते, जो उनके अतिरिक्त हम अन्यो के आगे रोते फिरते हैं।

**हिक गुझ केयोसी पधरो, ब्यो कोठींदे न वेयूं।**

**हेडी हिकडी कोए न करे, से पांण हथां बए थेयूं॥२०॥**

**शब्दार्थ-** हिक-एक तो, गुझ-छिपा, केयोसी-किया, पधरो-जाहेर, ब्यो-दूसरे, कोठींदे-बुलाने से, न-नहीं, वेयूं-गये, हेडी-ऐसी, हिकडी-एक भी, कोए-कोई, न-नहीं, करे-करती है, से-सो, पांण-अपने, हथां-हाथों से, बए-दो, थेयूं-हुई।

**अर्थ-** एक तो हमने धाम धनी की गुह्यतम बातों को उजागर (प्रकट) कर दिया, और दूसरा उनके बुलाने पर भी नहीं गयीं अर्थात् तारतम वाणी को समझकर भी अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को न बसा सकी।

इस प्रकार की इन दोनों भूलों में से किसी एक को भी संसार में कोई नहीं करता, जबकि हमने इन दोनों भूलों को साथ-साथ किया है।

**हेडी पाण के न घटे, पाण चायूं अर्सज्यूं।**

**जे सहूर करे डिठम, त हेडो जुलम करिएथ्यूं॥२१॥**

**शब्दार्थ-** हेडी-ऐसी, पाण के-हमको, न-नहीं, घटे-शोभता, पाण-हम, चायूं-कहलाती, अर्सज्यूं-धाम की, जे-जो, सहूर-विचार, करे-करके, डिठम-देखा, त-तो, हेडो-ऐसा, जुलम-अन्याय, करिएथ्यूं-करते हैं।

**अर्थ-** हमसे इतनी बड़ी भूल नहीं होनी चाहिए थी, क्योंकि हम परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ कहलाती हैं। यदि हम विचार करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमसे बहुत बड़ा अपराध (अन्याय) हुआ है।

पाण चऊं कूडी दुनियां, ते में हेडी केई न के।

उलटयूं बेअकल्यूं, थेयूं पाण सचीय से॥२२॥

**शब्दार्थ-** पाण-हम, चऊं-कहती हैं, कूडी-झूठी, दुनियां-दुनिया, ते में-तिनमें, हेडी-ऐसी, केई-करती, न-नहीं, के-कोई, उलटयूं-उल्टी, बेअकल्यूं-नासमझ, थेयूं-हुई, पाण-हम, सचीय से-साँचों से।

**अर्थ-** हम सभी ब्रह्मात्मायें कहा करती हैं कि यह संसार झूठा है। किन्तु इस झूठे संसार में भी किसी ने ऐसी मूर्खता भरी उल्टी भूल नहीं की है, जैसी हम सच्ची आत्माओं ने की है।

जडे गुणा डिठम पांहिजा, ट्रिनिस घणूं हिकार।

तरसी न्हारयम हक अडां, कियम पाण पुकार॥२३॥

**शब्दार्थ-** जडे-जब, गुणा-दोष, डिठम-देखा,

पांहिजा-अपना, ट्रिनिस-डरी, घणूं-बहुत, हिकार-एक  
 बखत, तरसी-डर के, न्हारयम-देखा, हक-धनी की,  
 अडां-तरफ, कियम-करी, पांण-आप ही, पुकार-  
 आवाज।

**अर्थ-** हे प्रियतम! जब मैंने अपने इन अपराधों  
 (गुनाहों) को देखा, तो एक बार मैं बहुत डर गयी। भय  
 के मारे मैं प्रियतम की ओर देखकर करुण पुकार करने  
 लगी।

गुणा डिठम पांहिजा, धणी जा आसांन।

उमर वेई धांऊं पाईदे, जफा डिठम जाण॥२४॥

**शब्दार्थ-** गुणा-दोष, डिठम-देखे, पांहिजा-अपने,  
 धणी जा-प्रियतम के, आसांन-एहसान, उमर-आयु,  
 वेई-गई, धांऊं-पुकार, पाईदे-करते, जफा-नुकसानी,

डिठम-देखी, जाण-अंग की।

**अर्थ-** मैंने अपने दोषों (अपराधों) को देखा और धनी के उपकारों (एहसानों) को देखा। आपकी पुकार करते-करते मैंने अपनी सारी उम्र बिता दी। इससे मुझसे बहुत हानि हुई।

**भावार्थ-** धाम धनी द्वारा इस मायावी जगत् में भी पल-पल साथ रहने एवं मेहर करने के कारण, इस चौपाई में "एहसान" शब्द का प्रयोग किया गया है। इसे लौकिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

अपनी भूलों का अनुभव होने पर हमें धनी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि परमधाम के मूल सम्बन्ध से उनके प्रेम में अपने अस्तित्व को विलीन कर देना चाहिए। भय तो पराये से होता है। अपनी अँगरूपा अँगनाओं को धाम धनी भला क्या सजा देंगे, किन्तु यदि

हम डरते ही रहेंगे तो प्रेम से दूर रहेंगे और अपने अनमोल समय को व्यर्थ में ही गँवाते रहेंगे। इस चौपाई के चौथे चरण में कथित "जफा" (हानि) शब्द का यही आशय है।

**किने न केयो कडई, हेडो अधम कम।**

**डिसी डोह पांहिजो, फिरी करियूं की जुलम॥२५॥**

**शब्दार्थ-** किने-किसी ने, न-नहीं, केयो-किया, कडई-कभी भी, हेडो-ऐसा, अधम-निकृष्ट, कम-कार्य, डिसी-देखा, डोह-दोष, पांहिजो-अपना, फिरी-फिर, करियूं-किया, की-क्यों, जुलम-अपराध।

**अर्थ-** इस संसार में आज दिन तक किसी ने भी इस प्रकार का नीच कार्य नहीं किया है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि अपने दोषों को देखकर भी मैं बार-बार

क्यों अपराध (गुनाह) करती रही।

**भावार्थ-** इस संसार में भूलों का होना स्वाभाविक है, किन्तु भूलों से शिक्षा लेकर उसमें सुधार न करना बहुत बड़ा अपराध है। श्री इन्द्रावती जी के इस कथन द्वारा सांकेतिक रूप में सुन्दरसाथ को यही शिक्षा दी गयी है कि यदि आत्म-जाग्रति के पथ पर माया से बारम्बार हार भी मिलती है तो निराश नहीं होना चाहिए, बल्कि कई गुना उत्साह से अपने प्रेम और विश्वास की डोर को और मजबूत करना चाहिए।

डाई जोए की करे, डिसी अंखिएं डोह।

जी जाणें तीं करे, मथे हुकम धणी जो॥२६॥

**शब्दार्थ-** डाई-चतुर, जोए-औरत, की-कैसे, करे-करके, डिसी-देख के, अंखिएं-दृष्टि से, डोह-दोष,

जी-जैसे, जाणें-जाने, तीं-तैसे, करे-करे, मथे-ऊपर,  
हुकम-आदेश, धणी जो-प्रियतम का।

**अर्थ-** विवेकशील स्त्री अपनी आँखों से अपने दोषों को देखकर पुनः गलती नहीं करती। वह जैसी भी हो, अपने प्रियतम के आदेश को शिरोधार्य करके ही चलती है।

**भावार्थ-** इस चौपाई में विचारशील स्त्री के दृष्टान्त से आत्माओं को शिक्षा दी गयी है।

पाण फिरी जा न्हारियां, त गाल थेई हथ धणी।

हित बे केहजो न हल्ले, जे करे दानाई घणी॥२७॥

**शब्दार्थ-** पाण-आपन, न्हारियां-देखती हूँ, त-तो, गाल-बात, थेई-हुई, हथ-हाथ, धणी-प्रियतम के, हित-यहाँ, बे-दूसरा, केहजो-किसी का, हल्ले-चलता है, करे-करे, दानाई-चतुराई, घणी-बहुत ही।



**अर्थ-** यदि हम पुनः सोच-विचारकर देखें, तो यही स्पष्ट होता है कि ये सारी बातें श्री राज जी के आदेश (हुक्म) के ही अधीन होती हैं। इस संसार में उनके आदेश के अतिरिक्त अन्य किसी का कुछ भी नहीं चलता, भले ही कोई कितनी भी चतुराई क्यों न कर लेवे।

**न्हारयम इलम धणीय जे, सभ हुकमें केयो ख्याल।**

**बिओ कोए न कितई, रे हुकम नूरजमाल॥२८॥**

**शब्दार्थ-** न्हारयम-देखा, इलम-ज्ञान, धणीय जो-प्रियतम के, सभ-सम्पूर्ण, हुकमें-आदेश ने, केयो-किया, ख्याल-खेल, बियो-दूसरा, कोए-कोई, न-नहीं है, कितई-कहीं, रे हुकम-बिना आज्ञा, नूरजमाल-अक्षरातीत धनी के।

**अर्थ-** जब धाम धनी की तारतम वाणी से विचार किया (देखा), तो यही निष्कर्ष निकला कि यह सारा खेल धनी के आदेश से ही हुआ है। श्री राज जी के हुक्म के अतिरिक्त अन्य किसी का कोई अस्तित्व नहीं है।

**भावार्थ-** यदि आध्यात्मिक ज्ञान की दृष्टि से देखा जाये, तो इस स्वप्नवत् संसार के चर-अचर प्राणी वस्तुतः हैं ही नहीं। इसलिये इन्हें अक्षरातीत की अनन्त सत्ता के सम्मुख खड़ा ही नहीं किया जा सकता। अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के ही सत् अंग हैं। उनकी चतुष्पाद् विभूति भी उन्हीं की अङ्गरूपा है। आदिनारायण का स्वरूप भी स्वप्नवत् है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि श्री राज जी की सत्ता सर्वोपरि है। उनके हुक्म से ही सब कुछ होता है। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "दूसरा कोई भी कहीं नहीं है" का यही आशय है।

गुणा डिठम पांहिजा, जडे न्हारयम दिल धरे।

हे पण गुणो खुदीय जो, जे फिरी न्हारयम सहूर करे॥२९॥

**शब्दार्थ-** गुणा-दोष, डिठम-देखे, पांहिजा-अपने, जडे-जब, न्हारयम-देखा, दिल-दिल में, धरे-धर के, हे-यह, पण-भी, गुणो-दोष, खुदीय जो-अहंमेव का है, जे-जो, फिरी-फेर के, सहूर-विचार, करे-करके।

**अर्थ-** जब मैंने अपने दिल में विचार किया तो मुझे अपने दोषों का अनुभव हुआ। जब मैंने पुनः गहन विचार (चिन्तन) करके देखा, तो यह पाया कि ये अपराध तो मेरे अहंकार का है।

**भावार्थ-** जिस प्रकार गन्दा नाला समुद्र में मिलने के पश्चात् समुद्र ही हो जाता है, उसे कोई भी गन्दा नाला कहकर सम्बोधित नहीं करता क्योंकि उसका अस्तित्व समुद्र में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा जब

स्वयं को जीव भाव में देखती है तो अपने को अपराधी या धर्मात्मा मानने लगती है। अक्षरातीत की अङ्गरूपा आत्माओं को अपराध की जंजीर से कैसे बाँधा जा सकता है, किन्तु अपने अस्तित्व को धनी के प्रेम में विलीन किए बिना अपने (जीव के) अपराधों का भान अवश्य होगा।

**गुणा डिठम पांहिजा, जडे थेयम जाण।**

**गुणा डिठम से पण खुदी, तरसीस पसी पाण॥३०॥**

**शब्दार्थ—** पांहिजा—अपने, थेयम—हुई, जाण—जानकारी, से पण—सो भी, खुदी—अहंमेव, तरसीस—डरी, पसी—देख के, पाण—आप।

**अर्थ—** जब मैं सावचेत हुई, तभी मैंने अपने अपराधों को देखा (समझा)। अपने अहंकार से होने वाले गुनाहों

(दोषों) को देखकर मैं डर गयी।

**भावार्थ-** अपने कर्तव्यों के प्रति सजगता ही अपने शुभ-अशुभ कर्मों का अहसास कराती है, किन्तु अपने अस्तित्व का भान होने पर ही यह स्थिति आती है। यद्यपि अपराध करना दुर्भाग्यपूर्ण है, किन्तु अहंकार करना उससे भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि अध्यात्म के शिखर तक पहुँचने में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है।

गुणा केयम अजाणमें, गुणा डिठम मय अजाण।

दम न चुरे रे हुकम, जडे धणी पूरी डिंनी पेहेचान॥३१॥

**शब्दार्थ-** केयम-किये, अजाणमें-बेखबरी में, मय-बीच, अजाण-बेखबर, दम-किंचित् भी, न-नहीं, चुरे-चलता है, रे-बिना, जडे-जब, धणी-प्रियतम ने, पूरी-पूरी, डिंनी-दर्ई, पेहेचान-जानकारी।

**अर्थ-** यद्यपि मुझसे जो भी अपराध (गुनाह) हुए हैं, वे अनजानेपन (अज्ञानता) में हुए हैं, इनकी जानकारी (बोध) भी मुझे अनजानेपन में ही हुई। अब धाम धनी ने अपनी मेहर से मुझे अपनी सारी पहचान दे दी है, जिससे मैं समझ गयी हूँ कि जो कुछ भी होता है धाम धनी के हुक्म (आदेश) से ही होता है।

**भावार्थ-** ज्ञान और प्रेम की पूर्णता अपने "अस्तित्व" को प्रितयम अक्षरातीत में विलीन करने से है। "मैं" और "मेरा" का बोध ही अज्ञान है, जिसमें अपने को अपराधी या शुभकर्मी माना जाता है। प्रियतम के प्रेम में विलीन होने के पश्चात् आत्मा उनसे अभिन्न हो जाती है। पुनः कैसा अपराध (गुनाह)? जब सब कुछ उनके हुक्म से ही हो रहा है, तो स्वयं को धर्मात्मा या अपराधी मानने की प्रवृत्ति कहाँ से पैदा हो गयी?

जाण गिडम से पण खुदी, आंऊं जुदी थियां हिनसे।

जुदी रहां त पण खुदी, खुदी किए न निकरे हिनमें॥३२॥

**शब्दार्थ-** जाण-पहचान, गिडम-लिया, से पण-सो भी, आंऊं-मैं, जुदी-न्यारी, थियां-हूँ, हिनसे-इनसे, जुदी-अलग हो, रहां-रहती हूँ, त पण-सो भी, खुदी-अहंकार, किए-किसी तरह, न-नहीं, निकरे-जाता है, हिनमें- इनमें से।

**अर्थ-** मैंने अब यह जान लिया है कि "मैं" कहना ही अपराध है, इसलिये मैं इससे अलग हो जाऊँ। किन्तु यदि मैं इस "मैं" खुदी (अहंकार) से अलग हो जाती हूँ, तो भी अलग हो जाने की "मैं" बनी रहती है। इस प्रकार, इस संसार में किसी भी प्रकार से "मैं" नहीं निकल पाती।

महामत चोए हे मोमिनो, कोई कितई न धणी रे।

फिरी फिरी लख भेरां, न्हारयम सहूर करे॥३३॥

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, हे-ए, मोमिनो-साथ जी, कोई-कोई, कितई-कहीं, धणी-प्रियतम के, रे-बिना, फिरी फिरी-पुनः पुनः, लख-लाखों, भेरां-बखत, न्हारयम-देखा, सहूर-विचार, करे-करके।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी ! मैंने पुनः पुनः लाखों बार गहन चिन्तन करके यही निर्णय किया है कि धाम धनी के बिना कहीं भी कोई नहीं है , अर्थात् सब कुछ उन्हीं की छत्रछाया में है।

**प्रकरण ॥१०॥ चौपाई ॥४७०॥**



## खुदीजी पेहेचान

"मैं" (खुदी) की पहचान

स्वयं के अस्तित्व का बोध होना ही "मैं" (खुदी) है। स्वलीला अद्वैत परमधाम में "मैं" का अस्तित्व किस रूप में है और इस जागनी लीला में किस रूप में है, यही इस प्रकरण में दर्शाया गया है।

लखे भते न्हारयम, खुदी वंजे न किये केई।

हे मूर मंझा की निकरे, जा कांधे डेखारई बेई॥१॥

**शब्दार्थ-** लखे-लाखों, भते-तरह से, वंजे-जाता है, न-नहीं, किये-कैसे ही, केई-करके, हे-यह, मूर-मूल, मंझा-बीच से, की-कैसे, निकरे-निकले, जा-जो, कांधे-धनी, डेखारई-दिखाई, बेई-दूसरी (माया)।

**अर्थ-** मैंने लाखों प्रकार से देखा, किन्तु यह "मैं" किसी प्रकार से निकलती नहीं है। यह मूल से कैसे निकल सकती है, जब स्वयं धाम धनी ने ही इसे दूसरे (प्रतिबिम्ब) रूप में दिखाया है।

**भावार्थ-** श्री राज जी का दिल ही श्यामा जी एवं सखियों के रूप में लीला कर रहा है। उनकी परात्म का प्रतिबिम्ब सुरता (आत्मा) के रूप में इस खेल में आया हुआ है, जो जीवों के ऊपर बैठकर माया की लीला को देख रहा है। तारतम वाणी के प्रकाश में आत्मा स्वयं को शरीर, संसार, और जीव भाव से अलग तो देख सकती है, परात्म में विलीन भी कर सकती है, किन्तु परात्म की अपनी "मैं" को कैसे मिटा सकती है, क्योंकि वह तो अनादि और अखण्ड है। इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "मूल से" निकलने का यही भाव है। इसी मूल

तन का प्रतिबिम्ब रूप में दूसरा स्वरूप आत्मा है।

**जे घुरां इस्क, त हित पण पसां पांण।**

**हे पण खुदी डिठम, जडे थेयम हक पेहेचान॥२॥**

**शब्दार्थ-** घुरां-माँगती हूँ, इस्क-प्रेम, त-तो, हित-यहाँ, पण-भी, पसां-देखती हूँ, पांण-आपको ही, हे पण-यह भी, खुदी-अहंपना, डिठम-देखा, जडे-जब, थेयम-भई, हक-धनी की, पेहेचान-जानकारी।

**अर्थ-** यदि मैं आपसे प्रेम (इश्क) माँगती हूँ, तो मैं इसमें भी स्वयं को ही देखती हूँ। जब तारतम वाणी से धनी की पहचान हो जाती है, तो इसमें भी "मैं" दिखायी देती है।

**भावार्थ-** जब आत्मा अपने प्रियतम से इश्क माँगती है, तो माँगने वाली आत्मा के अस्तित्व का होना तो

स्वभाविक है। जब वह प्रेम में डूबकर धनी की पहचान कर लेती है, तो भी यह भाव तो रहता ही है कि "मैं" धनी की अँगरूपा अर्धांगिनी हूँ। इस "मैं" को किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ा जा सकता। केवल मारिफत (परम सत्य) की अवस्था में ही "मैं" कुछ समय के लिये छिप सकती है (स्वयं को भूल सकती है) किन्तु समाप्त नहीं हो सकती, क्योंकि यदि यही नहीं रहेगी तो ब्रह्मलीला का अस्तित्व भी नहीं रहेगा, जो कदापि सम्भव नहीं है।

**हक पेहेचान के के थेई, हित बिओ न कोई आए।**

**जे कढे बारीकियूं खुदियूं, डे थो हक सांजाए॥३॥**

**शब्दार्थ-** हक-धनी की, के के-किनको, थेई-हुई, हित-यहाँ, बिओ-दूसरा, न-नहीं, आए-है, जे-जो, कढे-निकाले, बारीकियूं-बारीक, खुदियूं-मैं खुदी की,

डे थो-देते हैं, सांजाए-जानकारी।

**अर्थ-** जब तारतम ज्ञान से धनी की पहचान होती है, तो किसे होती है? इस संसार में धनी की पहचान करने वाला और दूसरा कौन है? धनी के अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं, जो मैं (खुदी) की सूक्ष्म बातों को निकाले (प्रकट करे)। इसकी जानकारी केवल धाम धनी ही देते हैं।

**भावार्थ-** यह सर्वमान्य तथ्य है कि आत्मा हक की "मैं" (खुदी) लेकर ही अपने प्रियतम को जान सकती है। परात्म धनी का साक्षात् तन है। उसका या आत्मा के स्वरूप का वास्तविक बोध श्री राज जी ही देते हैं।

तन पांहिजा अर्स में, से तां सूतां निद्रमें।

जागे थो हिक खावंद, ही निद्रडी आं दी जे॥४॥

**शब्दार्थ-** पांहिजा-अपने, अर्स में-धाम में, से तां-तो, सूतां-सोये हैं, निद्रमें-नींद में, जागे थो-जाग्रत हैं, खावंद-प्रियतम, ही निद्रडी-यह नींद, आं दी-आपने दिया, जे-जिसने।

**अर्थ-** परमधाम में हमारे मूल तन नींद (फरामोशी) में बेसुध हैं। एकमात्र श्री राज जी ही जाग्रत हैं, जिन्होंने हमें यह नींद (माया) दी है।

**डेई रूहें के निद्रडी, डिखारयाई हे रांद।**

**हे केर डिसे थी रांद के, हित को आए हुकम रे कांध॥५॥**

**शब्दार्थ-** डेई-देकर, रूहें के -आत्माओं को, डिखारयाई-दिखाया, हे-यह, हे केर-यह कौन, डिसे थी-देखता है, रांद के-खेल को, हित-यहाँ, को-कोई, आए-है, रे कांध-बिना प्रियतम के।

**अर्थ-** श्री राज ने अपनी अँगनाओं को माया की नींद देकर यह खेल दिखाया है। अब प्रश्न यह है कि इस खेल को कौन देख रहा है? क्या इस खेल को दिखाने में धनी के हुक्म के बिना कोई और भी समर्थ है?

**भावार्थ-** इस मायावी जगत में आत्मा के रूप में परात्म का प्रतिबिम्ब है, जो इस खेल को देख रहा है। परात्म श्री राज जी के दिल रूपी पर्दे पर खेल को देख रही है और आत्मा जीव के ऊपर विराजमान होकर इस खेल को देख रही है।

पाण तां सुत्युं अर्स में, तरे धणी कदम।

जे रमे रमाडे रांदमें, ब्यो कोए आय रे हुकम॥६॥

**शब्दार्थ-** पाण-हम, तां-तो, सुत्युं-सोये हैं, तरे-नीचे, जे-जो, रमे-खेल, रमाडे-खेलाये, रांदमें-खेल

में, ब्यो-दूसरा, कोए-कोई, आए-है, रे हुकम-बिना हुकम।

**अर्थ-** हम तो परमधाम में धनी के चरणों में सो रही हैं। क्या धनी के हुकम के बिना और कोई समर्थ है, जो हमें इस मायावी जगत् में खेल खेला सके या खेल सके।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम में इस संसार जैसी नींद नहीं है, किन्तु खेल देखने में बेसुध होने से नींद में "सोई हुई" कहा गया है।

धणी या रांद बिच में, पडदो तो वजूद।

पुठ डेई हकके ही पसो, हे जो न्हाए की नाबूद॥७॥

**शब्दार्थ-** या-और, रांद-खेल के, पडदो-पर्दा, तो-आपके, वजूद-शरीर का है, पुठ-पीठ, डेई-देकर, हकके-धनी को, ही-यह, पसो-देखती हूँ, हे जो-यह



जो, न्हाए की-नहीं कुछ, नाबूद-नाजी।

**अर्थ-** धाम धनी और इस खेल के बीच में मात्र तन का ही पर्दा है। हम सभी आत्मायें धनी को पीठ देकर इस नश्वर ब्रह्माण्ड को देख रही हैं, जो कुछ है ही नहीं (लय हो जाने वाला है)।

**भावार्थ-** इस खेल और श्री राज जी के बीच में केवल तन का पर्दा होने का भाव है कि यदि आत्मा इस पञ्चभौतिक जीव के ऊपर विराजमान नहीं होती, तो वह इस खेल को नहीं देख पाती। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि जब आत्मिक दृष्टि इस शरीर से परे हो जायेगी, तो वह अपने मूल तन, युगल स्वरूप, एवं निजधाम को देख लेगी। इस प्रकार, यह तन रूपी पर्दा माया के खेल को दिखाने का साधन है, किन्तु परमधाम को देखने में इसका मोह बाधक भी है। प्रेममयी चितवनि द्वारा ही

शरीर के मोह से अलग हुआ जा सकता है।

हित हुकम हिकडो हक जो, उनहीं हक जो इलम।

हुकम इलम या रांद के, पसो बेठ्यूं तरे कदम॥८॥

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ, हुकम-आदेश, हिकडो-एक, हक जो-प्रियतम का, उनहीं-उन ही, जो-का, रांद के-खेल को, पसो-देखा, बेठ्यूं-बैठकर, तरे-नीचे, कदम-चरणों के।

**अर्थ-** इस संसार में श्री राज जी का हुकम है और उन्हीं का इल्म (तारतम ज्ञान) है। हम तो धनी के चरणों में बैठी हुई हुकम और इल्म के इस खेल को देख रही हैं।

चोए इलम कुंजी अंई, पट पण आयो अंई।

अकल आंजी अगरे, पसो उलटी या सई॥९॥

**शब्दार्थ-** चोए-कहता है, कुंजी-चाबी, अंई-आप हैं, पट-पर्दा, पण-भी, आयो-हैं, आंजी-आपकी, अगरे-ज्यादा है, पसो-देखो, सई-सीधी।

**अर्थ-** तारतम ज्ञान कहता है कि हे आत्माओं! तुम ही पर्दा हो और तुम्हीं पर्दे को हटाने की कुञ्जी भी हो। मैंने तुम्हें निज बुद्धि दे दी है। अब यह तुम्हारे ऊपर है कि तुम उल्टी दिशा में देखो या सीधी दिशा में।

**भावार्थ-** इसी प्रकरण की चौपाई में इस खेल में ब्रह्मसृष्टियों के तन को पर्दा कहा गया है। इसी प्रकार ब्रह्मसृष्टियों के दिल में तारतम ज्ञान विद्यमान है, जिसके कारण उन्हें कुञ्जी का स्वरूप कहा गया है। तारतम ज्ञान और जाग्रत बुद्धि या निज बुद्धि के संयोग से आत्म - जाग्रति की राह सही दिशा में तय की जाती है। इसी को सीधी दिशा में (परमधाम की ओर) देखना कहा गया है।

यदि ब्रह्मसृष्टियाँ अपने हृदय में विद्यमान तारतम ज्ञान का प्रयोग अपने आचरण में न करें, तो जीव माया की उल्टी राह पकड़ लेता है एवं आत्मा उसे देखने में तल्लीन हो जाती है। इसे ही उल्टी दिशा में देखना कहा गया है।

**हे रांद हुकम इलमजी, पाण के सुतडे डिखारे।**

**खिल्लण बिच अर्स जे, पाण के रांदयूं थो कारे॥१०॥**

**शब्दार्थ-** हे रांद-यह खेल, हुकम-आदेश, इलमजी-ज्ञान का, पाण के-हमको, सुतडे-नींद में, डिखारे-दिखाया, खिल्लण-हँसने के लिये, बिच-बीच में, अर्स जे-धाम के, पाण के-हम को, रांदयूं-खेल, थो-है, कारे-करते।

**अर्थ-** माया की नींद में हमें यह खेल दिखाया जा रहा है, जो हुकम और इल्म का है अर्थात् धनी के हुकम और

तारतम ज्ञान द्वारा इस जागनी लीला का संचालन हो रहा है। इस खेल में धनी के हुक्म से हम स्वयं को, धनी को, एवं निज घर को इसलिये भूल गये हैं ताकि परमधाम में हमारी हँसी हो सके।

**हित बिओ कोए न कितई, सभ डिसे हुकम इलम।**

**जे उडे नाबूद हुकमें, त पसो बेठ्यूं तरे कदम॥११॥**

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ, बिओ-दूसरा, कितई-कहीं, सभ-सम्पूर्ण, डिसे-देखती हूँ, हुकम-आदेश, इलम-ज्ञान, जे-जो, नाबूद-नश्वर, हुकमें-हुक्म से, त-तो, पसो-देखो, बेठ्यूं-बैठी, तरे-तले, कदम-चरणों के।

**अर्थ-** इस खेल में सर्वत्र हुक्म और इल्म की ही लीला दिखायी दे रही है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी यहाँ पर कहीं नहीं है। यदि आपके हुक्म से यह नश्वर

संसार समाप्त हो जाये, तो हम सभी आपके चरणों में मूल मिलावा में बैठी हुई दिखेंगी अर्थात् हमारी सुरतायें मूल मिलावा में पहुँच जायेंगी।

**धणी द्वार डिनो असां हथमें, बिओ इलम डिनाऊं जाण।  
त की सहू आडो पट, को न उपट्यो पाण॥१२॥**

**शब्दार्थ-** धणी-धनी ने, द्वार-द्वार खोलना, डिनो-दिया, असां-हमारे, हथमें-अधिकार में, बिओ-दूसरे, इलम-ज्ञान से, डिनाऊं-दिया, जाण-जानकारी, की-क्यों, आडो-आड़ा, पट-पर्दा, को-कोई, उपट्यूं-खोलूँ, पाण-आप।

**अर्थ-** हे धनी! एक तो आपने अपनी मेहर से परमधाम का दरवाजा हमारे हाथ में दे दिया है, दूसरा अपनी पहचान देने के लिये तारतम वाणी का ज्ञान भी दिया है।

अब मैं अपने और आपके बीच में इस माया के पर्दे को कैसे सहन कर सकती हूँ। मैं परमधाम के दरवाजे को क्यों न खोल दूँ?

**जे रे हुकम पट खोलियां, त द्रजां खुदी जे गुने।**

न तां कुंजी डिनाऊं हथ आसिक, सा मासूक विछोडो की सहे॥१३॥

**शब्दार्थ-** जे रे-जो बिना, हुकम-आज्ञा, पट-पर्दा, खोलियां-खोलूँ, त-तो, द्रजां-डरती हूँ, खुदी जे-खुदी से, गुने-दोष से, न तां-नहीं तो, कुंजी-चाबी, डिनाऊं-दिया, आसिक-आसिक के, सा-सो, विछोडो-जुदागी, की-कैसे।

**अर्थ-** हे धनी! यदि मैं आपके हुक्म के बिना ही माया के पर्दे को हटा देती हूँ, तो "मैं" (खुदी) का दोष लगने का डर है, अन्यथा आपने हम आत्माओं (आशिकों) के

हाथ में जो तारतम वाणी रूपी कुञ्जी दे रखी है, उसे पाकर हम आपका वियोग कैसे सहन कर सकती हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में हुक्म की महत्ता को दर्शाते हुए यह बताया गया है कि तारतम वाणी से धनी के स्वरूप की पहचान हो जाने पर कोई भी आत्मा माया के बन्धनों में नहीं रहना चाहती है, किन्तु मूल स्वरूप के आदेश के बिना यदि वह स्वतः ही माया के पर्दे को हटाना चाहती है तो "मैं" होने का गुनाह उसे लग सकता है, क्योंकि जब उसका अपना कुछ भी व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है तो उसे अपने प्राण प्रियतम की मेहर पर विश्वास रखकर उतावला नहीं होना चाहिए था।

किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लेना चाहिए कि हमें माया के पर्दे को हटाने के लिये कोई प्रयास ही नहीं करना है। प्रयास अवश्य करना है, किन्तु प्रेम में डूबकर।



केवल ज्ञान और विश्वास के आधार पर ही माया का पर्दा नहीं हट सकता, गुनाह अवश्य लग जायेगा, क्योंकि इस स्थिति में स्वयं के अस्तित्व का भान रहेगा। इश्क में डूब जाने पर, स्वयं की अस्तित्व-विहीनता माया के पर्दों को हटाकर धनी का दीदार भी करा देती है और दोष लगने से भी बचा देती है। आगे की चौपाइयों में यही बात दर्शायी गयी है।

**जे होयम जरा इस्क, त न पसां खुदी हुकम।**

**पण हिक न्हाएम इस्क, ब्यो पसां आडो हुकम इलम॥१४॥**

**शब्दार्थ-** होयम-होए, पसां-देखती, हिक-एक, न्हाएम-देखती हूँ, ब्यो-दूसरा, पसां-देखती हूँ, आडो-बीच।

**अर्थ-** यदि मेरे पास थोड़ा सा भी इश्क होता, तो मैं

"हुक्म" और "मैं" (खुदी) की ओर नहीं देखती अर्थात् मैं धनी के आदेश और "मैं" का दोष लगने की जरा भी परवाह नहीं करती। इस संसार में मेरे पास इश्क ही नहीं है, इसलिये माया के पर्दे को हटाने की राह में हुक्म और इल्म रोड़ा (बाधा) बनकर खड़े हैं।

**न तां जे दर उपटियां, पसण धणी रहेमान।**

**की न्हारियां वाट हुकमजी, धणी डिंनी कुंजी पेहेचान॥१५॥**

**शब्दार्थ—** न तां—नहीं तो, जे—जो, दर—द्वार, उपटियां—खोलकर, पसण—देखिए, रहेमान—मेहरबान, की—क्यों, न्हारियां—देखूँ, वाट—रास्ता, हुकमजी—आज्ञा की, धणी—प्रियतम ने, डिंनी—दिया, कुंजी—चाबी।

**अर्थ—** अन्यथा परमधाम का दरवाजा खोलकर मेहर के सागर अपने प्रियतम का दीदार हम क्यों नहीं कर लेतीं?

जब श्री राज जी ने तारतम वाणी से अपनी पहचान करा दी है, तो हम हुक्म की राह क्यों देखें (प्रतीक्षा क्यों करें)?

**सुकेमें डियां की डुबियूं, जे अचिम जरा इस्क।**

**त हुकम खुदी न्हाए गुणो, पट दम न रखे बेसक॥१६॥**

**शब्दार्थ-** सुकेमें-पानी के बिना, डियां-देऊँ, की-कैसे, डुबियूं-डुबकी, जे-जो, अचिम-आवे, जरा-किंचित्, न्हाए-नहीं, गुणो-दोष, पट-पर्दा, दम-क्षणमात्र, न-नहीं, बेसक-निश्चय ही।

**अर्थ-** यदि मेरे पास थोड़ा सा भी इश्क आ जाता, तो मैं बिना जल वाले इस भवसागर में गोते क्यों खाती अर्थात् डूबती-उतराती क्यों रहती (भटकती क्यों रहती)? इश्क आ जाने पर तो मेरे और धनी के बीच में

एक पल के लिये भी माया का पर्दा नहीं रहता और हुक्म के कारण मेरे ऊपर "मैं" खुदी का दोष (गुनाह) भी नहीं लगता।

**भावार्थ-** इस चौपाई का कथन सांकेतिक रूप से सुन्दरसाथ के लिये ही है। श्री महामति जी के धाम हृदय में इश्क भी विद्यमान है और वे बिना जल वाले इस भवसागर में भटक भी नहीं रही हैं। इस चौपाई में तो स्वयं के प्रति कथन करके सुन्दरसाथ को वास्तविक रहस्य का बोध कराया गया है।

**इस्क मंगां त गुणो, खुदी पण गुन्हेगार।**

**हुकम इलम जे न्हारियां, त आंऊं बंधिस बिनी पार॥१७॥**

**शब्दार्थ-** मंगां-माँगती हूँ, त-तो, गुणो-गुनाह है, खुदी-अहंपना से, पण-भी, गुनेगार-दोषित हूँ, हुकम-

आज्ञा से, इलम-ज्ञान को, जे-जो, न्हारियां-देखती हूँ, त-तो, आंऊं-मैं, बंधिस- बँध गई हूँ, बिनी-दोनों, पार-तरफ से।

**अर्थ-** यदि मैं धनी से इश्क माँगती हूँ तो दोष लगता है और यदि मैं अपने अस्तित्व (मैं) का भाव रखती हूँ तो भी अपराध (गुनाह) होता है। जब मैं हुक्म और इल्म की ओर देखती हूँ, तो स्वयं को दोनों ओर से बँधी हुई पाती हूँ।

**भावार्थ-** इस चौपाई में दोनों ओर से बँधने का भाव यह है कि जब श्री इन्द्रावती जी माया का पर्दा हटाने के लिये इश्क चाहती हैं तो भी गुनाह लगता है, क्योंकि स्वलीला अद्वैत में लीला-विहार करने वाली ब्रह्माँगना अपने अलग अस्तित्व की कल्पना कैसे कर रही है। यदि बिना इश्क के वे माया का पर्दा हटाती हैं, तो भी हुक्म और इल्म के

कारण "मैं" का दोष लगता है (चौपाई १३ में इस तथ्य की व्याख्या की जा चुकी है)।

जे सहूर करे न्हारियां, त खुदी मंगण तरे हुकम।

त दर उपटे पांहिजो, गडजां को न खसम॥१८॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, सहूर-विचार, करे-करके, न्हारियां-देखती हूँ, मंगण-माँगू, तरे-नीचे, हुकम-आज्ञा से, दर-दरवाजा, उपटे-खोल के, पांहिजो-अपने, गडजां-मिलूँ, को-क्यों।

**अर्थ-** जब मैं गहन चिन्तन करके देखती हूँ, तो यह स्पष्ट होता है कि "मैं" (खुदी) का भाव लेना और माँगना दोनों ही धनी के आदेश से होता है। ऐसी स्थिति में, मैं परमधाम का दरवाजा खोलकर अपने प्राणवल्लभ से क्यों न मिल लूँ?

इस चौपाई में यह रहस्य उद्घाटित किया गया है कि जब इश्क माँगने और "मैं" के भाव का अपराध धनी के आदेश (हुकम) से ही होता है, तो इसमें हमारा क्या दोष है? हमें तो निर्दोष माना जाना चाहिए, क्योंकि हम धनी के हुकम के अधीन हैं। ऐसी स्थिति में परमधाम का द्वार खोलकर धनी के दीदार का सुख क्यों छोड़ा जाये।

**खुदी गुणो हुकमें, घुरां कुछां हुकम।**

**पट लाहियां या जे करियां, सभ हुकमें चयो इलम॥१९॥**

**शब्दार्थ—** गुणो—दोष, हुकमें—आज्ञा, घुरां—माँगती हूँ, कुछां—बोलती हूँ, लाहियां—उतारती हूँ, जे—जो, करियां—करती हूँ, सभ—सम्पूर्ण, हुकमें—आज्ञा से, चयो—कहा, इलम—ज्ञान ने।

**अर्थ—** हे धनी! आपकी तारतम वाणी यही कहती है कि

"मैं" (खुदी) का अपराध (गुनाह) भी आपके आदेश से ही होता है। मेरा माँगना या बोलना भी आपके हुक्म से बँधा हुआ है। मैं माया का पर्दा हटाऊँ या कुछ भी करूँ, सबमें आपके हुक्म की ही लीला है।

**हित खुदी न गुणो के सिर, दर उपट या ढक।**

**पस पिरी या रांद के, आखिर ई चोए इलम हक॥२०॥**

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ, गुणो-दोष, के सिर-किसके ऊपर, दर-द्वार, उपट-खोलिए, ढक-बन्द रखिये, पस-देखिए, पिरी-प्रियतम को, या रांद के-या खेल को, आखर-अन्त में, ई-ऐसे, चोए-कहता है, हक-धनी का।

**अर्थ-** अन्ततोगत्वा, धनी का तारतम ज्ञान यही कहता है कि यहाँ पर "मैं" (खुदी) के गुनाह का दोष किसी के



भी शिर पर नहीं है, चाहे तुम परमधाम का दरवाजा खोलो या बन्द रखो, प्रियतम की ओर देखो या खेल की तरफ देखो।

**सभ डिनो दिल मोमिन जे, जो मोमिन दिल अर्स।**

**पस पाण पांहिजे दिलमें, दिल मोमिन अरस-परस॥२१॥**

**शब्दार्थ-** सभ-सम्पूर्ण, डिनो-दिया, जे-के, पस-देखिए, पाण-आप, पांहिजे-अपने, दिल-हृदय।

**अर्थ-** ब्रह्मसृष्टियों का दिल (हृदय) धनी का अर्श (धाम) होता है। उनके धाम हृदय में श्री राज जी ने अपनी सम्पूर्ण निधियाँ (इश्क, इल्म, जोश आदि) दे रखी हैं। हे साथ जी! अब आप अपने धाम हृदय में देखिए। आपका दिल और धनी का दिल आपस में एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं।

**भावार्थ-** ब्रह्मवाणी सहित संसार के समस्त धर्मग्रन्थों का यही आशय है कि बाहर भटकने की अपेक्षा अपनी आत्मा के धाम हृदय में ही प्रियतम को खोजना चाहिए, जहाँ वे अपनी सम्पूर्ण निधियों सहित विराजमान हैं।

**अर्स दिल मोमिन जो, जे पसे अर्स मोमिन।**

**चाहिए कोठियां हक अर्समें, त तो पेरो न्हाए ए तन॥२२॥**

**शब्दार्थ-** जे-का, पसे-देखें, अर्स-धाम का, चाहिए-चाहे, कोठियां-बुलाना, त तो-तब तो, पेरो-पहले ही, न्हाए-नहीं है, ए-यह, तन-शरीर।

**अर्थ-** वस्तुतः ब्रह्मसृष्टियों का हृदय ही धाम होता है, इसलिये वे ही परमधाम को देखती हैं। जब धाम धनी आत्माओं को परमधाम में बुलाते हैं (दर्शन कराते हैं), तो उनकी दृष्टि से ये शरीर पहले ही ओझल हो जाते हैं

(हट जाते हैं)।

**भावार्थ-** परमधाम में बुलाने का आशय है- परमधाम का दर्शन कराना। जब आत्मिक दृष्टि परमधाम की ओर होती है, तो उसे अपने पञ्चभौतिक तन या ब्रह्माण्ड का कुछ भी आभास नहीं होता। इसे ही यहाँ तन का छूटना कहा गया है।

**महामत चोए हे मोमिनो, धणिएं पूरी केई खिल।**

**पिरी पसो या रांद के, हक बेठो अर्स तो दिल।।२३।।**

**शब्दार्थ-** चोए-कहते हैं, धणिएं-धनी ने, पूरी-पूर्ण, केई-किया, खिल-हँसी, पिरी-प्रियतम को, पसो-देखिए, रांद के-खेल को, बेठो-बैठे हैं, तो-आपके, दिल-दिल में।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी ने हमारे साथ बहुत हँसी की है। अब यह आपके

ऊपर निर्भर करता है कि आप अपने प्रियतम को देखें या इस मायावी खेल को देखें, वैसे तो वे आपके धाम हृदय में ही विराजमान हैं।

**भावार्थ-** इस चौपाई में सुन्दरसाथ को यह निर्देश दिया गया है कि यदि उन्हें अपने जीवन को सफल बनाना है, तो माया की तृष्णाओं के पीछे भागने तथा कर्मकाण्डों के जाल में उलझने की प्रवृत्ति से हटना होगा और अपने धाम हृदय की ओर मुड़ना होगा जहाँ वे अपनी सम्पूर्ण शोभा के साथ विराजमान हैं। ब्रह्मसृष्टियों के दिल को कुञ्जी इसलिये कहा गया है क्योंकि उनको धनी की सभी निधियों (निस्बत, वहदत, खिल्वत आदि) का स्वाद इसी से प्राप्त होता है। परमधाम के अखण्ड सुख रूपी खजाने की कुञ्जी आत्माओं का हृदय ही है।

**प्रकरण ॥११॥ चौपाई ॥४९३॥**

## हुकमजी पेहेचान

### हुकम की पहचान

धनी के आदेश (हुक्म) की पहचान। "हक को काम कछु और नहीं, देवें रूहों लाड लज्जत " (श्रृंगार २४/२८) अर्थात् अक्षरातीत का स्वभाव ही है अपनी अँगनाओं को अपने प्रेम के अथाह रस में डुबोये रखना। स्वभाव की क्रियान्वयन् (कार्य में परिणित करने वाली) शक्ति इच्छा होती है और इच्छा का व्यक्त स्वरूप ही हुक्म (आदेश) होता है। इस प्रकार प्रेम करना अक्षरातीत का स्वभाव है, किन्तु इसे लीला रूप में परिणित करने के लिये इच्छा का होना अनिवार्य है। वही इच्छा इस सत्तात्मक ब्रह्माण्ड के शब्दों में आदेश या हुकम का स्वरूप धारण कर लेती है। इसे खिल्वत ग्रन्थ के शब्दों में इस प्रकार कहा गया है—

हकें किया हुकम वतन में, सो उपजत अंग असल।

जैसा देखत सुपन में, ए जो बरतत इत नकल॥

कहे लदुन्नी भोम तलेय की, हक बैठे खेलावत।

तैसा इत होता गया, जैसा हजूर हुकम करत॥

खिल्वत ५/३७,३९

इस प्रकार इस प्रकरण में हुकम के ऊपर विस्तृत विवेचना की गयी है।

ताडो कुंजी ना दर उपटण, समझाए डिंनी सभ तो।

बेठा आयो मूं दिल में, जीं जाणो तीं गडजो॥१॥

**शब्दार्थ-** ताडो-ताला, ना-नहीं है, दर-द्वार, उपटण-खोलना, समझाए-समझा, डिंनी-दिया, सभ तो-सब आपने, बेठा-बैठे, आयो-हैं, मूं-मेरे, जीं-

जैसे, जाणो-जानिए, तीं-वैसे, गडजो-मिलिए।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे धाम धनी! आपने तारतम वाणी के प्रकाश में सब कुछ समझा दिया है और अब तो मेरे धाम हृदय में साक्षात् आकर विराजमान हो गये हैं। ऐसी स्थिति में न तो मुझे किसी ताले या कुञ्जी के बारे में सोचना है और न दरवाजा खोलने के विषय में सोचना है। अब आप, जिस तरह से भी चाहें, उसी तरह से मिलिए।

**भावार्थ-** निराकार का मण्डल ही वह ताला है, जिसके बन्द रहने से आज दिन तक कोई भी जीव अखण्ड धाम में नहीं जा सका। जीव के ऊपर बैठी हुई आत्मा जब तक अपनी दृष्टि को शरीर और संसार से अलग नहीं करती, तब तक उसे भी परमधाम का साक्षात्कार नहीं हो सकता। इस प्रकार शरीर और संसार भी ताले की

भूमिका निभाते हैं। तारतम ज्ञान ही वह कुञ्जी है जिससे पिण्ड, ब्रह्माण्ड, या निराकार रूपी ताला खुल जाता है, तथा प्रेम के दरवाजे से होकर परमधाम एवं प्रियतम का दीदार होता है। तारतम ज्ञान न होने से कोई भी निराकार के मण्डल को पार नहीं कर पाया था और उसके लिये प्रेम का दरवाजा भी प्राप्त नहीं हो सका था। श्री महामति जी का आशय यह है कि जब सम्पूर्ण परमधाम की शोभा सहित युगल स्वरूप ही मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गये हैं, तो परमधाम या धनी के दीदार के लिये मैं ताला (निराकार), कुञ्जी (तारतम ज्ञान), और इश्क रूपी द्वार के विषय में अधिक क्यों सोचूँ। अब तो मुझे अपने धाम हृदय में बैठे युगल स्वरूप का दीदार करना है।

इस चौपाई के चौथे चरण में कहा गया है कि "अब,



आप जैसे भी चाहें, वैसे ही मिलिए।" इस प्रकार यहाँ यह संशय होता है कि जब धाम धनी दिल में ही विराजमान हैं, तो पुनः मिलने या दर्शन देने की बात क्यों कही गयी है?

इसके समाधान में यही कहा जा सकता है कि वि.सं. १७१२ में सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के धामगमन के पश्चात् ही युगल स्वरूप श्री मिहिरराज जी के अन्दर विराजमान हो गये थे, किन्तु उन्हें इसकी जानकारी नहीं थी। वि.सं. १७१५ में विरह में छः मास तड़पने के पश्चात् युगल स्वरूप ने उन्हें दीदार दिया और उन्हें बोध कराकर उनके धाम हृदय में पुनः विराजमान हो गये।

वर्तमान काल में सभी सुन्दरसाथ की वही स्थिति है, जो वि.सं. १७१२ से पहले श्री मिहिरराज जी की थी। परात्म के दिल में सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप

विद्यमान हैं। उसकी प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के भी धाम हृदय में सम्पूर्ण परमधाम सहित युगल स्वरूप विद्यमान होते हैं, किन्तु जिस प्रकार किसी दर्पण के ऊपर मोटे कागज का टुकड़ा रख देने पर अपना प्रतिबिम्ब नहीं दिखायी पड़ता, उसी प्रकार आत्मा को भी अपने धाम हृदय में विराजमान युगल स्वरूप सहित परमधाम की अनुभूति तब तक नहीं होती जब तक उसकी दृष्टि शरीर, जीव, और संसार से परे होकर प्रेम में नहीं डूबती। प्रेमाग्नि द्वारा आत्मा के धाम हृदय रूपी दर्पण के ऊपर का आवरण हटता जाता है तथा उसे अपने ही धाम हृदय में अपनी परात्म, युगल स्वरूप, तथा परमधाम के सभी पक्ष दिखायी देने लगते हैं।

वि.सं.१७१२ में श्री मिहिरराज जी के अन्दर श्री राज जी का वही आवेश स्वरूप विराजमान हुआ, जिसने

सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को तीन बार दर्शन दिया था। इसका बोध उन्हें वि.सं. १७१५ में ही हुआ। श्री महामति जी को इस संसार में अक्षरातीत की शोभा देनी थी, इसलिये धाम धनी उनके धाम हृदय में अपने आवेश स्वरूप से विराजमान हुए। अन्य सभी आत्माओं के अन्दर वे प्रतिबिम्ब रूप से ही विराजमान हैं और अपनी-अपनी करनी-रहनी के अनुसार सबके दिल को उतनी अनुभूति होती है। वर्तमान समय में धनी अपने आवेश स्वरूप से श्री मिहिरराज जी (श्री महामति जी) के धाम हृदय में ही विराजमान हैं। अन्य आत्माओं के साथ धनी के जोश की लीला होती है। आगे की चौपाई में भी यही प्रसंग है।

सेहेरग से ओडडो, आडो पट न द्वार।

उघाड़िए अंख समझजी, डिसंदी न डिसे भरतार।।२।।

**शब्दार्थ-** सेहेरग-शाहरग, ओडडो-नजीक, आडो-आड़ा, पट-पर्दा, उघाड़िए-खोलिये, अंख-आँख, समझजी-पहचान की, डिसंदी-देखती, न-नहीं, डिसे-देखती हूँ, भरतार-पति को।

**अर्थ-** हे प्रियतम! आप मेरे धाम हृदय में मेरी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं, इसलिये अब मेरे और आपके बीच में किसी भी प्रकार का कोई पर्दा नहीं है। ऐसी स्थिति में तो अब मुझे इश्क का द्वार भी ढूँढने की आवश्यकता नहीं रह गयी है। आपने मेरी ज्ञान-दृष्टि को तो खोल दिया है, किन्तु इश्क न होने से मैं आपको देखते हुए भी नहीं देख पा रही हूँ।

**भावार्थ-** प्रायः सभी सुन्दरसाथ की यही स्थिति है,

जिसमें धनी सभी के धाम हृदय में विराजमान हैं किन्तु विरह-प्रेम न होने से किसी को नजर नहीं आ रहे हैं, जबकि ज्ञान दृष्टि से सभी को यह मालूम होता है कि मेरे धाम हृदय में युगल स्वरूप सहित २५ पक्ष विद्यमान हैं। श्रृंगार ग्रन्थ के दूसरे प्रकरण में यह बात विस्तारपूर्वक दर्शायी गयी है।

**हुकम इलम खेल हिकडो, ब्यो कोए न कितई दम।**

**हित रूह न कांए रूहनजी, जे की थेयो से सभ हुकम॥३॥**

**शब्दार्थ-** हिकडो-एक ही, ब्यो-दूसरा, कोए-कोई, कितई-कहीं भी, दम-जरा मात्र भी, हित-यहाँ, कांए-कोई, रूहन जी-सखियों की, जे की-जो कुछ, थेयो-हुआ, से-सो, सभ-सब, हुकम-आज्ञा से।

**अर्थ-** यह खेल हुकम और इल्म का है। दूसरा कहीं भी

कोई नहीं है। यहाँ परात्म का दिल भी नहीं है। यहाँ पर जो कुछ हुआ है, सब हुक्म से ही हुआ है।

**भावार्थ-** इस चौपाई के तीसरे चरण में कथित "रूहों की रूहें" का तात्पर्य है "परात्म का दिल"। "अल्ला मुहबा मासूक, सो खासी खसम दिल" (सनन्ध १/१) से स्पष्ट है कि बड़ी रूह श्यामा जी, श्री राज जी की हृदय स्वरूपा हैं। इसी प्रकार सखियाँ भी उनकी हृदय स्वरूपा हैं। "हादी नूर है हक का, रूहें हादी अंग नूर" आदि के कथनों से स्पष्ट है कि परात्म के तनों को "रूहें" कहा गया है। इसी प्रकार परात्म के दिल को भी "रूह की रूह" (दिल) कहा जाता है।

श्री राज जी का दिल ही सबके प्रेम का आधार है। इसलिये परमधाम में उनके दिल से प्रकट होने वाली प्रत्येक वस्तु को रूह कहकर सम्बोधित किया गया है।

या पहाड़ या तिनका, सो सब चीज बिध आतम।  
सब देत देखाई जाहेर, ज्यों देखिए मांहे चसम॥

श्रृंगार २६/६

जिमी जात भी रूह की, रूह जात आसमान।  
जल तेज वाए सब रूह को, रूह जात अर्स सुभान॥

सागर १/४०

इस मायावी खेल में श्री राज जी के आदेश से परात्म का प्रतिबिम्ब ही इस खेल में आत्मा के रूप में कार्य कर रहा है। जिस प्रकार परात्म का दिल होता है, उसी प्रकार आत्मा का भी दिल होता है, किन्तु आत्मा और उसका दिल मात्र प्रतिबिम्बित स्वरूप ही है।

सिफत ऐसी कही मोमिनों, जाके अक्स का दिल अर्स।  
हक सुपने में भी संग कहें, रूहें इन विध अरस परस॥

श्रृंगार २१/८१

दिल मोमिन अर्स तन बीच में, उन दिल बीच ए दिल।  
केहेने को ए दिल है, है अर्से दिल असल॥

श्रृंगार २६/१४

पांहिज्यूं सुरत्यूं हुकम, ही रांद डेखारे हुकम।

रमे रांद मोहोरा हुकमें, डेखारे तरे कदम॥४॥

**शब्दार्थ-** पांहिज्यूं-अपनी, सुरत्यूं-सुरताएँ, हुकम-  
आज्ञा से, ही रांद-यह खेल, डेखारे-दिखाया, हुकम-  
आज्ञा से, रमे-खेलते हैं, रांद-खेल के, मोहोरा-मोहरे,  
गोटें, हुकमें-आज्ञा से, डेखारे-दिखाया, तरे-नीचे,  
कदम-चरणों के।

**अर्थ-** हमारी सुरता हुकम से है। यह खेल भी धनी का  
हुकम ही दिखा रहा है। अपने चरणों में बिठाकर धनी ने



हमें जिस खेल को दिखाया है, उसके अग्रगण्य (त्रिदेव) भी हुक्म से ही खेल रहे हैं।

**भावार्थ**— धाम धनी ने अपने दिल में खेल दिखाने का विचार लिया। उनकी इच्छा (हुक्म) से ब्रह्मसृष्टियों की दृष्टि धनी के दिल रूपी पर्दे से होकर इस खेल में आ गयी है। इसलिये इन सुरताओं को हुक्म की सुरतायें कहा गया है—

रूहों हक अर्स नजरों, हुक्म नजर खेल मांहे।

अर्स नजीक रूहों को खेल से, इत धोखा जरा नांहे॥

एक तन हमारा लाहूत में, नासूत में और तन।

असल तन रूहें अर्स बीच में, तन नासूत में आया इजन॥

श्रृंगार २४/११,३२

जे अरवाएं अर्स जी, से सभ हक जी आमर।

असां हुज्रत गिडी अर्स जी, अग्यां बेठ्यूं हक नजर॥५॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, अरवाएं-आत्माएँ, अर्स जी-धाम की है, से-सो, सभ-सम्पूर्ण, हक जी-धनी की, आमर-आज्ञा है, असां-हम, हुज्रत-दावा।

**अर्थ-** परमधाम की हम जो भी आत्मायें हैं, सभी श्री राज जी के हुक्म से ही हैं। यद्यपि इस खेल में हमने परमधाम के नामों का दावा ले रखा है, किन्तु परमधाम के मूल मिलावा में हम अपने मूल तन से धनी के सम्मुख बैठी हुई हैं।

**भावार्थ-** जिस प्रकार, स्वप्न में जो कल्पित शरीर होता है, उसका भी वही नाम होता है जो स्वप्न द्रष्टा का होता है। उसी प्रकार, धनी के हुक्म से जिस-जिस परात्म का जो नाम परमधाम में है, वही नाम इस संसार में उसे

दिया गया है। यद्यपि, परमधाम की भाषा शब्दातीत है, किन्तु यहाँ की भाषा एवं भावों के अनूकूल ही परमधाम के भी नाम माने गये हैं। इसे श्रृंगार ग्रन्थ २३/२०, २१, २३ में इस प्रकार दर्शाया गया है—

जो कदी कहोगे रुहें उत न हुती, ए तो हुकमें किया यों।  
तो नाम हमारे धर के, हुकम करें यों क्यों॥

जो कदी हम आइयां नहीं, तो नाम तो हमारे धरे।

और तिनमें हुकम हक का, हक तासों ऐसी क्यों करे॥

हुकम पर ले डारोगे, तेहेकीक कराओगे दिल।

दाग अक्सों क्यों मिटे, जो हमारे नामों किए सब मिल॥

**अरवा असां जी आमर, गुण अंग इंद्री आमर।**

**असीं डिसूं सभ आमर के, रांद डिखारे पट कर॥६॥**

**शब्दार्थ-** अरवा-आत्मा, असां जी-हमारी, आमर-आज्ञा से, असीं-हम, डिसूं-देखती हैं, आमर के-आज्ञा को, रांद-खेल, डिखारे-दिखाते हैं, पट कर-पर्दा करके।

**अर्थ-** हमारी आत्मा हुक्म की है। इसकी गुण अंग इन्द्रियाँ भी हुक्म की हैं। इस संसार में मैं जो कुछ देख रही हूँ, सभी कुछ हुक्म का है। धनी का हुक्म ही नींद (फरामोशी) का पर्दा डालकर यह माया का खेल दिखा रहा है।

**भावार्थ-** यद्यपि धनी के हुक्म से आत्माओं (सुरता) के जीवों ने जिन शरीरों को धारण किया है, वे पञ्चभूतात्मक और त्रिगुणात्मक होते हैं, उनके रूप-रंग और आकृति आदि में भी भिन्नता होती है, किन्तु परमधाम में सबकी परात्म का रूप, रंग, एवं आकृति समान है। विशेष तथ्य

यह है कि स्वाप्लिक शरीर की आकृति और रूप –रंग वही होता है, जो स्वप्नद्रष्टा का होता है। आत्म-जाग्रति की गहन अवस्था में ही अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार होता है, जो हूबहू परात्म जैसा ही है। इसे श्रृंगार ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

रूह तेती जागी जानियो, जेता दिल में चुभे हक अंग।  
 जो अंग हिरदे न आइया, रूह के तेती फरामोसी संग॥  
 मोहे दिल में हुकमें यों कहया, जो दिल में आवे हक मुख।  
 तो खड़ा होए मुख रूह का, हक सों होए सनमुख॥  
 जो हक निलाट आवे दिल में, और दिल में आवे श्रवन।  
 दोऊ अंग खड़े होए रूह के, जो होवें रूह मोमिन॥  
 ए अंग जेते मैं कहे, आवे रूह के हिरदे हक।  
 तेते अंग रूह के, उठ खड़े होए बेसक॥

वस्तर भूखन हक के, आए हिरदे ज्यों कर।  
 ल्यों सोभा सहित आत्मा, उठ खड़ी होए बराबर॥  
 सुपने सूरत पूरन, रूह हिरदे आई सुभान।  
 तब निज सूरत रूह की, उठ बैठी परवान॥  
 जब पूरन सरूप हक का, आए बैठा मांहे दिल।  
 तब सोई अंग आतम के, उठ खड़े सब मिल॥

श्रृंगार ४/२०, २३, २६, २८, ६८, ६९, ७०

श्री राज जी के हुक्म से आत्मा का जो स्वरूप इस  
 संसार में आया है, वह परात्म का हुबहू प्रतिबिम्ब  
 (अक्श) है और उसके अन्दर स्वयं धाम धनी ही  
 विराजमान हैं। श्रृंगार २१/८२ में यह बात इस प्रकार  
 कही गयी है—

ए जो मोमिन अक्स कहे, जानों आए दुनिया मांहे।  
हक अर्स कर बैठे दिल को, जुदे इत भी छोड़े नाहें।।

**हित अचे अरवा अर्स जी, त उडे चौडे तबक।**

**हुकमें नाम धरायो रूहन जो, हे हुकम केयो सभ हक।।७।।**

**शब्दार्थ-** हित-यहाँ, अचे-आवे, अरवा-आत्मा, अर्स जी-धाम की, त-तो, चौडे-चौदह, तबक-लोक, हुकमें-आज्ञा ने, धरायो-धराया, रूहन जो-आत्माओं का, हे-यह, केयो-किया, सभ-सब, हक-प्रियतम ने।

**अर्थ-** यदि परमधाम की आत्मा यहाँ आ जाये, तो चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाएगा। इस संसार में हुकम ने ही आत्माओं का नाम रखा है। यह सब कुछ श्री राज जी के हुकम ने ही किया है।

**भावार्थ-** यदि सूर्य प्रत्यक्ष रूप से इस पृथ्वी पर आ

जाये, तो इस पृथ्वी का जलकर राख हो जाना स्वाभाविक है। टी.वी. के पर्दे, किसी बर्तन में रखे जल, अथवा दर्पण में प्रतिबिम्बित होने वाला सूर्य यथार्थ में वैसा ही (हूबहू) दिखता है, किन्तु उसकी उष्णता का कोई भी दुष्प्रभाव टी.वी. के पर्दे, जल, या दर्पण पर नहीं पड़ता। ठीक इसी प्रकार, परात्म का प्रतिबिम्ब भी आत्मा के रूप में इस संसार में है, किन्तु परात्म का स्वरूप जहाँ नूरी है, वहीं आत्मा का स्वरूप भी प्रकाशमयी अवश्य है किन्तु दाहकता से पूर्णतया रहित है। भले ही परमधाम की एक कँकड़ी से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाप्त हो सकता है, किन्तु परात्म की प्रतिबिम्ब स्वरूपा आत्मा के इस पञ्चभौतिक तन में विराजमान होने पर भी शरीर को कोई क्षति नहीं होती। यहाँ तक कि आत्मा के धाम हृदय में युगल स्वरूप सहित सम्पूर्ण



परमधाम भी बसा होता है।

सिफत ऐसी कही मोमिनो, जाके अक्स का दिल अर्स।

हक सुपने में भी संग कहे, रूहें इन विध अरस परस॥

प्रतिबिम्ब के जो असल, तिनों हक बैठे खेलावत।

तहां क्यों न होए हक नजर, जो खेल रूहों देखावत॥

श्रृंगार २१/८१, ८६

अर्स तन का दिल जो, सो दिल देखत है हमको।

प्रतिबिम्ब हमारे तो कहे, जो दिल हमारे उन दिल मों॥

श्रृंगार २१/९३

अर्स दिल मोमिन तो कह्या, जो हक सों रूह निसबत।

ना तो अर्स दिल आदमी का, क्यों कह्या जाए ख्वाब में इत॥

रूह तन की असल अर्स में, अर्स ख्वाब नहीं तफावत।

तो कह्या सेहरग से नजीक, हक अर्स दुनी बीच इत॥

श्रृंगार २६/१२, १३

कूड न अचे अर्स में, रूह माधा न रहे कूड दम।

न्हारयम अंतर मंझ बाहेर, कित जरो न रे हुकम॥८॥

**शब्दार्थ**— अचे—आता है, अर्स में—धाम में, रूह—आत्मा के, माधा—सामने, रहे—रहता है, कूड—झूठ, दम—क्षण भर, न्हारयम—देखा, अंतर—आत्मा से, मंझ—दिल से, बाहेर—शरीर से, कित—कहीं, जरो—जरा भी, रे—बिना।

**अर्थ**— परमधाम में झूठ नहीं आ सकता। ब्रह्मसृष्टियों के सामने पल भर के लिये भी यह झूठा ब्रह्माण्ड नहीं रह सकता। मैंने इस पिण्ड (शरीर), ब्रह्माण्ड, और इससे परे परमधाम में भी देखा, किन्तु धनी के हुक्म से रहित कुछ भी नहीं दिखा।

**भावार्थ**— भले ही परात्म की नूरी नजरों के सामने यह

ब्रह्माण्ड नहीं रह सकता, किन्तु धनी के हुकम से खेल में जो आत्मा का स्वरूप है उसके धाम हृदय में स्वयं श्री राज जी ही विराजमान हैं—

इन सुपन देह माफक, हकें दिल में किया प्रवेस।

ए हुकम जैसा कहावत, तैसा बोले हमारा भेस॥

श्रृंगार २१/९२

डिठो डिखारयो हुकमें, असीं थेयां हुकम।

न्हाए न थ्यो न थींदो, की धारा हुकम खसम॥९॥

**शब्दार्थ—** डिठो—देखा, डिखारयो—दिखाया, हुकमें—आज्ञा ने, असीं—हमको, थेयां—हुए, हुकम—आज्ञा से, न्हाए—नहीं है, न थ्यो—न हुआ, न थींदो—न होगा, की—कुछ भी, धारा—बिना, हुकम—आज्ञा के सिवाय, खसम—धनी के।

**अर्थ-** सुरता के स्वरूप में हुक्म ने ही खेल को देखा है और हुक्म ने ही दिखाया है। हमारा स्वरूप भी हुक्म (आदेश) का ही है। श्री राज जी के आदेश (हुक्म) के बिना न तो पहले कुछ था, न वर्तमान में है, और न भविष्य में होगा।

**भावार्थ-** जिस प्रकार परमधाम में श्री राज जी के दिल की इच्छा (हुक्म) से ही लीला रूप में श्यामा जी सहित सभी सखियों के तन (परात्म) दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उसी प्रकार इस खेल में भी आत्माओं का स्वरूप है जिन्हें "हुक्म स्वरूपा" कहा गया है। इस प्रकार श्री राज जी का हुक्म ही सुरता के रूप में खेल को देख रहा है तथा हुक्म ही खेल को दिखा रहा है। इसे श्रृंगार ग्रन्थ के इन शब्दों द्वारा समझा जा सकता है-

हुकम तो तन में सही, और लिए रूह की हुज्रत।

हिस्सा चाहिए तिनका, सो भी मांहें बोलत॥

कह्या दिल अर्स मोमिन का, दिल कह्या न हुकम का।

देखो इनों का बेवरा, हिस्से रूह के हैं बका॥

मोमिन तन में हुकम, तामें हिस्से रूह के देख।

दिल अर्स हक इलम, रूह की हुज्रत नाम भेख॥

श्रृंगार २७/१०,११,१२

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धनी के हुकम से आत्मा का जो स्वरूप इस खेल में है, उसने परात्म का ही नाम, भेष, और दावा ले रखा है।

हुकमें डिखारयो हुकम के, ते हुकमें डिठो हुकम।

भिस्त दोजख थेई हुकमें, आखिर सुख थेयो सभ दम॥१०॥

**शब्दार्थ-** हुकमें-आज्ञा ने, डिखारयो-दिखाया, हुकम के-आज्ञा को, ते-तो, डिठो-देखा, भिस्त-मुक्ति सुख, दोजख-दुःख, थेई-हुआ, आखिर-अन्त में, सुख-आनन्द, थेयो-हुआ, सभ-सम्पूर्ण, दम-प्राणी मात्र को।

**अर्थ-** धनी की आज्ञा (आदेश) ने हुकम स्वरूपा आत्माओं को यह खेल दिखाया है। धनी के हुकम से ही आत्माओं ने इस हुकम स्वरूप ब्रह्माण्ड को देखा है। संसार के सभी प्राणियों को न्याय के दिन हुकम से ही बहिश्तों का सुख प्राप्त होगा और दोजक में प्रायश्चित की अग्नि में जलना पड़ेगा।

**भावार्थ-** जिस हकी सूरत (श्री जी) द्वारा सबका न्याय होना है, वे भी हुकम के ही स्वरूप कहे गये हैं। इसी प्रकार बशरी तथा मल्की सूरत सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी भी हुकम के ही स्वरूप हैं, अर्थात् श्री राज जी की

इच्छा (हुकम) से ही तीनों सूरतें (स्वरूप) इस संसार में प्रकट हुईं जिनमें अक्षरातीत की भिन्न-भिन्न शक्तियों ने अलग-अलग समय में अलग-अलग लीला की।

और भी हुकमों ए किया, लिया रूह अल्ला का भेस।

पेहेचान दर्ई सब अर्सों की, मांहें बैठे दे आवेस॥

श्रृंगार २१/५

बसरी मलकी और हकी, ए हुकम तीन सूरत।

तिन दर्ई हैयाती दुनी को, करी सैंयन वास्ते सरत॥

बीतक ६२/१९

नाला रूहें फरिस्ते जा, धरया हक आमर।

पुंना पांहिजी निसबतें, हुकमों पुजाया उपटे दर॥११॥

शब्दार्थ- नाला-नाम, रूहें-सखियों के, फरिस्ते जा-

ईश्वरी सृष्टि के, धरया-रखे, हक-धनी की, आमर-  
आज्ञा से, पुंना-पहुँचे, पांहिजी-अपने, निसबतें-  
सम्बन्ध को, हुकमें-आज्ञा से, पुजाया-पहुँचाया,  
उपटे-खोल के, दर-दरवाजा।

**अर्थ-** श्री राज जी के हुकम ने ही ब्रह्मसृष्टियों और  
ईश्वरीसृष्टियों का इस संसार में नाम रखा है। हुकम ने ही  
इनके मूल सम्बन्ध के अनुसार इनके अखण्ड घर का  
दरवाजा खोला है और वहाँ पहुँचायेगा।

**भावार्थ-** परात्म का नाम तो हुकम (आज्ञा) स्वरूपा  
आत्मा का होता ही है, किन्तु धाम धनी तो इन  
आत्माओं के धाम हृदय में विराजमान होकर एकाकार  
(एक स्वरूप) हो गये हैं-

और इस्क मांहें रुहन, हकें अर्स कह्यो जाको दिल।

हकें दिल दे रुहों दिल लिया, यों एक हुए हिल मिल।।



ना तो हक आदमी के दिल को, अर्स कहें क्यों कर।

पर ए आसिक मासूक की वाहेदत, बिना आसिक न कोई कादर॥

श्रृंगार २०/१०९,११०

असीं उथी बेठां अर्समें, असां के हुकमें डिंनों याद।

हुकमें हुकम खेल डिखारियो, हुकमें हुकम आयो स्वाद॥१२॥

**शब्दार्थ**— असीं—हम, उथी—उठी, बेठां—बैठे, अर्समें—  
धाम में, असां के—हमको, हुकमें—आज्ञा से, डिंनों—  
दिया, याद—स्मृति, डिखारियो—दिखाया, आयो—आयी,  
स्वाद—लज्जत।

**अर्थ**— जब हम परमधाम में जाग्रत हो जायेंगी, तो धनी  
का हुक्म हमें इस खेल की याद दिलायेगा। आत्माओं ने  
श्री राज जी के हुक्म से ही उनके हुक्म का खेल देखा है।  
प्रियतम के आदेश से ही हुक्म का स्वाद भी मिला है।

**भावार्थ-** "हुक्म से हुक्म" का स्वाद मिलने का आशय यह है कि श्री राज जी के आदेश (हुक्म) से ब्रह्मवाणी का अवतरण हुआ है, जिसके द्वारा उस हुक्म की स्पष्ट पहचान हुई है जो आज दिन तक नहीं थी।

हे बारीक गाल्यूं हुक्म ज्यूं, हुक्म थेयो सभ में हक।

असीं अर्समें सिर गिनी करे, केयूं गाल्यूं बेसक॥१३॥

**शब्दार्थ-** हे-यह, बारीक-बारीक, गाल्यूं-बातें, हुक्म ज्यूं-आज्ञा की, हुक्म-आदेश, थेयो-हुआ, सभ में-सबों में, हक-धनी का, असीं-हम, अर्समें-धाम में, सिर-सिर, गिनी-ले, करे-करके, केयूं-करी, गाल्यूं-बातें, बेसक-निःसन्देह।

**अर्थ-** धनी के आदेश (हुक्म) की सूक्ष्म बातें हैं। सबमें श्री राज जी का हुक्म ही लीला कर रहा है। इसमें कोई

भी संशय नहीं है कि हम परमधाम में धनी के हुक्म से ही जाग्रत होंगे और सारी बातें भी करेंगे।

**भावार्थ-** "शिर लेकर बातें करने" का भाव है- हुक्म या धनी की इच्छा से बातें करना। परमधाम में होने वाली बातों के अन्तर्गत इश्क-रब्द एवं खेल देखने की इच्छा से सम्बन्धित सारी बातें आ जायेंगी।

**असां अर्स न छड्यो, धारा थेयासीं बेसक।**

**रूहें न आयूं रांदमें, असां चई गाल मुतलक॥१४॥**

**शब्दार्थ-** असां-हमने, अर्स-धाम को, न-नहीं, छड्यो-छोड़ा, धारा-न्यारे भी, थेयासीं-हुए, बेसक-निःसन्देह, रूहें-आत्मायें, न-नहीं, आयूं-आई, रांदमें-खेल में, चई-कहो, गाल-बात, मुतलक-साँच करके।

**अर्थ-** निश्चित रूप से हमने परमधाम को छोड़ा नहीं है और परमधाम से अलग भी हुई हैं। हम आत्मायें निश्चय ही इस खेल में आयी भी नहीं हैं, किन्तु परमधाम में इस खेल की बातें भी करेंगी।

**भावार्थ-** ब्रह्मसृष्टियों के मूल तन मूल मिलावा में ही बैठे हैं, इसलिये उनका परमधाम छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है, किन्तु उनकी सुरता (परात्म का प्रतिबिम्ब) इस खेल में अवश्य आयी है। भले ही ब्रह्मसृष्टियाँ अपने नूरी तन से नहीं आयी हैं, किन्तु उनकी सुरता (आत्मा) जीवों के ऊपर बैठकर इस खेल को देख रही है और अपने मूल तन (परात्म) में जाग्रत होने के पश्चात् इस खेल की सारी बातें करेंगी।

हे भत सभ हुकमें केई, रांद डेखारी खिलवत में घर।

गाल्यूं खिलवत ज्यूं केयूं रांदमें, जो हक दिल गुझांदर॥१५॥

**शब्दार्थ**— हे—यह, भत—तरह, सभ—सब, हुकमें—आज्ञा ने, केई—किया, डेखारी—दिखाया, खिलवत में—एकान्त में, घर—परमधाम के, गाल्यूं—बातें, खिलवत ज्यूं—एकान्त की, केयूं—करी, रांदमें—खेल में, हक—धनी के, गुझांदर—गुह्य रहस्य।

**अर्थ**— यह सारी विशेषता धनी के उस हुक्म (आदेश) की है, जिसने परमधाम के मूल मिलावा में ही सखियों को बैठाकर यह माया का खेल दिखाया है। धनी की आज्ञा से ही ब्रह्मवाणी द्वारा परमधाम की खिलवत तथा श्री राज जी के दिल की गुह्यतम (परम सत्य, मारिफत) बातें इस संसार में उजागर हो सकी हैं।

गाल्यूं सभे रांद ज्यूं, थींदयूं मय खिलवत।

थींदा खिलवत में सुख खेलजा, गिडां खेलमें सुख निसबत॥१६॥

**शब्दार्थ-** गाल्यूं-बातें, सभे-सब, रांद ज्यूं-होंगी, थींदयूं-खेल की, मय-बीच, थींदा-होगा, गिडां-लिया, निसबत-सम्बन्ध का।

**अर्थ-** परात्म में जाग्रत होने के पश्चात् मूल मिलावा में इस खेल की सभी बातें होंगी। इस प्रकार परमधाम में इस खेल का आनन्द प्राप्त होगा, जबकि इस खेल में आत्माओं ने परमधाम के मूल सम्बन्ध का सुख लिया है।

**भावार्थ-** इस जागनी लीला में सुन्दरसाथ से होने वाली भूलों की हँसी की लीला परमधाम में होगी, जो बहुत ही आनन्दकारी होगी। इसी प्रकार, ब्रह्मवाणी द्वारा सुन्दरसाथ ने परमधाम की अष्ट प्रहर की लीला तथा युगल स्वरूप के शोभा-श्रृंगार सहित २५ पक्षों का ज्ञान

भी प्राप्त कर लिया है। उन्हें निस्वत (मूल सम्बन्ध), वहदत (एकत्व), खिल्वत, इश्क आदि की मारिफत (परम सत्य) का ज्ञान भी प्राप्त है। प्रेममयी चितवनि में डूबकर परमधाम की आत्मायें अपने अनुभूत ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप से देखती हैं। इसे ही खेल में मूल सम्बन्ध का सुख लेना कहते हैं।

**असां न छड्यो अर्स के, रांदमें पण आयूं।**

**थेयो विछोडो अर्स में, रांद में पण न आयूं॥१७॥**

**शब्दार्थ-** असां-हमने, छड्यो-छोड़ा, अर्स के-धाम के, पण-भी, आयूं-आये, थेयो-हुई, विछोडो-जुदागी, अर्स में-धाम में, रांद में-खेल में, पण-भी, न-नहीं, आयूं-आये।

**अर्थ-** हमने परमधाम को छोड़ा भी नहीं और इस खेल

में भी आयीं। परमधाम में तनों के रहने पर भी वियोग हुआ और खेल में भी नहीं आयीं।

**भावार्थ**— परात्म का मूल मिलावा में विराजमान होना ही यह सिद्ध करता है कि ब्रह्मसृष्टियों ने अपने परमधाम को नहीं छोड़ा है, किन्तु सुरता (आत्मा) के रूप में खेल में आना यही दर्शाता है कि वे इस मायावी जगत् में आयी हुई हैं। यद्यपि सखियाँ परमधाम में धनी के सम्मुख बैठी अवश्य हैं, किन्तु न तो वे अपने सामने बैठे अपने प्राणवल्लभ को देख पा रही हैं और न उनसे कुछ कह या सुन ही पा रही हैं। यहाँ तक कि उनके शरीर हिल-डुल भी नहीं रहे हैं।

बैठी अंग लगाए के, ऐसी दई उलटाए।

ना कछू दिल की केहे सकों, ना पिया सब्द सुनाए॥

खिलवत १/४



का कथन यही सिद्ध करता है। ऐसी बेसुधी होने के कारण ही यह कहा गया है कि उनका परमधाम में धाम धनी से वियोग हो गया है, किन्तु गहन रहस्य यह भी है कि उस अनन्त परमधाम से एक कण भी इस नश्वर जगत् में नहीं आ सकता। इसलिये यह बात कही गयी है कि वे खेल में आयी ही नहीं हैं।

**हे भत्यूं सभ हुकमें, परी परी कारे।**

**कारण वाद इस्क जे, डिंनाऊं बए हंद डिखारे॥१८॥**

**शब्दार्थ-** हे-यह, भत्यूं-तरह, सभ-सब, हुकमें-आज्ञा से, परी-तरह, कारे-करते हो, कारण-वास्ते, वाद-प्रतिवाद, इस्क जे-प्रेम के, डिंनाऊं-दिये, बए-दोनों, हंद-ठिकाने, डिखारे-दिखाकर।

**अर्थ-** यह सारी विशिष्टता इस हुक्म की है, जो तरह-

तरह से कार्य करता है। इश्क रब्द के कारण ही धनी ने अपने आदेश से दोनों स्थानों को दिखाया है।

**भावार्थ-** श्री राज जी ने परमधाम में बैठे-बैठाये हमें यह मायावी जगत् दिखाया है तथा तारतम वाणी देकर इस संसार में ही हमें परमधाम दिखा दिया है।

**पातसाही पांहिजी, डिखारी भली पर।**

**की चुआं वडाई हकजी, मूं धणी वडो कादर॥१९॥**

**शब्दार्थ-** पातसाही-स्वामित्व, पांहिजी-अपनी, डिखारी-दिखाया, भली पर-अच्छी तरह, की-क्या, चुआं-कहूँ, वडाई-बुजरकी, हकजी-प्रियतम की, मूं-मेरे, धणी-प्रियतम, वडो-बड़े, कादर-समर्थ हैं।

**अर्थ-** मेरे प्राण प्रियतम! आपने हमें अपना स्वामित्व (अपनी साहिबी) बहुत अच्छी तरह से दिखाया है। आप

तो अनन्त सामर्थ्य वाले हैं। मैं आपकी अपार महिमा का वर्णन किस प्रकार करूँ।

**महामत चोए हे मोमिनोँ, पांण के बिहारे तरे कदम।**

**खिल्ल कंदा वडी अर्समें, जा केई हुकम इलम॥२०॥**

**शब्दार्थ-** महामत-महामति, चोए-कहते हैं, पांण के-आपन, बिहारे-बैठाया, तरे-नीचे, कदम-चरणों के, खिल्ल कंदा-हँसी करेंगे, वडी-भारी, अर्समें-परमधाम में, जा-जो, केई-किया, हुकम-आज्ञा ने, इलम-ज्ञान से।

**अर्थ-** श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी ने हमें मूल मिलावा में अपने चरणों में बैठा रखा है, और अपने हुकम तथा इल्म का खेल दिखाकर हमारी खूब हँसी कराई है। **प्रकरण ॥१२॥ चौपाई ॥५१३॥**

## हक हादी रूहों जी सिफत

श्री राजश्यामा जी तथा ब्रह्मसृष्टियों की महिमा

इस प्रकरण में श्यामा जी सहित सभी ब्रह्मसृष्टियों एवं श्री राज जी की महिमा का वर्णन किया गया है।

कांध रूह भाइयां सिफत करियां, तोहिजी हित थिए न सिफत किं केई।

से न्हारयम जडे बेवरो करे, आंऊं उरझी ते में रही॥१॥

**शब्दार्थ-** कांध-प्रियतम, भाइयां-चाहती हूँ, सिफत-बड़ाई, करियां-करूँ, तोहिजी-आपकी, हित-यहाँ, किं-कैसे ही, केई-करके, से-सो, न्हारयम-देखिए, जडे-जब, बेवरो-निरूपण, करे-करके, आंऊं-मैं, ते में-उसमें।

**अर्थ-** श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम ! मेरी आत्मा आपकी महिमा का वर्णन करना चाहती है,

किन्तु इस संसार में आपकी अनन्त महिमा का वर्णन किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। इस बात का जब मैं निरूपण करके विचार करती (देखती) हूँ, तो मैं इसमें उलझी ही रह जाती हूँ।

**हे दिल जी गाल के से करियां, रूहजी तूं जाणें।**

**कुछण भेणी लाथिए, कांध चओ से चुआं हांणें॥२॥**

**शब्दार्थ-** हे-यह, दिल जी-हृदय की, गाल-बातें, के से-किनसे, करियां-करूँ, रूहजी-आत्मा की, तूं-आप, जाणें-जानते हैं, कुछण-बोलने का, भेणी-ठिकाना, लाथिए-नहीं, कांध-धनी, चओ-कहो, चुआं-कहूँ, हांणें-अब।

**अर्थ-** हे प्रियतम! अपने दिल की इस बात को मैं किससे कहूँ? मेरी आत्मा की प्रत्येक बात को आप

जानते हैं। अब तो मेरे कहने के लिये कुछ बचा ही नहीं है। इसलिये आप ही अब जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही कहूँगी।

**उताइयां आलम में, मूं जेडी केई न कांए।**

**अजां तरसे मूं जिंदुओ, हे केही पर तोहिजी आए॥३॥**

**शब्दार्थ-** उताइयां-भेजकर, आलम में-संसार में, मूं-मुझ, जेडी-जैसी, केई-करी, न-नहीं, कांए-किसी को, अजां-अभी भी, तरसे-ललचाता है, मूं-मेरा, जिंदुओ-जीव, हे-यह, केही-कौन, पर-तरह, तोहिजी-आपकी, आए-हैं।

**अर्थ-** आपने हमें इस नश्वर संसार में भेजा और इसमें मेरी जैसी शोभा अन्य किसी को भी नहीं दी। फिर भी मेरा जीव तरस रहा है। यह आपकी कैसी लीला है?

**भावार्थ-** आत्मा अपने प्रियतम से जो आनन्द प्राप्त

करती है, उसका कुछ ही अंश जीव को प्राप्त हो पाता है। जागनी कार्य का उत्तरदायित्व बढ़ जाने पर उसके आनन्द-लाभ में और कमी आ जाती है। जीव आत्मा के सम्बन्ध से पहले जिस आनन्द को प्राप्त कर चुका होता है, उसके लिये उसका तरसना स्वाभाविक है। इस चौपाई में यही भावना प्रकट की गयी है।

**पाण जेड्यूं डिंने दातड्यूं, से डिठ्यूं मूं नजर।**

**अजां मंगाइए मूं हथां, मूं कांध एहडो कादर॥४॥**

**शब्दार्थ-** पाण-आप ही, जेड्यूं-जैसी, डिंने-दिया, दातड्यूं-दातव्य, उदारता, से-सो, डिठ्यूं-देखी, मूं-मैंने, नजर-नेत्रों से, अजां-अभी भी, मंगाइए-मँगवाते हो, मूं-मेरे, कांध-प्रियतम, एहेडो-ऐसे, कादर-समर्थ होते हुए।

**अर्थ-** मेरे प्रियतम्! आपने जिस प्रकार मेरे ऊपर कृपा की है, उसे मैंने अपनी नजरों से प्रत्यक्ष देखा है अर्थात् अनुभव किया है। आप इतने सामर्थ्यवान् (अनन्त सामर्थ्य वाले) हैं, फिर भी आप मुझे माँगने के लिये अभी भी विवश कर रहे हैं, यह आश्चर्य की बात है।

जे वड्युं केइए हिन रांद में, तिनी ज्युं केई कोडी सिफतुं कन।

से वडा मंगन खाक पेनजी, असां अर्स रूहन॥५॥

**शब्दार्थ-** जे-जो, वड्युं-बड़े, केइए-किये, हिन-इस, रांद में-खेल में (त्रिदेवा), तिनी ज्युं-तिनकी, केई-कई, कोडी-करोड़ों, सिफतुं-बड़ाई, कन-करते हैं, वडा-बड़े, मंगन-माँगते हैं, पेनजी-चरणों की, असां-हम, अर्स-धाम के, रूहन-सखियों की।

**अर्थ-** हे धनी! जिन त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) को



आपने इस संसार में बड़ा बनाया है, इस जगत के करोड़ों लोग उनकी बड़ाई करते हैं (महिमा गाते हैं)। ये त्रिदेव भी परमधाम की हम अँगनाओं की चरण-धूलि माँगते हैं।

सिरदार ते रूहन में, मूँके केइए कांध।

वडी वडाई डिनिएं, अची मय हिन रांद॥६॥

**शब्दार्थ**— ते—वह, मूँके—मुझे, केइए—किया, कांध—धनी ने, डिनिएं—दिया, अची—आकर, मय—बीच, हिन—इन, रांद—खेल के।

**अर्थ**— मेरे प्राणवल्लभ! आपने सभी आत्माओं में प्रमुख (अग्रगण्य, सरदार) बनाया है। इस प्रकार, इस खेल में आकर आपने मुझे बहुत बड़ी शोभा दी है।

हे जे वडयूं केइए हिन आलममें, हिनज्यूं सिफतूं तिनी न पुजन।

से वडा वडयूं सिफतूं करीन, पुजे न खाक मोमिन॥७॥

**शब्दार्थ-** हे जे-यह जो, वडयूं-बड़े, केइए-किये, हिन-इन, आलम में-दुनिया में, हिनज्यूं-इनकी, सिफतूं-सिफत, तिनी-तिनको, पुजन-पहुँचती है, से-सो, करीन-करते हैं, पुजे-पहुँचती, खाक-रज।

**अर्थ-** इस संसार में जिन त्रिदेवों को आपने बड़ा बनाया है, उनकी महिमा ब्रह्ममुनियों के सामने कहीं नहीं ठहरती (उन तक नहीं पहुँचती)। ये बड़े-बड़े देवता इन ब्रह्ममुनियों की महिमा तो गाते हैं, किन्तु ब्रह्मसृष्टियों की चरण धूलि तक प्राप्त नहीं कर पाते हैं (पहुँच नहीं पाते हैं)।

ते में वडी मूँके केइए, मूँजी सिफत न थिए मय रांद।

जे ए सिफत न पुजे, त सिफत तोहिजी करियां की कांध॥८॥

**शब्दार्थ-** ते में-तिनमें, केइए-किया, मूँजी-मेरी, थिए-होती, मय-बीच में, रांद-खेल के, जे-जो, ए-यह, त-तो, तोहिजी-आपकी, करियां-करूँ, की-कैसे, कांध-धनी।

**अर्थ-** इन ब्रह्मसृष्टियों के बीच में आपने मुझे सबसे बड़ी शोभा वाला बना दिया है। माया के इस खेल (संसार) में मेरी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। हे धनी! जब इस संसार में मेरी महिमा नहीं कही जा सकती, तो मैं आपकी महिमा को शब्दों में कैसे कह सकती हूँ।

**भावार्थ-** यद्यपि परमधाम की वहदत (एकदिली) में सभी समान हैं, किन्तु इस खेल में सबकी शोभा अलग-अलग है। बड़ा करने का तात्पर्य शोभा देने से है। इस

चौपाई में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि जागनी लीला में श्री महामति जी को जो शोभा मिली है, वह किसी अन्य को नहीं मिली। "नाम सिनगार सोभा सारी, मैं भेख तुमारो लियो" (किरंतन ६५/१५) का कथन यही सिद्ध करता है।

**जा न्हाए अकल हिन आलम में, सा डिनिएं मूके मत।**

**जे से आंऊं सभ समझी, कायम आलम सिफत॥९॥**

**शब्दार्थ-** जा न्हाए-जो नहीं, अकल-बुद्धि, हिन-इन, आलम में-दुनिया, मत-बुद्धि, जे से-जिससे, आंऊं-मैं, सभ-सम्पूर्ण, समझी-जानकारी हुई, कायम-अखण्ड की, आलम-संसार में।

**अर्थ-** जो निजबुद्धि इस संसार में किसी के भी पास नहीं है, वह बुद्धि आपने मुझे दी है। इस निजबुद्धि से मैंने

यह पूर्ण रूप से जान लिया है कि इस नश्वर जगत् में  
अखण्ड परमधाम की महिमा क्या है।

गाल आंजी जाणूं असीं, जे डिन्यूं असां के इलम।

कांध हित न भेंणी कुछण, गाल्यूं घरे थींदयूं खसम॥१०॥

**शब्दार्थ**— गाल—बात, आंजी—आपकी, असीं—हम, जे—  
जो, डिन्यूं—दिया, असां के—हमको, कांध—प्रियतम,  
हित—यहाँ, भेंणी—ठिकाना, कुछण—बोलने का, थींदयूं—  
होगी, खसम—पति से।

**अर्थ**— हे प्रियतम्! आपने हमें जो तारतम ज्ञान दिया है,  
उससे हमने आपकी गुह्यतम् बातों को जान लिया है। हे  
धनी! अब यहाँ बोलने के लिये कोई शब्द ही नहीं हैं।  
परमधाम पहुँचकर ही अब शेष बातें होंगी।

**भावार्थ**— एकमात्र आशिक (प्रेमी) ही अपने माशूक

(प्रेमास्पद) के दिल की गुह्यतम् बातों को जान सकता है। बिना दीदार एवं प्रेम में डूबे किसी के भी दिल की बातों को जानना सम्भव नहीं होता। श्री महामति जी का यही आशय है कि जब तारतम वाणी से धनी के दिल के गुह्य रहस्यों का बोध हो गया, तो अब कहने-सुनने के लिये क्या बाकी रह गया है। परमधाम पहुँचकर ही बात करने का भाव है— हृदय में प्रेमाधिक्य के कारण मात्र प्रियतम की ही शोभा में डूबे रहने का प्रयास करना और बातचीत में संयम बरतना (कम बातें करना)।

महामत चोए मूं धणी, मूँके वडी डेखारई रांद।

कर मूंसे मिठ्यूं गालियूं, मूंजा मिठडा मियां कांध॥११॥

शब्दार्थ— चोए—कहते हैं, धणी—प्रियतम, डेखारई—दिखाया, रांद—खेल, कर—करो, मूंसे—मुझसे, मिठ्यूं—

मधुर, गालियूं-बातें, मूंजा-मेरे, मिठडा-मिठास भरे,  
मियां-प्रियतम, कांध-धनी।

**अर्थ-** श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम! आपने मुझे यह बहुत बड़ा खेल दिखाया है। माधुर्य रस के सागर! मेरे प्रियतम! आप हमेशा ही मुझसे प्रेम भरी मीठी-मीठी बातें करते रहिए।

**प्रकरण ॥१३॥ चौपाई ॥५२४॥**

## आशिक के गुनाह

आगे के तीन प्रकरण सिन्धी के हिंदुस्तानी में किये हैं

इस प्रकरण में ब्रह्मसृष्टियों से होने वाली भूलों को दर्शाया गया है।

सुनो रूहें अर्स की, जो अपनी बीतक।

जो हमसे लटी भई, ऐसी करे न कोई मुतलक॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे परमधाम की आत्माओं! इस मायावी जगत् में आने के पश्चात् हमारे साथ जो कुछ भी घटित हुआ है, उसे सुनो। इस खेल में हम लोगों से जो भूलें (उल्टी बातें) हुई हैं, निश्चित रूप से कोई इतनी भूलें नहीं कर सकता।

**नोट—** आशिक के गुनाह, मैं खुदी की पहचान, तथा



हुक्म की पहचान की चौपाइयों का भावार्थ पूर्व में लिखा जा चुका है, इसलिये उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

**कहूं तिनका बेवरा, सुनियो कानों दोए।**

**ए देख्या मैं सहूर कर, तुम भी सहूर कीजो सोए॥२॥**

अपने द्वारा होने वाली भूलों का मैं विवरण बता रही हूँ। इसे आप अपने दोनों कानों से सुनना। मैंने गहन चिन्तन करके यही निष्कर्ष (परिणाम) निकाला है। आप भी इस पर चिन्तन अवश्य कीजिए।

**पीछे जो दिल में आवे साथ के, आपन करेंगे सोए।**

**भूली रोवे तेहेकीक, गए हाथ पटकते रोए॥३॥**

हे साथ जी! बाद में आपके दिल में जो भी आएगा ,

उसके अनुसार ही हम सभी करेंगी। भूल करने वाले को तो निश्चित ही पश्चाताप करते हुए रोना पड़ता है।

तिस वास्ते क्यों भूलिए, हाथ आए अवसर।

जो पीछे जाए पछतावना, क्यों आगे देख न चलें नजर॥४॥

इसलिये हाथ में आये हुए सुनहरे अवसर के समय हमें किसी प्रकार की भूल नहीं करनी चाहिए। पहले से ही हम सावधान होकर क्यों न चलें, जिससे बाद में पछताना न पड़े।

अपनी गिरो आसिक, कहावत हैं मिने इन।

चलना देख के केहेत हों, ए अकल दई तुमें किन॥५॥

इस संसार में हम ब्रह्मसृष्टियाँ धनी की आशिक कहलाती हैं, किन्तु जब मैं अपनी करनी की ओर देखती

हूँ तो मन में यही विचार आता है (कहना पड़ता है) कि स्वयं को आशिक कहलाने की शोभा लेने की बुद्धि तुम्हें किसने दी है, अर्थात् तुम्हें आशिक (धनी के प्रेम में डूबी रहने वाली) कहलाने का कोई भी अधिकार नहीं है।

**लेनी हकीकत हक की, और देनी इन लोकन।**

**आसिक को ए उलटी, जो करत हैं आपन॥६॥**

अक्षरातीत की प्रेम से सम्बन्धित गुह्यतम बातों को संसारिक जीवों से कहने का काम जो हम आत्मायें कर रही हैं, निश्चित रूप से आशिक कहलाने वालों के लिये उल्टा काम है अर्थात् हम उल्टे कामों में लगी हुई हैं।

**मीठा गुझ मासूक का, काहूँ आसिक कहे न कोए।**

**पड़ोसी पण ना सुनें, यों आसिक छिपी रोए॥७॥**

माशूक श्री राज जी की गुह्यतम बातों को आशिक आत्मायें कभी भी किसी से नहीं कहतीं। वे तो अपने प्रियतम के प्रेम में इस प्रकार छिपकर रोती हैं कि पड़ोसी (अपने निकटस्थ सम्बन्धी) को भी जरा सा भी पता नहीं चल पाता (सुनायी नहीं पड़ता)।

**आसिक कहिए तिन को, जो हक पर होए कुरबान।**

**सौ भातें मासूक के, सुख गुझ लेवे सुभान॥८॥**

यथार्थ में वही आत्मा आशिक है, जो अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देवे और अपने प्रियतम के गुह्यतम सुखों का सैकड़ों प्रकार से (अनेक प्रकार से) रसपान करे।

जो पड़े कसाला कोटक, पर कहे न किनको दुख।

किसी सों ना बोलहीं, छिपावे हक के सुख॥९॥

ऐसी आशिक आत्मा पर यदि माया के करोड़ों कष्ट आ जायें, तो भी वह किसी से कुछ भी नहीं कहती। इसी प्रकार यदि उसे धनी के अखण्ड सुख भी प्राप्त होते हैं, तो उन्हें भी वह किसी से नहीं कहती।

गुझ सुख लेवे हक के, रहे सोहोबत मोमिन।

अपना गुझ मासूक का, कबूं कहें न आगे किन॥१०॥

यद्यपि वह अन्य आत्माओं के बीच रहकर ही अपने प्राणप्रियतम के गुह्य सुखों का रसास्वादन करती है, किन्तु अपने धनी के गुह्यतम सुखों को कभी भी अन्य किसी आत्मा से नहीं कहती।

तिन आगे भी ना कहे, जो हक के खबरदार।

पर कहा कहूं मैं तिनको, जो बाहेर करें पुकार॥११॥

श्री राज जी का आत्मिक सुख प्राप्त करने वाली ये अँगनायें उनको भी अपनी बातें नहीं बतातीं, जो स्वयं भी प्रियतम का सुख प्राप्त करने वाली हैं। किन्तु जो बाहर जाकर अर्थात् ईश्वरीसृष्टि या जीवों से अपने आत्मिक सुख की बातें बताती हैं, उनकी नासमझी (नादानी) को मैं क्या कहूँ।

हक बोलावें सरत पर, आपन रहेने चाहें इत।

लेवें गुझ मासूक का, कहें दुनियां को हकीकत॥१२॥

प्रियतम अक्षरातीत हमें परमधाम बुला रहे हैं, किन्तु हम इस झूठे संसार में ही रहना चाहते हैं। धनी के गुह्य सुखों का अनुभव करके संसार वालों के सामने उसका ढोल

पीटा करते हैं (सब कुछ बताया करते हैं)।

ऐसी आसिक कबूं ना करे, पीछे रहे बुलावते हक।

दुख कुफर में पड़ के, सुख बका छोड़े इस्क॥१३॥

धनी की आशिक आत्मा ऐसा कभी कर ही नहीं सकती कि प्रियतम बुलायें (दीदार देना चाहें) और वह न जाये, अर्थात् प्रेम में डूबकर उनकी शोभा में अपना ध्यान केन्द्रित न करे। वह परमधाम के प्रेम के अखण्ड सुखों को छोड़कर इस दुःखमयी संसार की झंझटों में फँसी नहीं रह सकती।

प्यारा जिनको मासूक, तिनके प्यारे लगें वचन।

सो कबूं न केहेवे और को, मासूक प्यारा जिन॥१४॥

जिस आत्मा को अपने धाम धनी से प्रेम होता है, उसे

धनी के वचन अत्यन्त प्यारे लगते हैं। जिसको श्री राज जी प्यारे होते हैं, वह उनकी बातों को दूसरे संसारी लोगों से क्यों कहेगी।

आसिक कबू ना करे, ऐसी उलटी बात।

केहेने सुख लोकन को, पाए विछोहा हक जात॥१५॥

इस प्रकार की भूल (उल्टी बात) धनी के प्रेम में डूबी हुई ब्रह्माङ्गना कभी कर ही नहीं सकती कि अपने प्रियतम से अलग होने पर उनकी गुह्य बातों को संसार के मायावी लोगों से कहती फिरे।

आसिक गुझ मासूक का, सो लेवत है रोए रोए।

ऐसी उलटी अकल आसिक की, सुख कहे औरों को सोए॥१६॥

आत्मायें अपने प्रियतम के सुखों को विरह में रो-रोकर



लेती हैं। आशिक कहलाने वाले हम सुन्दरसाथ की बुद्धि ऐसी भ्रमित (उल्टी) हो गयी है कि हम दूसरों (संसार के जीवों) के सामने अपने धनी की गुह्यतम बातें कहा करते हैं।

ए निपट बातें रिजालियां, सो आपन करी दिल धर।

जैसी हुई हमसे खेलमें, तैसी हुई किनके सिर॥१७॥

निश्चित रूप से इस प्रकार की ये निर्लज्जता भरी बातें हैं, जिन्हें हमने अपने पूरे मन से किया है। इस संसार में हमसे जिस प्रकार की भूल हुई है, इस प्रकार की भूल आज दिन तक किसी ने भी नहीं की है।

आसिक कहावे आपको, फेरे बोलावना भरतार।

जाए न बोलाई खसम की, सो औरत बे-एतबार॥१८॥

यदि कोई आत्मा स्वयं को धनी की सच्ची आशिक (प्रेमी) कहती है, किन्तु प्रियतम द्वारा दर्शन देने के लिये अपनी ओर प्रेरित किये जाने (बुलाये जाने) पर भी जो धनी के पास नहीं जाती, प्रेम की राह पर नहीं चल पाती, उसे निश्चित रूप से विश्वास के योग्य नहीं समझा जा सकता।

**गुझ मासूक का आसिक, सो केहेना न कासों होए।**

**जो कई पड़ें कसाले, तो बाहेर माहें रोए॥१९॥**

श्री राज जी के अखण्ड प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा कभी भी अपने प्रियतम की गुह्य बातों को किसी से नहीं कहती। यदि उसके ऊपर माया के करोड़ों कष्ट भी आ जायें, तो भी इन बाह्य दुःखों से वह विचलित नहीं होती और धनी के विरह में अन्दर ही अन्दर रोती रहती है।

एक तो गुझ जाहेर किया, और गैयां न बोलावते सोए।

ऐसी एक भी कोई ना करे, सो आपन करी दोए॥२०॥

एक तो हमने अपने प्राणवल्लभ की गुह्यतम बातों को संसार में प्रकट कर दिया, और दूसरा उनके बुलाने पर भी नहीं गयीं अर्थात् तारतम वाणी को समझकर भी अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को न बसा सकी। इस प्रकार की इन दोनों भूलों में से किसी एक को भी संसार में कोई नहीं करता, जबकि हमने इन दोनों भूलों को साथ-साथ किया है।

रुहों को ऐसी न चाहिए, अर्स की कहावें हम।

सहूर करके देखिया, तो हम किया बड़ा जुलम॥२१॥

हम परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ कही जाती हैं, इसलिए हमसे इतनी बड़ी भूल नहीं होनी चाहिए। जब मैंने विचार

करके देखा तो यह स्पष्ट हो गया कि हमसे तो बहुत बड़ा अपराध हो गया है।

हम कहें झूठी दुनियां, तिनमें ऐसी करे न कोए।

जो उलटी हम सांचों से भई, ऐसी झूठों से न होए॥२२॥

हम सभी ब्रह्मात्मायें कहा करती हैं कि यह संसार झूठा है, किन्तु इस झूठे संसार में भी किसी ने ऐसी मूर्खता भरी उल्टी भूल नहीं की है जैसी हम सच्ची आत्माओं ने की है।

मैं देख तकसीर अपनी, पेहेले देख डरी एक बार।

देख डरी सामी हक, तब मैं किया पुकार॥२३॥

हे प्रियतम! जब मैंने अपने इन अपराधों (गुनाहों) को देखा तो एक बार मैं बहुत डर गयी। भय के मारे मैं

प्रियतम की ओर देखकर करुण पुकार करने लगी।

मैं देखे गुनाह अपने, हक के देखे एहसान।

उमर गई पुकारते, बीच हलाकी जहान॥२४॥

मैंने अपने अपराधों (दोषों) को देखा और धनी के उपकारों (एहसानों) को देखा। इस दुःखदायी संसार में पुकार करते-करते मेरी उम्र बीत गयी, अर्थात् इस पञ्चभौतिक शरीर की उम्र का अधिकांश भाग व्यतीत हो गया।

कबहूँ किनहूँ ना किए, ऐसे काम अधम।

देख गुनाह अपने, फेर किए जुलम॥२५॥

इस नश्वर जगत् में आज दिन तक किसी ने भी इस प्रकार का नीच कार्य नहीं किया है। मेरी समझ में नहीं

आ रहा है कि अपने दोषों को देखकर भी मैं बारम्बार क्यों अपराध (गुनाह) करती रही।

स्यानी जोरु क्यों करे, जान के गुनाह ए।

खावंद जाने त्यों करे, हुआ बस हुक्म के॥२६॥

विवेक रखने वाली स्त्री अपनी आँखों से अपने दोषों को देखकर पुनः गलती नहीं करती। वह अपने प्रियतम के हुक्म से बँधी होती है, इसलिये उसके धनी की जो इच्छा होती है, उसके अनुसार ही वह सब कुछ करती है।

जो फेर देखें आपन, तो ए हुई हाथ धनी।

और किसीका ना चले, कोई करे स्यानप घनी॥२७॥

यदि हम पुनः सोच-विचार कर देखें तो यही स्पष्ट होता है कि ये सभी बातें धाम धनी के आदेश के अनुसार ही

होती हैं। इस संसार में उनके हुक्म के अतिरिक्त अन्य किसी का कुछ भी नहीं चलता, भले ही कोई कितनी भी चतुराई क्यों न कर ले।

मैं देख्या इलम हक का, तो ए सब हुकम के ख्याल।

और ना कोई कहूं, बिना हुकम नूरजमाल॥२८॥

जब धाम धनी की तारतम वाणी से विचार किया (देखा) तो यही निष्कर्ष निकला कि यह सारा खेल श्री राज जी के ही आदेश से हुआ है। श्री राज जी के हुक्म के अतिरिक्त, कहीं भी, अन्य किसी का कोई भी अस्तित्व नहीं है।

ए गुनाह देखे अपने, जब देख्या दिल धर।

ए भी गुनाह खुदीय का, जब फेर देख्या सहूर कर॥२९॥

जब मैंने अपने दिल में विचार किया, तो मुझे अपने दोषों का अनुभव हुआ। जब मैंने पुनः गहन विचार (चिन्तन) करके देखा, तो यह पाया कि अपराध तो मेरे अहंकार का है।

गुन्हे भी अपने तब देखे, जब मैं हुई हुसियार।

देखी हुसियारी ए भी खुदी, डरी हुई खबरदार॥३०॥

जब मैं सावचेत हुई, तभी मैंने अपने अपराधों को देखा। इस प्रकार अपने अन्दर सावचेती का अनुभव भी एक प्रकार की मैं (अहम्) ही है। इस प्रकार अपने अहंकार से होने वाले गुनाहों को देखकर मैं डर गयी।

गुन्हे किए अजान में, गुन्हें देखे सो भी अजान।

दम न ले बीच हुकमें, जब हकें पूरी दर्ई पेहेचान॥३१॥



मुझसे जो भी अपराध हुए हैं, वे सभी अनजानेपन में हुए हैं। अपराधों का बोध भी अनजानेपन में ही हुआ है। अब धाम धनी ने अपनी मेहर से मुझे अपनी सारी पहचान दे दी है, जिससे मुझे यह विदित हो गया है कि इस संसार में धनी के हुक्म के बिना कुछ भी नहीं होता है।

**पेहेचान लई सो भी खुदी, मैं न्यारी हुई तिनसे।**

**न्यारी होत सो भी खुदी, ए खुदी निकलत नाहीं मैं॥३२॥**

पहचान होने के पश्चात् भी "मैं" की भावना रहती है, इसलिये मैंने उससे अलग होने का निर्णय लिया। किन्तु यदि मैं इस "मैं" खुदी से अलग हो जाती हूँ, तो भी अलग हो जाने की "मैं" बनी रहती है। इस प्रकार, इस संसार में किसी भी प्रकार से "मैं" नहीं निकल पाती है।

महामत कहे ए मोमिनोँ, कोई नाहीं हक बिगर।

लाख बेर मैं देखिया, फेर फेर सहूर कर॥३३॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! मैंने पुनः पुनः लाखों बार गहन चिन्तन करके यही निर्णय किया है कि श्री राज जी के बिना कहीं भी कोई नहीं है, अर्थात् सब कुछ उन्हीं की छत्रछाया में है।

प्रकरण ॥१४॥ चौपाई ॥५५७॥

## मैं खुदी की पेहेचान

मैं लाखों विध देखिया, कहूं खुदी क्यों न जाए।

ए क्यों जावे पेड़से, जो दूजी हकें दर्ई देखाए॥१॥

मैंने लाखों प्रकार से देखा, किन्तु यह "मैं" (खुदी) किसी भी प्रकार से निकलती नहीं है। भला यह मूल से कैसे निकल सकती है, जब स्वयं धाम धनी ने ही इसे दूसरे स्वरूप (आत्मा, प्रतिबिम्बित रूप) में दिखाया है।

जो मैं मांगों इस्क को, तो इत भी आप देखाए।

ए भी खुदी देखी, जब इलमें दर्ई समझाए॥२॥

यदि मैं आपसे प्रेम माँगती हूँ, तो इसमें भी मैं स्वयं को ही देखती हूँ। जब तारतम ज्ञान से धनी की पहचान हो जाती है, तो इसमें भी "मैं" दिखायी पड़ती है।

हक पेहेचान किनको हुई, इत दूसरा कौन केहेलाए।

ऐसी काढी बारीकी खुदियां, हक भी पेहेचान कराए॥३॥

जब तारतम वाणी से श्री राज जी की पहचान होती है, तो किसे होती है? हक की "मैं" के अतिरिक्त यहाँ और दूसरा कौन है जो धनी की पहचान कर सकें? धाम धनी के अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, जो मैं खुदी की सूक्ष्म बातों को निकाले (प्रकट करे)।

तन तो अपने अर्स में, सो तो सोए नींद में।

जागत हैं एक खावंद, ए नींद दर्ई जिनने॥४॥

परमधाम में हमारे मूल तन (परात्म के तन) नींद (फरामोशी) में बेसुध हैं। एकमात्र श्री राज जी ही जाग्रत हैं, जिन्होंने हमें यह नींद दी है।

दे कर नींद रूहन को, खेल देखावत नजर।

तो ए खेल कौन देखत, कोई है बिना हुकम कादर॥५॥

प्रियतम! अक्षरातीत ने अपनी अँगनाओं को माया की नींद देकर (हुकम रूपी सुरता की) नजरों से यह खेल दिखाया है। वस्तुतः इस खेल को कौन देख रहा है? क्या इस खेल को दिखाने में धनी के हुकम के बिना और भी है, अर्थात् नहीं है।

आपन सोए हैं अर्समें, तले हक कदम।

ए जो खेल खेलावे खेलमें, कोई है बिना हक हुकम॥६॥

हम ब्रह्मसृष्टियाँ तो परमधाम में धनी के चरणों में ही सो रही हैं। क्या श्री राज जी के हुकम (आदेश) के बिना कोई और भी समर्थ है, जो हमें इस मायावी जगत में खेल खेला सके?

इत हुकम एक हक का, और हकै का इलम।

हुकम इलम या खेल को, देखो सोइयां तले कदम॥७॥

इस संसार में धाम धनी का हुकम (आदेश) है और उन्हीं का इल्म (तारतम ज्ञान) है। हम तो धनी के चरणों में बैठी हुई हैं, तथा हुकम और इल्म के इस खेल को देख रही हैं।

कहे इलम तुमहीं पट, तुमहीं कुंजी पट की।

कुल्ल अकल दई तुम को, देखो उलटी या सीधी॥८॥

तारतम ज्ञान कहता है कि हे आत्माओं! तुम ही पर्दा हो और तुम्हीं पर्दे को हटाने की कुञ्जी भी हो। मैंने तुम्हें निजबुद्धि दे दी है। अब यह तुम्हारे ऊपर है कि तुम उल्टी दिशा में देखो या सीधी दिशा में देखो।

बीच खेल और खावंद, पट तुमारा वजूद।

पीठ दे हक को ए देखत, जो ना कछु है नाबूद॥९॥

धाम धनी और इस खेल के बीच में मात्र तन का ही पर्दा है। हम सभी आत्मायें धनी को पीठ देकर इस नश्वर ब्रह्माण्ड को देख रही हैं, जो कुछ है ही नहीं (लय हो जाने वाला है)।

ए खेल हुकम इल्म का, हमें नींदमें देखावत।

करने हांसी अर्स में, खेल में भुलावत॥१०॥

माया की नींद में हमें यह खेल दिखाया जा रहा है जो हुकम और इल्म का है, अर्थात् धनी के हुकम और तारतम ज्ञान द्वारा इस जागनी लीला का संचालन हो रहा है। इस खेल में हम धनी के आदेश (हुकम) से स्वयं को, श्री राज जी को, एवं निज घर को इसलिये भूल गये

हैं, ताकि परमधाम में हमारी हँसी हो सके।

इत दूसरा कोई कहूँ नहीं, सब देख्या हुकम इलम।

जो ए उड़े नाबूद हुकमें, तो देखो बैठे आगे खसम॥११॥

हे प्रियतम! इस खेल में सर्वत्र हुक्म तथा इल्म की ही लीला दिखायी दे रही है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी यहाँ पर कहीं भी नहीं है। यदि आपके आदेश से यह नश्वर ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाये, तो हम सभी आपके चरणों में मूल मिलावा में बैठी हुई दिखेंगी अर्थात् हमारी सुरतायें मूल मिलावा में पहुँच जायेंगी।

हकें द्वार दिया हाथ अपने, और दर्ई इलम पूरी पेहेचान।

तो क्यों सहें आड़ा पट, क्यों न खोलें द्वार सुभान॥१२॥

एक, आपने अपनी मेहर से हमारे हाथ में परमधाम का



दरवाजा दे दिया है, दूसरा, अपनी पहचान देने के लिये तारतम वाणी का ज्ञान भी दिया है। अब मैं अपने और आपके बीच में इस माया के पर्दे को कैसे सहन कर सकती हूँ? मैं अपने परमधाम के द्वार को क्यों न खोल दूँ?

**जो पट खोलों हुकम बिना, लगत खुदी गुन्हे डर।**

**ना तो हाथ कुंजी दर्ई आसिक के, हक बिछोहा सहें क्यों कर॥१३॥**

हे धनी! यदि मैं आपके हुक्म के बिना ही माया के पर्दे को हटा देती हूँ, तो मुझे "मैं" खुदी का दोष लगने का डर है, अन्यथा हम आत्माओं (आशिकों) के हाथ में आपने जो तारतम वाणी रूपी कुंजी दे रखी है, उसे पाकर हम आपका वियोग कैसे सहन कर सकती हैं?

जो होए मुझपे इस्क, तो देखों न खुदी हुकम।

एक नाहीं मोपे इस्क, तो आड़ा देखों हुकम इलम॥१४॥

यदि मेरे पास प्रेम होता, तो मैं "हुक्म" और "मैं" (खुदी) की ओर नहीं देखती अर्थात् मैं धनी के आदेश और "मैं" का दोष लगने की जरा भी परवाह नहीं करती। इस संसार में मेरे पास प्रेम (इश्क) ही नहीं है, इसलिये माया के पर्दे को हटाने की राह में हुक्म और इल्म रोड़ा (बाधा) बनकर खड़े हैं।

न तो द्वार खोल के, आगे देखें न अर्स रहेमान।

इत क्यों देखों राह हुकम की, हकें दर्ई कुंजी पेहेचान॥१५॥

अन्यथा परमधाम का दरवाजा खोलकर मेहर के सागर अपने प्राणवल्लभ का हम दीदार क्यों नहीं कर लेती? जब श्री राज जी ने तारतम वाणी से अपनी पहचान करा दी

है, तो हम हुक्म की राह क्यों देखें (प्रतीक्षा क्यों करें)?

गोते न खांऊं बिना जल, जो आवे इस्क।

तो हुक्म खुदी ना कछू गुना, पट दम न रखे बेसक॥१६॥

यदि मेरे पास धनी का प्रेम (इश्क) आ जाता, तो मैं बिना जल वाले इस भवसागर में गोते क्यों खाती अर्थात् डूबती-उतराती क्यों रहती (भटकती क्यों रहती)? इश्क आ जाने पर तो मेरे और धनी के बीच में एक पल के लिये भी माया का पर्दा नहीं रहता और हुक्म के कारण मेरे ऊपर "मैं" (खुदी) का दोष (गुनाह) भी नहीं लगता।

इस्क मांगूं तो भी गुना, और खुदी ए भी गुनाह होए।

जो देखों हुक्म इलम को, मोहे बांध लई बिध दोए॥१७॥

यदि मैं धनी से इश्क माँगती हूँ तो दोष लगता है और यदि मैं अपने अस्तित्व (मैं) का भाव रखती हूँ तो भी अपराध (गुनाह) होता है। जब मैं हुक्म और इल्म की ओर देखती हूँ, तो मैं स्वयं को दोनों ओर से बँधी हुई पाती हूँ।

ए देखो सहूर खुदी माँगना, ए दोऊ तले हुकम।

तो खोल दरवाजा अपना, क्यों न मिलों अपने खसम॥१८॥

जब मैं गहन चिन्तन करके देखती हूँ, तो यह स्पष्ट होता है कि "मैं" (खुदी) का भाव लेना और माँगना दोनों ही धनी के आदेश से होता है। ऐसी स्थिति में, परमधाम का दरवाजा खोलकर मैं अपने प्राणवल्लभ से क्यों न मिल लूँ?

खुदी गुना सब हुकमें, मांगूं बोलूं सब हुकम।

पट खोलूं या जो करूं, सब हुकम कहे इलम॥१९॥

हे धनी! आपकी तारतम वाणी यही कहती है कि "मैं" (खुदी) का अपराध (गुनाह) भी आपके आदेश से ही होता है। मेरा माँगना या बोलना भी आपके हुकम से बँधा हुआ है। मैं माया का पर्दा हटाऊँ या कुछ भी करूँ, सबमें आपके हुकम की ही लीला है।

इत खुदी न गुनाह किन सिर, या ढांप खोल तेरे हाथ।

देख खावंद या खेल को, हुकम इलम तेरे साथ॥२०॥

अन्ततोगत्वा, हे मेरी आत्मा! धनी का तारतम ज्ञान यही कहता है कि यहाँ पर "मैं" (खुदी) के गुनाह का दोष किसी के भी शिर पर नहीं है, चाहे तुम परमधाम का दरवाजा खोलो या बन्द करो, प्रियतम की ओर देखो या

खेल की ओर देखो।

सब मोमिनों को सौंपिया, कहा मोमिन दिल अर्स।

देख आप दिल विचार के, दिल मोमिन अरस-परस॥२१॥

ब्रह्मसृष्टियों का हृदय ही धनी का धाम होता है। उनके धाम हृदय में श्री राज जी ने अपनी सम्पूर्ण निधियाँ (प्रेम, ज्ञान, जोश आदि) दे रखी हैं। हे साथ जी! अब आप अपने धाम हृदय में देखिए। वस्तुतः आपका दिल और धनी का दिल आपस में (एक दूसरे में) ओत-प्रोत हैं।

दिल मोमिन का अर्स है, जो देखे अर्स मोमिन।

हक चाहें बैठाया अर्स में, तो तेरे आगे ही नहीं ए तन॥२२॥

ब्रह्ममुनियों का हृदय ही धाम होता है, इसलिये वे ही

परमधाम को देखती हैं। जब प्रियतम अक्षरातीत आत्माओं को परमधाम में बुलाते हैं (दर्शन कराते हैं), तो उनकी (आत्माओं की) दृष्टि से ये शरीर पहले ही ओझल हो जाते हैं (हट जाते हैं)।

**महामत कहे ए मोमिनो, हकें हांसी करी पूरन।**

**देख खावंद या खेल को, ए कुंजी तेरा दिल मोमिन॥२३॥**

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी ने हमारे साथ बहुत हँसी की है। अब यह आपके ही ऊपर निर्भर करता है कि आप अपने प्रियतम को देखें या इस मायावी खेल को देखें। वैसे तो वे आपके धाम हृदय में ही विराजमान हैं और आपका हृदय ही धनी की सभी निधियों की कुञ्जी है।

विशेष— ब्रह्मसृष्टियों के दिल को कुञ्जी कहा गया है,

क्योंकि उनको धनी की सभी निधियों (खिल्वत, निस्बत, वहदत आदि) का स्वाद इसी से प्राप्त होता है। परमधाम के अखण्ड सुख रूपी खजाने की कुञ्जी आत्माओं का धाम हृदय ही है।

प्रकरण ॥१५॥ चौपाई ॥५८०॥



## हुकम की पहचान

श्री राज जी के आदेश की पहचान

ताला द्वार न कुंजी खोलना, समझाए दई सबों आप।

दिल अपने में हक बसैं, ज्यों जाने त्यों कर मिलाप॥१॥

श्री महामति जी की आत्मा कहती हैं कि हे धाम धनी! आपने तारतम वाणी के प्रकाश में सब कुछ समझा दिया है और अब तो मेरे धाम हृदय में साक्षात् आकर विराजमान हो गये हैं। ऐसी स्थिति में न तो मुझे किसी ताले या कुंजी के बारे में सोचना है और न दरवाजा खोलने के विषय में सोचना है। अब आप जिस तरह से भी चाहे, उस तरह से मिलिए।

सेहेरग से नजीक, आड़ा पट न द्वार।

खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार॥२॥

हे प्रियतम! आप मेरे धाम हृदय में मेरी प्राणनली (शाहरग) से भी अधिक निकट हैं, इसलिये अब मेरे और आपके बीच में किसी भी प्रकार का पर्दा नहीं है। ऐसी स्थिति में तो अब मुझे इश्क का द्वार भी ढूँढने की आवश्यकता नहीं रह गयी है। आपने मेरी ज्ञान दृष्टि को तो खोल दिया है, किन्तु इश्क नहीं होने से मैं आपको देखते हुए भी नहीं देख पा रही हूँ।

हुकम इलम खेल एकै, और कोई न कहूं दम।

इत रूह न कोई रूहन की, जो कछू होए सो हुकम॥३॥

यह खेल हुकम और इल्म का है। दूसरा कहीं भी कोई नहीं है। यहाँ परात्म का दिल (रूह की रूह) भी नहीं है।

यहाँ पर जो कुछ हुआ है, सब हुक्म से ही हुआ है।

अपनी सुरतें हुक्म, खेलावत हुक्म।

खेलत सामी हुकमें, ए देखावत तले कदम॥४॥

हमारी सुरता हुक्म से है। धनी का हुक्म ही इस खेल को दिखा रहा है। अपने चरणों में बिठाकर धनी ने हमें जिस खेल को दिखाया है, उसके अग्रगण्य (त्रिदेव) भी हुक्म से ही खेल रहे हैं।

अरवाहें जो कोई अर्स की, सो सब हक आमर।

हम हुज्रत लई सिर अर्स की, बैठी आगूं हक नजर॥५॥

परमधाम की हम जो भी आत्मायें हैं, सभी श्री राज जी के हुक्म से हैं। यद्यपि हमने परमधाम के नामों का दावा ले रखा है, किन्तु परमधाम के मूल मिलावा में हम अपने

मूल तन से धनी के सम्मुख बैठी हुई हैं।

अरवा हमारी आर, गुन अंग इंद्रि आर।

हम देखें सब आर, खेल देखावत पट कर॥६॥

हमारी आत्मा हुक्म की है तथा गुण-अंग-इन्द्रियाँ भी हुक्म की हैं। इस संसार में मैं जो कुछ भी देख रही हूँ, सभी कुछ हुक्म है। धनी का हुक्म ही नींद (फरामोशी) का पर्दा डालकर यह माया का खेल दिखा रहा है।

जो इत अरवा होए अर्स की, तो उड़ावे चौदे तबक।

रुहें नाम धराए हम, ऐसा हुकमें कर दिया हक॥७॥

यदि परमधाम की आत्मायें यहाँ आ जायें, तो चौदह लोक का यह ब्रह्माण्ड समाप्त हो जायेगा। इस संसार में हुक्म ने ही हम आत्माओं का नाम रखा है। यह सब कुछ

श्री राज जी के हुक्म ने ही किया है।

झूठ न आवे अर्स में, सांच नजरों रहे न झूठ।

देख्या अंतर मांहे बाहेर, कछू जरा न हुकमें छूट॥८॥

अखण्ड परमधाम में झूठ का प्रवेश नहीं है। ब्रह्मसृष्टियों की नूरी नजरों के सामने पल भर के लिये भी यह झूठा ब्रह्माण्ड नहीं रह सकता। मैंने इस पिण्ड (शरीर), ब्रह्माण्ड, और उससे परे परमधाम में भी देखा, किन्तु धनी के हुक्म से रहित कुछ भी नहीं मिला।

देख्या देखाया हुकमें, और हम भी भए हुकम।

ना हुआ ना है ना होणा, बिना हुकम खसम॥९॥

सुरता के स्वरूप में हुक्म ने ही खेल को देखा है और हुक्म ने ही दिखाया है। हमारा स्वरूप भी हुक्म (आदेश)

का स्वरूप है। श्री राज जी के आदेश (हुक्म) के बिना न तो पहले कुछ था, न वर्तमान में है, और न ही भविष्य में होगा।

**हुकमें देखाया हुकम को, तिन हुकमें देख्या हुकम।**

**भिस्त दोजख उन हुकमें, आखिर सुख सब दम॥१०॥**

धनी की आज्ञा (आदेश) ने हुक्म स्वरूपा आत्माओं को माया का यह खेल दिखाया है। धनी के हुक्म से ही आत्माओं ने इस हुक्म (आदेश) स्वरूप ब्रह्माण्ड को देखा है। संसार के सभी प्राणियों को न्याय (आखिरत) के दिन हुक्म से ही बहिश्तों का सुख प्राप्त होगा और दोजक में प्रायश्चित की अग्नि में जलना पड़ेगा।

जिन नाम धराया हुकमें, रूहें फरिस्ते सिर पर।

पोहोंचे अपनी निसबतें, द्वार बका खोल कर॥११॥

श्री राज जी के हुक्म ने ही ब्रह्मसृष्टियों और ईश्वरीय सृष्टियों का इस संसार में नाम रखा है। हुक्म ने ही इनके मूल सम्बन्ध के अनुसार इनके अखण्ड घर का दरवाजा खोला है और वहाँ पहुँचायेगा।

हम उठ बैठे अर्स में, हमको हुकमें दिया सब याद।

हुकमें हुकम खेल देखाया, सो हुकमें हुकम आया स्वाद॥१२॥

जब हम परमधाम में अपने मूल तनों में जाग्रत हो जायेंगी (उठ जायेंगी), तब धनी का हुक्म इस खेल की सारी याद दिलायेगा। हम आत्माओं ने श्री राज जी के हुक्म से ही उनके हुक्म का खेल देखा है। प्रियतम के आदेश से ही हमें हुक्म का स्वाद भी मिला है।

यों मिहीं बातें कई हुकम की, हुआ हुकम सबमें एक।

अर्स में हम सिर ले उठे, सब सिर ले कहे विवेक॥१३॥

श्री राज जी के आदेश की ये अनेक सूक्ष्म बातें हैं। सबमें श्री राज जी का हुकम ही लीला कर रहा है। इसमें कोई भी संशय नहीं है कि हम परमधाम में धनी के हुकम से जाग्रत होंगे और सारी बातें भी करेंगे।

हम जुदे न हुए अर्स से, और जुदे हुए बेसक।

हम रुहें खेल देख्या नहीं, और खेल की बातें करी मुतलक॥१४॥

निश्चित रूप से हमने परमधाम को छोड़ा नहीं है और परमधाम से अलग भी हुई हैं। हम आत्माओं ने निश्चय ही इस खेल को अपनी नूरी नजरों से नहीं देखा है, किन्तु परमधाम में इस खेल की सारी बातें भी करेंगी।



इन विध सब हुकमें कर, खेल देखाया खिलवत अंदर।

बातें खिलवत की करीं खेल में, जो गुझ हक के दिल भीतर॥१५॥

इस प्रकार, श्री राज जी के हुक्म ने हमें मूल मिलावा में बैठे-बैठे ही यह सारा खेल दिखाया है। इस संसार में हम धनी के हुक्म से ब्रह्मवाणी द्वारा मूल मिलावा और धनी के दिल की गुह्यतम बातों की चर्चा कर रहे हैं।

और खेल की बातें सब, होसी बीच खिलवत।

लेसी खेलका सुख खिलवत में, लिया खेलमें सुख निसबत॥१६॥

परमधाम में जाग्रत होने के पश्चात् मूल मिलावा में इस खेल की सभी बातें होंगी। इस प्रकार परमधाम में इस खेल का आनन्द प्राप्त होगा, जबकि इस खेल में हमने परमधाम के मूल सम्बन्ध का सुख लिया है।

छोड़या नहीं अर्स को, और खेलमें भी गैयां।

अन्तराए भी हुई अर्स से, और जुदियां भी न भैयां॥१७॥

हमने परमधाम को छोड़ा भी नहीं है और माया के खेल में आये भी हैं। परमधाम में धनी के सम्मुख ही हमारे तन भी उपस्थित हैं, फिर भी वियोग हुआ है।

ए विध सब हुकम की, हुकमें किए बनाए।

वास्ते इस्क रब्द के, दोऊ ठौर दिए देखाए॥१८॥

यह सारी विशिष्टता इस हुक्म की है, जो तरह-तरह से लीला कर रहा है। इस्क रब्द के कारण ही धाम धनी ने हमें दोनों स्थानों को दिखाया है, अर्थात् परमधाम में बैठे-बैठे हमें इस संसार को दिखाया है तथा इस मायावी जगत् में तारतम ज्ञान देकर परमधाम को भी दिखा दिया है।

और साहेबी अपनी, देखाई नीके कर।

क्यों कहूं बड़ाई हक की, मेरा खसम बड़ा कादर॥१९॥

प्रियतम अक्षरातीत ने हमें अपना स्वामित्व (साहिबी) बहुत अच्छी तरह से दिखाया है। मेरे प्रियतम अक्षरातीत अनन्त सामर्थ्य वाले हैं। मैं उनकी अपार महिमा का वर्णन कैसे करूँ।

महामत कहे ए मोमिनो, हकें बैठाए तले कदम।

करसी हांसी बीच अर्स के, जो करी हुकमें इलम॥२०॥

श्री महामति जी कहते हैं कि हे साथ जी! धाम धनी ने हमें मूल मिलावा में अपने चरणों में बैठा रखा है। उनके हुक्म और इल्म ने इस खेल में जो भूमिका अदा की है, उसके परिणाम स्वरूप परमधाम में जाग्रत होने पर हमारी बहुत अधिक हँसी होगी।

प्रकरण ॥१६॥ चौपाई ॥६००॥  
॥ सिन्धी टीका सम्पूर्ण ॥